ISSN : 2455-4219
(UGC-Care Listed)

विचार
चिंतन
शोध सृजन

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष-6 अंक-23 जुलाई - सितम्बर, 2021

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219
(UGC-Care Listed)

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 6 अंक - 23 जुलाई-सितम्बर, 2021

Year - 06 Volome - 23 July-September, 2021

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**
संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–
सृजनश्री न्यास,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com
दूरभाष : 9451949951/7376267327

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो0 गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- **प्रो0 नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- **प्रो0 सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, (उ0प्र0)।
- **प्रो0 कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालयए शिलांग, मेघालय।
- **प्रो0 प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- **प्रो0 दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- **प्रो0 आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय, (तेलंगाना)।
- **प्रो0 उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- **प्रो0 एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. वाराणसी।
- **श्री राम कुमार मानिक,** शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जिम्मेंदारी नहीं होगी और किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में होगा।

संपादकीय

आलोचना का भले ही एक विस्तृत धरातल या फलक हो, किंतु उसकी कुछ निश्चित सीमाएँ या मर्यादाएँ होती हैं। हमें उसी सीमा या मर्यादा में रहकर आलोचना की परिधि को विस्तारित करना और कराना रहता है।... मर्यादा या सीमा का उल्लंघन हमें दिग्भ्रमित और पद–दलित दोनों कर देता है, जिससे बचने के प्रयास लगातार होते रहे हैं और आने वाले समय में भी होते रहेंगे। एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि जैसे–जैसे पूँजीवाद का प्रभाव भारतीय समाज में अपनी पैठ जमाता हुआ बढ़ता चला गया, वैसे–वैसे हमारी पारंपरिक मर्यादा की छवि भी बिगड़ती चली गई। इसे राजनीतिक प्रणाली से लेकर हम आम भारतीय नागरिक जीवन तक में देख सकते हैं।... व्यक्ति लगातार वस्तु के रूप में रूपान्तरित होता चला गया। इस कारण एक तरफ मूल्यों के बजाय अर्थ की प्रधानता बढ़ी और दूसरी तरफ हमारी मानवीयता ढ़ही। ऐसे में आर्थिक उन्नति की एक ऐसी दौर चल पड़ी कि बिना भवितव्य सोचे–समझे सभी उस दौड़ में हम सभी लग गए। आज इस दौड़ से कोई भी बाहर नहीं है। परेशानी यह है कि इसके लिए सभी एक–दूसरे को आरोपित करते हैं। अपनी गलती मानने के बजाए दूसरे की गलती का हवाला देते हैं, और दूसरे को ही हर एक बात का जिम्मेदार ठहराते हैं। मजे की बात यह है कि ऐसा करके स्वयं को पाक–साफ घोषित करते हैं या मानते हैं।... ये सब बातें चिंताजनक है, जिन पर अब विचार करने की जरूरत है। तमाम पत्र–पत्रिकाओं में इससे संदर्भित लेख भी प्रकाशित हो रहे हैं, नियम–कानून भी बन रहे हैं और नारेबाजी भी हो रही है, लेकिन मुश्किल जस–की–तस बनी हुई है। खैर.. हमने विगत 3 महीनों में आजादी का अमृत महोत्सव मनाया, हिंदी दिवस और पखवारा के तमाम आयोजन किये और देखे भी, कल्याण सिंह को अंतिम विदाई भी दी, नई शिक्षा नीति को लेकर नए–नए पाठ्यक्रम तैयार किये और कर रहे हैं, लगभग कोरोना से उभर भी चुके हैं और अपने अपने कार्यक्षेत्र में बेधड़क लग भी गए हैं। जो क्षति कोरोना–काल में हमने उठाई है, उसकी भरपाई भी करने लगे हैं। यह हमारी जिजीविषा का परिचायक भी है।

विगत संपादकीय सूचना के आधार पर आलोचन दृष्टि पत्रिका के इस अंक का प्रकाशन **सृजनश्री न्यास** आजाद नगर, बिन्दकी–फतेहपुर द्वारा हो रहा है और आगे भी निरंतर प्रकाशन करता रहेगा। इस न्यास की स्थापना का श्रेय श्री सुशील कुमार तिवारी जी को जाता है, जिन्होंने अपने पिता स्वर्गीय श्री मोहनलाल तिवारी एवं माता स्वर्गीय श्रीमती शिव दुलारी की स्मृति में इस न्यास की स्थापना की। इस पत्रिका के प्रकाशन के साथ–साथ साहित्यिक–सांस्कृतिक गतिविधियों से जुड़े कार्यक्रमों के आयोजन करना भी इस न्यास उद्देश्य में शामिल हैं....।

प्रस्तुत अंक अपनी समय के मर्यादा में पूर्ण हो रहा है, जिसमें 43 शोध–पत्रों का प्रकाशन हो रहा है। इन शोध–पत्रों में, 26 हिंदी भाषा के हैं, 2 संस्कृत भाषा के हैं और 15 अंग्रेजी भाषा के। ये सभी शोध–लेख अपने–अपने विषय के अनुरूप समय और संदर्भ की वैचारिकता का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत अंक में कई अंग्रेजी के शोध पत्रों को उनके लेखकों से हिंदी में 'आलोचन दृष्टि' द्वारा लिखाया गया। हिंदी दिवस एवं पखवारा के लिए यही इसका योगदान है, आगे भी ऐसा करने के लिए यह पत्रिका प्रतिबद्ध रहेगी। सवा दो सौ से अधिक शोध–पत्रों में 43 शोध–पत्रों को चुनना या छाँटना–मुश्किल काम था, जिसे आलोचना दृष्टि परिवार ने सक्रिय सहभागिता करते हुए बिना किसी भेद–भाव के मर्यादित समय में पूरा किया। सभी के इस योगदान के प्रति मैं आभार प्रगट करता हूँ।

अंत में, मैं सभी शोध–लेखकों के सहयोग के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ और सुधी–पाठकों के स्नेह के प्रति अनुगृहीत हूँ। शेष फिर...।

30 सितम्बर, 2021।

विषयानुक्रमणिका

1.	**मैं आस्था हूँ तो निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ** *डॉ. परितोष कुमार मणि*	1-5
2.	**स्त्री विमर्श में लेखिकाओं का योगदान** *डॉ. शुचिस्मिता मिश्रा*	6-8
3.	**अज्ञेय की कहानियों में समय और संवेदना के स्वर** *डॉ. योगेश कुमार तिवारी*	9-11
4.	**समावेशी शिक्षा की प्रासंगिकता** *सुधीर कुमार तिवारी*	12-16
5.	**संगीत और आनुषंगिक विषय (आचार्या सुभद्रा चौधरी के विशेष संदर्भ में)** *रोली पाण्डेय एवं डॉ. के. ए. चंचल*	17-22
6.	**भारतेंदुयुगीन साहित्य का हिन्दी नवजागरण में योगदान** *डॉ. अपराजिता जॉय नंदी*	23-26
7.	**तुलनात्मक-प्रविधि की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ और गांधी** *डॉ. राम बिनोद रे*	27-30
8.	**पत्नी की भूमिका में स्त्री का स्वरूप (वाल्मीकि-रामायण के संदर्भ में)** *डॉ. मौमिता भट्टाचार्य*	31-34
9.	**मैकियावेली और आधुनिक प्रबंधन : तुलनात्मक विश्लेषण** *डॉ. संजीव कुमार लवानियाँ, मुकेश्वर सोनवानी एवं संत कुमार तिवारी*	35-39
10.	**हिमाचली लोकगीतों के प्रकाश्य में संगीतकार एस. डी. कश्यप का योगदान** *बलदेव सिंह एवं डॉ. श्रुति होड़ा*	40-43
11.	**महादेवी वर्मा की काव्य-संवेदना** *डॉ. मीनाक्षी मिश्रा*	44-47
12.	**आतंकवाद के संदर्भ में रचनाकार का दायित्व-बोध** *डॉ. मंजुनाथ एन. अंबिग*	48-53
13.	**सिद्धलिंगय्या : क्रांतिकारिता से सांस्कृतिक इयत्ता तक** *डॉ. सर्वेश मौर्य*	54-57
14.	**भारतीय समाज एवं हिन्दी कहानियों में वृद्धों की स्थिति** *सुप्रिया प्रसाद*	58-61
15.	**नाम का व्यक्तित्व पर प्रभाव : समाज-भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन** *डॉ. सुजाता चतुर्वेदी*	62-65
16.	**'बनाना रिपब्लिक': दलित-चेतना के उत्थान की दस्तक** *डॉ. गरिमा तिवारी*	66-69

17. पर्यावरणीय समस्या के समाधान हेतु शिक्षक-शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन 70-74
डॉ. अल्पना शर्मा

18. सृजनात्मकता का साध्य : असाध्य वीणा 75-77
श्रुति पाण्डेय

19. मिजो कहानी का इतिहास : परिचय एवं समस्याएँ 78-81
रोबी लललोमकिमी एवं डॉ. अमिष वर्मा

20. धार्मिक समरसता और अवध के नवाब (1722-1857ई.) 82-84
डॉ. राजकुमार वर्मा

21. भारत के आर्थिक विकास के समक्ष विभिन्न चुनौतियाँ (उत्तराखण्ड राज्य...) 85-90
डॉ. रीनू रानी मिश्रा एवं स्वाति रौंकली

22. शान्ति शिक्षा की समकालीन प्रासंगिकता एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 91-95
अश्विनी कुमार पाठक

23. सामाजिक विज्ञान विषय के परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र 96-99
शशि रंजन

24. जनप्रतिनिधि और जातिगत राजनीति का विवेचनात्मक अध्ययन 100-103
डॉ. जितेन्द्र पाटीदार

25. बदलते शैक्षिक परिवेश में समावेशी शिक्षा 104-108
सविता कुमारी एवं डॉ. मुकेश कुमार

26. कोविड-19 महामारी के दौरान युवाओं के टेलीविजन देखने के व्यवहार का अध्ययन 109-114
डॉ. अमिता

27. गृह्यसूत्रेषु वर्णित-ब्रह्मचारिधर्माः (व्रतानि) 115-119
डॉ. विश्वा केसरवानी

28. साधकतमं करणमित्यत्र तमग्रहणप्रयोजनविचारे कैय्यटश्रीशिवरामेन्द्रमतसमीक्षणम् 120-125
सुकान्त मान्ना

29. **Cultural Transformation and Covid** 126-129
Dr. Sushma Mishra

30. **Happiness : An Analytical Study of Aristotle and John Rawls** 130-133
Dr. Subhankari Pati

31. **Gandhi and Ambedkar's Idea of Social Justice** 134-137
Dr. Papia Deb

32. **Impact of Social Media on Women's Self-esteem and Mental Health** 138-141
Ms. Priya Upadhyay & Dr. Bhawani Shankar

33. **The Role of social media in creating Political awareness among the Youth** 142-145
Ms. Divyshikha & Dr. Bhawani Shankar

34. **Exploring The Effect Of Work- Life Balance And Possible Out....** 146-149
Dr. V. Ramanithilagam & D. Bhuvaneswari

35. **Anglo-Nyishi Conflicts over the control of Natural Resources** 150-154
Dr. Tade Sangdo

36. **Media Trial and its Effects on Indian Judiciary** 155-158
Tarun Goma & Dr. Bhawani Shankar

37. **Problematising the Aesthetics of Tradition: A Reading of....** 159-163
Dr. Anju K. N.

38. **Evaluation of Digital India Scheme** 164-166
Mallikarjun Chandrakant Budge & Dr. Vijayalaxmi Biradar

39. **Ideal of Equality and Poor Participation of Women in Electoral...** 167-171
Dr. Jayanta Baruah

40. **Psychic Benevolence in the selected Short Stories of Daniyal...** 172-175
M. Aarthi Priya

41. **Delicensing the Licensed Bangladeshi Women in Rizia Rahman's...** 176-179
Dr. Breez Mohan Hazarika

42. **Potential health risks of Social Media overuse by adolescents and...** 180-184
Dr. Parinita Singh

43. **Inclusion of Students with Visual Impairment in Higher Education...** 185-189
Bharati Devi & Prof. S. K. Swain

मैं आस्था हूँ तो निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ

डॉ. परितोष कुमार मणि*

कोई भी संस्कृति महान तब बनती है जब रचियता या कवि उसके भिन्न–भिन्न कालखंडों को अपनी रचना के द्वारा अमरत्व प्रदान कर देते हैं। भारतीय संस्कृति का मूल स्वरुप सनातन, समृद्ध और जीवंत है, हजारों वर्षों के लम्बे कालखंड में उसके सामने अनेक सांस्कृतिक बाधाएं और मत मतान्तर आये लेकिन उसने उन पर विजय प्राप्त करते हुए अपनी परंपरा और सनातनता के साथ साथ स्वीकार की भावना को न सिर्फ संजो कर रखा बल्कि अपनी क्रियाशीलता से उसे परिष्कृत करते हुए निरन्तर जीवन्त भी रखा। भारतीय संस्कृति स्वीकार का भाव रखते हुए भी अंतत अपनी जड़ो से ही उगती है, अपनी परंपरा से ही पोषित और विकसित होती है, परंपरा का निर्माण चूँकि मनुष्य के जातीय अनुभवों के भण्डारण से होता है। अतः इस अर्थ में वह ज्ञान की एक विकसित अवस्था भी हैं।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय हिंदी के उन रचनाकारों में हैं जिनका सर्जनात्मक और आलोचनात्मक साहित्य भारतीय संस्कृति के अनेक स्तरों, उप स्तरों को देखता है परखता है, परंपरा से ग्राह्य मूल्यों का,उसके गतिशील और प्रासंगिक तत्वों का विश्लेषण करता है फिर आधुनिक भावबोध की प्रयोगशीलता के द्वारा उसे अपने युग के अनुरूप बनाकर प्रस्तुत करने का आग्रह करता हैद्य अज्ञेय न तो परंपरा का अन्धनुकरण करते हैं, नही आधुनिकता का। दोनों में से जो कुछ भी व्यक्ति के लिए सार्थक और उपयोगी है, उसे ग्रहण करते हैं। चाहे निबंध साहित्य हो, कविता हो, अंतःप्रक्रियाएं हो, यात्रा साहित्य या कि काव्यालोचन, अज्ञेय का साहित्य भारतीय चिंतन के मूल्यवान सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनेक रंग जैसे भारतीयता, मिथकीय सत्ता, सौंदर्य और शिवत्व, नैतिक मूल्य, मानवतावाद, मम और ममेतर का भाव,काल चिंतन पर विस्तृत और विशद दृष्टि देता है। उनके विचारो में वैज्ञानिकता है, नवीनता है, वे अन्वेषक नही अन्वेषी हैं, सर्जनात्मक राहों के अन्वेषी, अतः परंपरा को ग्रहण और स्वीकार करने से पूर्व उसका अनुसंधान करते हैं, संस्कृति और परंपरा से प्राप्त विचारो को भी अपने तर्क की कसौटी पर कसकर देखते हैं.उन्हें परिष्कृत करते हैं। कृष्णदत्त पालीवाल का कहना है ''कवि अपने विवेक से परंपरा को कूट पीसकर छानता है और सार सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय की अनुभवसिद्ध थ्योरी से उसके अर्थ को अपनाता है।[1] अज्ञेय सदैव से मानते हैं कि रचनाकार और कवि सामान्य नही होता वह सृष्टा होता है, सर्जक होता है, विशिष्ट होता है, अतः परंपरा में महान होता है और उसके अपने लिए देश या समाज की सांस्कृतिक अथवा ऐतिहासिक चेतना का बोध नितांत जरुरी है। देश की सांस्कृतिक परंपरा उनकी चेतना को अनुशासित करनेवाले ऐसे तत्त्व हैं, जो अचानक कहीं से नही मिल जाते बल्कि वह उनके बोध का सहज अंग है। वस्तुतः अज्ञेय के रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में बाल्मीकि, कालिदास, भवभूति जैसे आदिकवि और ऋतू चक्र, शिव और शक्ति जैसे क्रियाशील मिथक है जिनके द्वारा वे अपने सर्जनात्मक जड़ो को पोषित करते हैं,निखारते हैं। उनका इस बात पर विशेष बल है कि प्रत्येक देश, समाज की अपनी एक निहित परंपरा होती है, अपनी संस्कृति होती है। उस देश और समाज के अपने धार्मिक –नैतिक आदर्श होते हैं, अपने प्रतीक और नायक होते हैं, अपना धर्मशास्त्र होता है, यह सब मिलकर ही किसी रचनाकार का परिवेश निर्मित करते हैं, लेकिन लम्बे कालखंड में परंपरा का मूलगत यथार्थ सिकुड़ता जाता है। चूँकि परंपरा एक समष्टिगत अनुभव है इसलिए वह निरंतर विकासशील है, अर्जित की जानेवाली है ढोने वाली नही,जब परंपरा अर्जित किये जानेवाला अनुभव नही बन पाती है तो उसके प्रवाह में द्वीप की भांति स्थिर न रहकर रेत बन जाती है जो परंपरा रूपी जल के प्रवाह को अंततः गन्दा ही करती है। बड़ा रचनाकार वही है जो अपनी परंपरा और

*** एसोसियेट प्रोफेसर, हिंदी, एम.एम.एच.कॉलेज, गाज़ियाबाद।**

संस्कृति में व्याप्त रूढिगत मैलेपन को मिटाकर उसके मूल सार को अपने युग के अनुरूप बनाकर प्रस्तुत करता है, यही परंपरा का पुनराविष्कार है, नवीनीकरण है और यही लेखक, कवि के अनुभवजगत को और भी व्यापक और अद्यतन बनाता है। परंपरा के सार के ग्रहण के साथ ही साथ युगानुरूप आधुनिक विचार और विश्लेषण से संपृक्त करते हुए उसमे व्यापक अर्थ भरना ही कवि दायित्व है। इसीलिए अज्ञेय के साहित्य में यदि जड़ो की चिंता है तो उन जड़ो को बचाने की, उसे आधुनिक बनाने का सबसे अधिक आग्रह दीखता है, क्यूंकि अंततः उसकी परिणिति भारतीयता की अवधारणा तक जाती है– द्वीप हैं हम/यह नहीं है शाप/ यह अपनी नियति है/ हम नदी के पुत्र हैं/ बैठे नदी के क्रोड में/यह बृहद भूखंड से हमको मिलाती है/और वह भूखंड/अपना पितर है।[2]

स्पष्ट रूप से अज्ञेय की आधुनिकता के केंद्र में भारतीयता की अवधारणा है,जिसका अर्थ उनके लिए सनातनता और स्वीकार की भावना से जुड़ता है। सनातनता आत्मगौरव से भरती है,लेकिन युगानुरूप उसका परिक्षण और परख भी उतनी ही अपेक्षित होती है और इस सम्बन्ध में वे कहते हैं '' जिसे हम भारत की आत्मा कहते हैं वह वास्तव में आत्म और अनात्म का, जीवित और जड़ का एक पुंज है, जिसकी परीक्षा की आवश्यकता है... जीवित को आगे बढ़ाना होगा, कुछ लोग भारतीयता के समर्थन के नाम पर निरी जड़ता का समर्थन करते हैं कुछ दुसरे जड़ता के विरोध के नाम पर संस्कृति से ही इनकार करना चाहते हैं।''[3] भारत की आत्मा सनातन है, भारतीयता केवल एक भौगोलिक परिवृत्त की छाप नही है, यह विशिष्ट अध्यात्मिक गुण है जो उसे सारे संसार से पृथक करता है, एक नयी पहचान देता है। भारतीयता मानवीयता का निचोड़ है, उसकी हृदय मणि है, उसका शिरसावंतस है, उसके नाक का बेसर है। वस्तुतः अज्ञेय के लिए भारतीयता और कुछ नही एक सांस्कृतिक अस्मिता है, जिसका आधार सिर्फ मानवीय प्रेम है,मनुष्यता की अवधारणा को,उसके मूल्यों को बचाए रहने की प्रेरणा है। भारतीय परंपरा का स्वर जीवन के प्रति आस्थावादी है, कवि संशय को नकारकर आस्था की शक्ति को पहचानता है, मानवमन की पीड़ा से गुजरते हुए स्वयं को उससे एकाकार कर लेता है और पीड़ा से मुक्त होने की प्रेरणा भी देता है– मैं आस्था हूँ तो निरंतर उठे रहने की शक्ति हूँ /मैं व्यथा हूँ तो मुक्ति का श्वास हूँ/मैं गाथा हूँ तो मानव का अलिखित विश्वास हूँ /मैं साधना हूँ तो प्रयत्न में कभी शिथिल न होने का निश्चय हूँ /मैं संघर्ष हूँ जिसे विश्वास नही /जो है मैं उसे बदलता हूँ, /जो मेरा कर्म है उसमे मुझे संशय का नाम नहीं।[4]

आधुनिकता की अवधारणा का मूलाधार सांस्कृतिक चेतना है। प्रत्येक जीवन दृष्टि और संस्कृति अपने परिवेश का ही उपजीव्य होती है, परिवेशगत चेतना प्राचीन मूल्यों को जानने, परखने और उसे अपने युगबोध के अनुरूप नवीन मूल्यों के निर्माण में सहायक होती है। मध्यकाल और आदिकाल भी अपने परिवेशगत परिस्थितियों से प्रभावित थे, परन्तु उनकी चेतना अपने परिवेश के प्रति प्रबुद्ध नही थी, इतिहास बोध की न्यूनता वहां थी। लेकिन आधुनिक युग का साहित्यकार अपने वैज्ञानिक बोध के कारण इतिहासबोध के प्रति निरंतर जागरूक रहता है और इसमें बड़ा हाथ विज्ञान का था जिसने साहित्य के केंद्र से ईश्वर को हटाकर मनुष्य को रख दिया और उसे तर्क विश्लेषण से समृद्ध किया। डॉ. नगेन्द्र कहते हैं 'जीवनदृष्टि व्यवहारिक और यथार्थपरक हो रही थी। भावुकता के स्थान पर विवेक का नियंत्रण बढ़ चला था और विज्ञान के प्रभाव के कारण सामान्य दृष्टिकोण बौद्धिक (वैज्ञानिक) होता जा रहा था।''[5] यही पर यह ध्यातव्य है कि अज्ञेय के लिए परंपरा इतिहास से बड़ी है, व्यापक है क्योकि इतिहास समय को काल को सीधा देखता है यानि इतिहास का एक आवश्यक अंग अनुक्रमिकता है, लेकिन भारतीय चिंतन परंपरा काल की अवधारणा को चक्रनेमिक्रमेण देखती है,उसका न कोई आदि है न अंत, पश्चिम की काल विषयक धारणा एकरेखीय होने के कारण अज्ञेय उसकी ऐतिहासिकता को खंडित करते हैं लेकिन यहाँ काल की यह वृहत्तर कल्पना ही परंपरा को इतिहास से अलग कर देती है अन्यथा नही है कि अज्ञेय मानते हैं'' परंपरा केवल इतिहास अथवा घटनाक्रम नही है, वह घटनाक्रम से मिलनेवाला जातिगत अनुभव है, अनुभव ही नही बल्कि उस अनुभव का ऐसा जीवित स्पंदन जो जाति को अभिप्रेरित करता है।'[6]

अज्ञेय विज्ञान को कालबोध का उत्सर्जक मानते हैं और आधुनिकता को कालबोध से संपृक्त। केंद्र और परिधि में वे कहते हैं... "विज्ञान की प्रगति ने हमें काल की अवधारणा दी, नया कालबोध दिया ''आगे वे कहते हैं ''आधुनिकता जिस प्रकार का कालबोध है, वह दोनों प्रकार के काल की अवधारणा को स्वीकार करता है और समानांतर रखता है, समपदीय महत्व देता है,इतना ही नही यह भी समझाता है कि विज्ञानं की प्रगति ने ही यह संभव बनाया है की हम काल की इतने प्रकार की गतियो को पहचाने और एक साथ स्वीकार करें और कालगति का यह स्वीकार ही वास्तव में आधुनिक संवेदन है, आधुनिकता है जो सब कुछ को सापेक्ष बनाती है।[7] सर्जक चूँकि कुछ नवीन सृजित करता रहता है इसलिय उसे काल के कई आयामों से एक साथ जूझता पड़ता है। काल के बारे में उनका स्पष्ट मानना है कि काल एक सुदूर बिंदु से आरम्भ करके भी किसी अंत तक नही जाता और वह वर्तमान की चेतना से आरम्भ होता है, वर्तमान के अद्यतन क्षण से उसकी गति दोनों तरफ से हो सकती है अतीत की और भी और भविष्य की तरफ भी। अतः काल के सभी क्षण सर्वदा वर्तमान हैं, सहकालिक हैं। वर्त्तमान का क्षण अतीत और भविष्य की संधि का सूक्षतम बिंदु है और यही वह जगह है जहाँ हमारी चेतना स्थिर होती है। इसी बिंदु से हम भविष्य और अतीत की प्रतीति कर सकते हैं। संवत्सर में अज्ञेय भविष्य,वर्तमान और अतीत के संबंधो को को प्रगट करने के लिए डमरू का उदाहरण देते हैं। काल के प्रतीक डमरू की कटि वर्तमान है, दोनों शंकु अतीत और भविष्य हैं, डमरू की कौड़ी चित्त का प्रतीक है, इस तरह वर्तमान को अतीत और भविष्य दोनों ही निर्धारित करते हैं अतः मनुष्य अतीत, भविष्य और वर्तमान तीनो में एक साथ जीता है अर्थात मनुष्य किसी एक जीवित क्षण में नही काल के वृहत्तर आयामों में एक साथ जीता है।[8]

मनुष्य की अस्मिता, भारतीयता और सृजनशीलता से जुड़ा प्रश्न नैतिकता का ही है। अंतरा में अज्ञेय कहते हैं "नैतिकताबोध से रहित कोई समाज या संस्कृति इतिहास में टिक नही सकती, यह नही की अनैतिक होने का दंड कोई देता है, बल्कि इसलिए की नैतिकता बोध का न होना जीवन लक्ष्य का न होना है और लक्ष्यरहित समाज और संस्कृति का नष्ट होजाना स्वाभाविक है।[9] शायद इसीलिए अज्ञेय मिथकों की तरफ बार बार लौटते हैं। वह मिथक के वाह्य आवरण को भेदकर उनके आतंरिक सत्य तक पहुंचकर उनकी सूक्ष्म व्यंजनाओ को पकड़ना चाहते हैं। अज्ञेय मिथक के द्वारा अपने कथ्य को पुनर्निर्मित करते हैं, मिथक प्रयोग की यह प्रक्रिया वास्तव में परंपरा और संस्कृति के नवीकरण की प्रक्रिया है,। यह कहना गलत नही होगा की वे समृद्ध मिथकीय चेतना के कवि हैं, भारतीय और ग्रीक मिथिकीय प्रतीकों पर आधारित उनकी कवितायेँ हिंदी कविता की समृद्ध धरोहर हैंद्य मिथक प्रयोग से की दृष्टि से उनकी लम्बी कविता असाध्य वीणा बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें मिथकों के बरास्ते जड़ और चेतन की साधना है। कलावंत की वीणा परंपरा का प्रतीक है, परंपरा निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न अनुभव उसे लगातार बनाते– मिटाते रहते हैं। प्रियंवद सिर्फ वीणा को नही साधता वह इस पूरी परंपरा को साध रहा है, लेकिन वह तभी साधती है जब उसके अहं का विलयन होता है। भारतीय चिंतन परंपरा में शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का लक्ष्य अर्थ–धर्म, काम–मोक्ष होता है, जिसमे से अज्ञेय मोक्ष को अंतिम सत्य मानते हैं। अपनी चेतना को सर्वात्म में बैठा देनेवाला प्रियंवद नाद तत्त्व में सबको डुबोकर स्वयं भूमि के ऊपर ध्वनिलोक में चला जाता है और वह उसी विराट सत्ता के साथ तदाकार परिणिति पा जाता है– श्रेय नही कुछ मेरा / मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में/वीणा के माध्यम से अपने को मैंने /सब कुछ को सौंप दिया था /सुना आपने ने जो वो मेरा नहीं/सब कुछ की तथता थी।[10]

अज्ञेय केशकम्बली की अर्थ व्यंज़ना को नवीन संदर्भ देते हैं। जीवित किरीटी तरु, किरीटकी जड़ो का वासुकी के फन पर टिकना, उसके कंधे पर सोने वाले बादल, सभी को वीणा के अलग स्वरों की अनुभूति, अभिमंत्रित वीणा इत्यादि जैसे मिथको से कवि प्राचीन संदर्भो को समसामयिक बनाते हुए उसे नवीन अर्थवत्ता से व्यंजित करता है। साधक बनकर ही सत्य को जाना जा सकता है, उसको प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय सांस्कृतिक चिंतन कर्मवाद पर आधारित है, भारतीय दर्शन ज्ञान,कर्म, और योग के समन्वय को सांसारिक भवसागर से मुक्त होकर विराट सत्ता का अंग बन जाने के लिए आवश्यक साधन मानता है। श्रीमद्भगवत गीता स्वयं कर्मवाद के सिद्धांत की प्रेरणा देनेवाला सांस्कृतिक और धार्मिक प्रतिमान है; यहाँ मोक्ष प्राप्ति का मार्ग ज्ञान के साथ कर्म को भी माना गया है। अज्ञेय कर्मवाद के इस सिद्धांत से गहरे तक प्रभावित हैं, उनका पूरा विश्वास है की कर्म से ही हम जीवन के दुखो से दूर हो सकते हैं, उनका शमन कर सकते हैं। कर्म से पलायन, जीवन के सत्य से पलायन है– बैठे रहो, पुकारो गाओ, मेरा वैसा धर्म नही है/ मैं हारिल हूँ, बैठे रहना, मेरे कुल का कर्म नही है।[11]

कर्म के प्रति उनकी ये आस्था ही है जो उन्हें जीवन की धज्जियां उड़ाने का साहस देता है। ज्ञान, कर्म, और योग की तलाश अंततः सत्य तक ही जाकर समाप्त होती है, मानव मन में उठनेवाली प्रत्येक जिज्ञासा का शमन सत्य के अनवरण से ही होता है। अज्ञेय के लिए सत्य की इसी खोज का महत्व है। वे दर्शन, साहित्य और यहाँ तक की विज्ञान को भी सत्य के अन्वेषण का मार्ग समझते हैं। जहाँ साहित्य आत्मअन्वेषण के द्वारा सत्य तक पहुँचने का प्रयास करता हैं वहीं विज्ञान उसे अनुसंधानों के द्वारा साधता है। सत्य की खोज, उसकी प्राप्ति और अनुसन्धान भारतीय चिंतन परंपरा की वह कसौटी है जिसपर घिस कर वह खरी हुई है; साधारण मनुष्य से लेकर ऋषियों, दार्शनिको, चिंतको, कवियों और वैज्ञानिको को सत्य की जिज्ञासा मथती रहती है। वेद, उपनिषद, पुराण एवं अन्य धर्म ग्रन्थ सत्य की इसी तलाश के पास घूमते रहते हैं– तुम तो भस्म हो फिर, मैंने अपने भभूत में पाया/अंग रमाया/तभी तो पाया/खोज में जब निकल ही आया /सत्य तो बहुत मिले/एक ही पाया था।[12]

जीवन के सत्य को उनका कवि न केवल जीवन के यथार्थ और वस्तुवादी रूप में ही पाता है बल्कि मृत्यु, आत्मा,पुनर्जन्म, काल,ऋतू, नक्षत्र आदि न जाने कितने विषयों की सत्यता को जानने की लिए व्यग्र रहता है। सत्य, शिव, और सुंदर का भी भारतीय चिंतन परंपरा के प्रमुख स्वर हैं, सत्य शिव से अलग नही है और शिव सुन्दर से अलग नही है अज्ञेय की कविता भी इस सत्य, शिव, सुंदर का आख्यान करती है, इसीलिए वहां सत्य जीवन के आधार पर परिभाषित होता है, जीवन का शास्वत और परम सत्य मृत्यु है, इसलिए उससे भय खाने की जगह उसे सुन्दरता और शिवता दी जाये, ऐसा आग्रह अज्ञेय करते हैं– क्रमशः मृत्यु भी सत्य ही है, /उसे हम छोड़ नही सकते / हाँ, शिवता, सुन्दरता हम उसे दे सकते हैं/ अभी किन्तु जीवनःअंतहीन तपस्या जिससे /हम मुहं मोड़ नही सकते।[13]

अज्ञेय के लिए जीवन का गान मृत्य है, इसीलिए जीवन के प्रति उनकी आस्था पुख्ता बानी रहती है। वास्तव में आस्था और विश्वास उनके लिए सम्भावनाओं से भरी हुई सर्जनात्मक पद्वति है। भारतीय परंपरा का मूल स्वर जीवन के प्रति आस्थावादी है, जबकि पश्चिम में जीवन के प्रति आस्था और विश्वास का स्वर निषेध का है, अज्ञेय आस्था और विश्वास के कवि हैं– अभी न हारो मेरी आत्मा /मैं हूँ, तुम हो/और अभी मेरी आस्था है।[14] आस्था उनके लिए संभावनाओ से परिपूर्ण स्थिति है, जिससे मनुष्य की सर्जनात्मकता बल पाती हैद्य निरंतर उठते रहने की शक्ति ही आस्था है, आज के इस युग में जहाँ पग पग पर असफलता और निराशा व्यक्ति को कुंठित कर रही है, वहां आस्था का स्वर उसे निरंतर आगे बढने और परिस्थितियों से संघर्ष कर सकने का आत्मबल देता है।

एक स्थान पर वे कहते हैं "मै मृत्यु के गीत नही गाता, पर मृत्यु है इसलिए गाता हूँ। इसलिए गीत स्तवन हो जाता है जीवन का। अज्ञेय की कविताओ में व्यक्त यही आस्था व्यक्ति को निराशा से बचाती है, उसमे जीवन के प्रति,कर्म के प्रति उत्साह का संचार करती है। अज्ञेय अपनी कविता में भारतीय परंपरा के इसी आस्थावादी स्वर को पहचानते हैं, इसीलिए उनका कवि मनुष्य में और मनुष्य के आपसी संबंधो में विश्वास रखते हुए कहता है– वे जिन्होंने /धरती का विश्वास नही खोया/जिन्होंने जीवन में आस्था नही खोयी /जिन के घर /उन पहलों ने नष्ट किये/महासागर में डुबोये/पर जिन्होंने अपनी जिजीविषा / घृणा के परनाले में नही डुबोयी /उनकी डोंगियां/फिर इन तरंगो पर तिरेंगी।[15]

अज्ञेय की भारतीय चेतना जैसाकि ऊपर कहा गया मानवीय प्रेम पर आधारित है, प्रेम और शांति की इस निधि की वजह से ही वह अपनी व्यक्तिक पीड़ा को भुलाकर दूसरो की मंगल की कामना करते हैंद्य शुक्ल जी के लोकमंगल की अवधारणा यहाँ याद की जा सकती है। लोक कल्याण के लिए शिव विष पीकर नीलकंठ हुए और अज्ञेय का कविमन भी विश्व के दुख् रुपी विष को पीने को तैयार है– किसी एकांत का लघुद्वीप मेरे प्राण में रच जाये / जिससे लोक रव भी कर्म के समवेत में रच जाये / बने मंजूष यह अंतस समर्पण के हुताशन का / अकरुना का हलाहल भी रसायन बन मुझे पच जाए।[16]

इस तरह हम कह सकते हैं अज्ञेय का सांस्कृतिक चिंतन और उनकी कवितायेँ अनुभवों की रुढ़िबद्धता से निकल कर आधुनिक रूप में उसे स्मृति के रचनात्मक परिदृश्य तक ले आती है। अज्ञेय का साहित्य उन सभी के लिए एक निकष है जो ऐतिहासिकतावाद और उससे उत्त्पन्न पश्चिमी वैज्ञानिकता के आतंक में अपनी अनुभवजन्य सर्जनात्मक स्मृति की उपेक्षा कर उसे परम्परावादी घोषित करते हैं। उन्हें विस्मृत नही होना चाहिए कि अंततः स्मृति ही तो नई कल्पनाओं के आकाश की बुनावट करती है, उसे रचती है। भविष्य, वर्तमान और अतीत को एक समकाल में देखने की उसकी इसी कल्पना के द्वारा तो कवि दिक् काल की सीमाओं का भी संतरण करता है। यह अन्यथा नही है कि प्रसिद्द रोमांटिक कवि ब्लेक कल्पना के लोक को अनन्यता का लोक कहता था।

अज्ञेय अपने समूचे रचनाक्रम में भारतीयता, सामाजिकता और आधुनिकता को विलक्षण ढंग से न सिर्फ साधते हैं बल्कि पाठक की स्वाधीन चेतना और आत्मबोध को भी जगाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं, उनका सर्जक उत्तरोत्तर परिष्करण, विस्तरण एवं उदात्तीकरण की ओर निरंतर अग्रसर रहता है।

संदर्भ–सूची :–

1. अज्ञेय :कविकर्म का संकट, कृष्णदत्त पालीवाल किताबघर प्रकाशन,प्रथम आवृति 2009 नयी दिल्ली, पृष्ठ 55।
2. पूर्वा–हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, राजपाल एंड संज,नयी दिल्ली दूसरा संस्करण, पृष्ठ 251।
3. कुमार विमल, अज्ञेय गद्य रचना संचयन, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली २०१५, भूमिका, पृष्ठ 247।
4. नयी समीक्षाःनए सन्दर्भ दृडॉ.नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस. 1974 पृष्ट 62।
5. आधुनिक हिंदी साहित्य, प्र.सं.,सच्चिदानंद वात्सयायन, राजपाल एंड संज, पृष्ठ 23।
6. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, अज्ञेय –४२–४३ (प्रथम आवृति),सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ 21।
7. केंद्र और परिधि, अज्ञेय, प्रथम आवृति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नै देल्ली, पृष्ठ 326।
8. संवत्सर, अज्ञेय, प्रथम आवृति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 77।
9. अंतरा, अज्ञेय, प्रथम आवृति, राजपाल एंड संज, नई दिल्ली, पृष्ठ 11।
10. आंगन के पार द्वार, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पंचम संस्करण, पृष्ठ 63।
11. इत्यलम, अज्ञेय,प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम आवृति, पृष्ठ 139।
12. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, अज्ञेय – (प्रथम आवृति),सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद पृष्ठ 45।
13. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, अज्ञेय – (प्रथम आवृति),सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद पृष्ठ 40।
14. पूर्वा–हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय दूसरा संस्करण, राजपाल एंड संज,नयी दिल्ली, पृष्ठ 130।
15. क्योंकि मै उसे जानता हूँ (प्रथम आवृति),नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ;पृष्ठ 39।
16. सदानीरा भाग 1, अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, दूसरा संशोधित संस्करण २००३, पृष्ठ 254।

स्त्री विमर्श में लेखिकाओं का योगदान

डॉ. शुचिस्मिता मिश्रा*

किसी भी देश का इतिहास, संस्कृति और सामाजिक विकास वहां की स्त्रियों की प्रगति पर अवलंबित रहता है। आज स्त्री सुदृढ़ समाज में अपने योगदान के लिए कृतसंकल्प है। आज वे अपने अस्तित्व, अस्मिता के बारे में सोचने लगी हैं। पूर्व रचित सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह के साथ–साथ आर्थिक जिम्मेदारी भी निभा रही हैं, जो जिम्मेदारी अतीत में केवल पुरुषों के कन्धों पर थीं। हर क्षेत्र में अपनी क्षमता को दिखाना चाह रही है, अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व, अपनी पहचान बना रही हैं। आज की स्त्री घर की श्रृंगार वस्तु बन कर जीना नहीं चाहती हैं और न ही पूजे जाने की चाह रखती है। कारण वह जान गयी है कि एक का अर्थ अन्य की शोभा बढ़ाना है, उपयोग न रहने पर फ़ेंक दिया जाता है तथा दूसरे का अभिप्राय दूर से उस पूजा पर चढ़े प्रसाद को देखते रहना है, जिसे उसे न देकर उसी के नाम पर लोग बाँट लेंगे।

प्राचीन भारत के वैदिक काल में स्त्रियों की समानता को लेकर उदार दृष्टिकोण था, स्त्रियाँ एक उदार वातावरण में रहती थीं। उस काल में अपाला, लोपामुद्रा, घोषा, गार्गी, मैत्रेयी, देवयानी, शाश्वती, कामायनी आदि स्त्रियों का विद्वतापूर्ण दार्शनिक–आध्यात्मिक चिंतन भारतीय स्त्रियों के लिए अपार संभावनाओं से युक्त रहा है। उत्तर वैदिक काल में ही आगे चल कर उच्च प्रस्थिति प्राप्त स्त्रियों को कुछ धार्मिक और सामाजिक अवसरों से दूर भी रखा जाने लगा। बौद्धकाल में बौद्ध भिक्खुनियों ने 'थेरी गाथाएं' लिखीं। इनमें स्त्रियों के अध्यात्मिक अनुभवों के साथ–साथ उनके जीवन की संक्षिप्त कहानियां कही गयी हैं। इनमें उस समय के समाज की झलक के साथ ही स्त्री पुरुष संबंधों की जानकारी भी मिलती है। ये रचनाएँ स्त्रियों के अपने लेखन तथा अपने बारे में किये गए लेखन के ठोस प्रमाण हैं। मध्य काल में स्त्रियों की स्थिति बदतर होने लगी। हिंदी साहित्य के आदिकाल तक आते–आते स्त्रियों की स्थिति केवल श्रृंगार का पर्याय बनकर रह गयी। शिक्षा के अभाव से अनेक अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ पनपने लगीं। स्त्रियों की स्थिति, उनके सम्मान व अस्मिता का महत्व नहीं रहा, वह केवल भोग विलास का साधन बन कर रह गयी। 'थेरी गाथाओं की तरह ही जब–जब स्त्री को अपनी बात कहने का मौका मिला है उसने निडरता से अपनी पीड़ा व्यक्त की है। मध्यकाल में ही मीराबाई, सहजोबाई, जनाबाई, रामी, महादेवी अक्का, सूले सनकवा, जंगासती, रतनबाई, आतुकारी मौल्ला, बहिनाबाई, गुलबदन बेगम, चौन्द्रबौती, संधिया होनम्मा आदि वे स्त्रियाँ हैं जो पूरे भारत की हैं। अपनी–अपनी भाषा में इन्होंने अपने–अपने दुःख व्यक्त किए। मीराबाई ने यदि राजमहल छोड़ दिया तो दूसरी ओर चौदहवीं–पंद्रहवीं सदी में गुजराती में गंगासती व रतनबाई और मराठी में जनाबाई ने समाज में व्याप्त रुढियों के ख़िलाफ़ विद्रोह किया। जहाँ पुरुष रचनाकार इस लोक को छोड़कर परलोक के सपने देखते थे वहीँ स्त्री रचनाकारों ने इसी लोक में व्याप्त रुढियों के ख़िलाफ़ मोर्चा खोल दिया, क्योंकि इन रूढ़ियों का सबसे पहला शिकार वे ही होती थीं। बंगाल में रामा निम्न जाति में पैदा हुईं, लेकिन उन्हें वैष्णव कवि चंडीदास से प्रेम हो गया। उनकी रचनाओं में उनकी प्रेमकथा के अलावा समाज में फैली जातिप्रथा की घोर आलोचना मिलती है। इसी तरह जनाबाई शूद्र थीं। सात साल की उम्र से ही वे एक घर में दासी का काम करती थीं।'[1]

उन्नीसवीं शताब्दी से आधुनिक काल की शुरुआत मानी जाती है। इस सदी के प्रारंभ से स्त्री जीवन की समस्याओं, कुप्रथाओं पर खुल कर प्रहार किया जाने लगा। औपनिवेशिक भारत में, राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्री चेतना का एक भव्य रूप उभर कर सामने आया। जिसमें वह घर की चारदीवारें पार कर पुरुषों के साथ संघर्ष में शामिल होकर अपने समर्पण, त्याग, संकल्प और सामर्थ्य का भरपूर परिचय देती हैं। महिलाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी की। सुभद्राकुमारी चौहान एक ऐसा नाम है, जिसने स्त्री सरोकारों से जुड़ी,'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी' आदि कहानियां लिखीं और राष्ट्रीय आन्दोलन में भी हिस्सा लिया। 'झाँसी की रानी' कविता में रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य को अमर कर दिया उन्होंने इसके साथ ही मान की ममता से सराबोर वत्सल रचनाएँ भी कीं। समाज के द्वारा जकड़ी बेड़ियों में कैद स्त्री को प्रेरित कर दासता की स्थिति से उबरने के लिए महादेवी

*** इतिहास विभाग प्रमुख, वी.एम.वी. कॉमर्स, जे.एम.टी. आर्ट्स एवं जे.जे.पी. साइंस कॉलेज, नागपुर (महाराष्ट्र)**

वर्मा जी ने अपनी लेखनी द्वारा प्रयास किया। अनेक सामाजिक कुप्रथाओं की परतों में दबी स्त्री को इससे उबारने के रास्ते दिखाए, पुरुष की रूढ़ मानसिकता का विरोध किया। अपनी रचनाओं द्वारा स्त्रियों को आत्म विश्वासी, आत्मनिर्भर बनने की सलाह भी दी। समाज द्वारा रचित अवधारणाओं, रूढ़िवादी विचारों से ऊपर उठकर अपना उदाहरण सभी स्त्रियों के सामने प्रस्तुत किया।

'महादेवी वर्मा की नारी दृष्टि 'श्रृंखला की कड़ियाँ' से प्रारंभ होकर जीवन का व्यवसाय, जीने की कला, नारीत्व का अभिशाप, हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व से होती हुई स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न, युद्ध और नारी, घर और बाहर आधुनिक नारी तथा नए दशक में महिलाओं के स्थान के निर्धारण के शिखर को स्पर्श करती है। नारी जीवन के अनेक पक्षों एवं समस्याओं पर चिंतन करते हुए उसके अधिकारों, घर और बाहर उसकी भूमिका, उसके अर्थ स्वातंत्र्य, हिन्दू पत्नी की दृष्टि से उसकी स्थिति आदि सभी विषयों पर महादेवी जी ने जितनी मुखर अभिव्यक्ति दी है, वास्तव में अत्यंत दुर्लभ है।'[2]

महादेवी वर्मा जी कहती हैं,'आर्थिक दृष्टि से आज की स्त्री को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई, उसके विस्तार की असंख्य संभावनाएं हैं। जैसे–जैसे उसके कर्मक्षेत्र की लक्ष्मण रेखा मिटती जाती है, वैसे–वैसे वह नवीन कर्त्तव्य सँभालने की क्षमता प्राप्त करती जाती है। पर समाज की स्थिति के कारण, यह आर्थिक स्वावलंबन भारतीय स्त्री को पारिवारिक सहानुभूति से वंचित कर नितांत अकेला बनता जाता है। पुरुष अकेला हो सकता है, परन्तु स्त्री अनेक संबंधों की केंद्र होने के कारण एक संस्था के सामान है। उसके लिए अकेलापन, एक प्रकार का निर्वासन दंड बन जाता है और उससे तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है।'[3]

स्त्री चिंतन के लिए उन्नीसवीं सदी अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। इस समय 'अज्ञात हिंदू औरत', ताराबाई शिंदे, पं. रमाबाई और रखमाबाई के लेखन में स्त्री चिंतन बहुत गहराई से देखने को मिलता है। यद्यपि इस काल में स्त्री को पढ़ने का अधिकार नाममात्र का था, परन्तु चंद स्त्रियों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ अपनी बुलंद आवाज उठाई। इसी दौर में 'अज्ञात हिंदू औरत' एक मजबूत स्त्री चिंतक थीं। अपनी किताब 'सीमंतनी उपदेश' में स्त्री की समस्या को पुरजोर उठाया है। 2 फरवरी 1882 को सर्वप्रथम मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने प्रकाशित किया। प्रमुख विचारक डॉ. धर्मवीर भारती ने इतिहास में गुम इस पुस्तक को पुनः अपने संपादन में 1988 में प्रकाशित किया था। इस पुस्तक की लेखिका ने पुस्तक में अपना नाम नहीं दिया, इसलिए इसे 'अज्ञात हिन्दू लेखिका' कहा जाता है। शोध करने के पश्चात् डॉ धरमवीर भारती लेखिका के संबंध में लिखते हैं.' इस गुमनाम लेखिका के विषय में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह एक हिंदू औरत थी। एक हिंदू के रूप में सारी हिंदू औरतों की बात कह गयी है। इसमें यह भी बात सच होनी चाहिए कि लेखिका किसी धनी घर की बेटी रही है। यह बहुत पढ़ी– लिखी रही है। इसने स्मृतियों और अन्य धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है।'[4] उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण काल में भी स्त्रियों की क्षमता को एक नई पहचान मिली। स्त्री शिक्षा का प्रसार हुआ, कुछ हद तक स्त्रियाँ आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने लगीं। घर–बाहर के दुहरे दायित्व धीरे–धीरे निभाने लगीं। परन्तु पुरुष मानसिकता में संतोषजनक बदलाव नहीं आया,सतही प्रभाव देखने को मिला। इस काल की लेखिकाओं ने स्त्री जीवन और उसके जटिल प्रश्नों के उत्तर साहित्य के बहाने ढूँढने लगीं। कई स्त्री स्वर साहित्य के माध्यम से समाज में गूंजने लगे, जिनमें कई सशक्त भी साबित होने लगे। इनमें एक नाम है, कृष्णा सोबती। उनके उपन्यासों में नायिकाएं अपने दैहिक शोषण के खिलाफ खुलकर सामने आती हैं और एक सन्देश देती हैं। साठ के दशक में उषा प्रियंवदा ने घर और बाहर में सामंजस्य बैठाती स्त्रियों के अनुभवों, अंतर्द्वंदों और रिश्तों के तनावों को स्वर दिया। इस काल की अनेक लेखिकाओं ने स्त्रियों की यातनाओं, जकड़न, उनके बंधन, पुरुष की मानसिकता पर प्रहार किया, कहानियों में स्त्री पात्र को हर तरह से मजबूत साबित किया। कई लेखिकाओं ने आत्मकथा के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति, मनोभावों और परिस्थितिजन्य प्रभावों को सशक्त रूप में उकेरा है। वास्तव में स्त्री की आत्मकथा एक प्रतिबिम्ब है, जिसमें 'स्वयं' ही प्रतिबिंबित होता है।

'स्त्री की आत्मकथा वस्तुतः कथाबहुल, अस्मिताबहुल संभावनाओं के लपेटे में रचित ऐसा प्रतिबिम्ब है, जिसमें प्रत्येक कथा, या कथा का प्रत्येक खंड उसके 'स्वयं' को ही प्रतिबिंबित करता है, लेकिन ये सबकी सब कहानियां आंशिक और अस्थायी हैं। स्वयं के किसी एक श्रेणी पत्नी, माँ, बहन, बेटी, दासी आदि तक सीमित रह जाने से इंकार करने वाली ये भूमिका बहुल कहानियां विखंडन और अनिश्चय से शुरू और उसी में ख़त्म होती हैं। प्रायः एकरैखिक, कालानुक्रमिक, वैयक्तिक, विगत के अनुभवों के संचित पुंज और पहले से मौजूद किसी ऐसे

एकान्वित स्वयं की उपलब्धि तक नहीं जातीं, जिसे उद्घाटित भर करना है और जो प्रायः आत्मकथा लेखन का परंपरागत अनुकरणीय आदर्श हैं।'[5]

लेखिका चित्रा मुद्गल के साहित्य का केंद्र भी स्त्री जागरण ही है। अनेक उपन्यासों में स्त्री जीवन की त्रासदी, संघर्ष के चित्र को उन्होंने उकेरा है। संवेदनाओं, मानवीय मूल्यों का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया है और अभिव्यक्ति दी है।

'निष्कर्षतः चित्रा मुद्गल के उपन्यासों के नारी पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि उनके उपन्यासों के नारी पात्र अर्थार्जन करने वाले, स्वावलंबी एवं नारी विषयक नवीन चेतना से संपन्न हैं। लेखिका ने पात्रों के चयन वास्तविक अनुभूति के आधार पर महानगरीय अंचल विशेष के यथार्थ जगत से किया है। ये सभी पात्र जीवन में आस्था रखने वाली, आशावादी, शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति पाने के लिए संघर्षशील, कर्मशील, स्वावलंबी, अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के प्रति सजग रहकर समानता एवं अधिकारों की मांग करने वाली मानवी के रूप में चित्रित किये गए हैं।'[6]

'मंजुल भगत के कथा साहित्य में स्त्री के पारिवारिकरूपों के अतिरिक्त सामाजिक रूप भी भी दिखाई देते हैं, जो उसकी विशेषताएं बन जाते हैं। सामाजिक जीवन जीते हुए स्त्री को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। परिणामस्वरूप स्त्री को अपने विचारों में परिवर्तन लाना जरूरी हो जाता है। उसके बदलते विचार परिस्थितियों की देन हैं। पुरुष के साथ समानता का अधिकार मांगते हुए उसे पुरुष जैसे ही कर्मठ विचारों को अपनाना पड़ता है। परिवार को नजरंदाज़ करते हुए व्यक्तित्व निर्माण की कोशिश करनी पड़ती है, इससे परिवार दुर्लक्षित होता है। परन्तु स्वयं का अस्तित्व निर्माण हो जाता है। परिवार को दुर्लक्षित होने से बचाना है तो अकेली स्त्री के कन्धों पर परिवार का बोझ डालना गलत होगा। इसके लिए स्त्री और पुरुष दोनों को परिवार की तरफ ध्यान देना आवश्यक है, तभी हमारा मूलभूत तत्त्व बच पायेगा।'[7]

अनंतकाल से स्त्री सृजनशील रही है। घर, परिवार, समाज स्त्री की सृजनशीलता के कारण आगे बढ़ रहे हैं। स्त्री है तो जीवन है,सभ्यता है, संस्कृति है। साहित्य एक सशक्त माध्यम है, किसी भी परिस्थिति को उकेरने का, उजागर करने का और आवश्यकता पड़ने पर आइना भी दिखाने का। हिंदी साहित्य की लेखिकाओं ने विभिन्न कालक्रम में अपनी रचनाओं द्वारा स्त्रियों की विभिन्न परिस्थितियों को, मानसिकताओं को, दुर्बलताओं को, बेबसी को और उनके साथ ही उनके साहस को, दृढ़ता को अलग–अलग पात्रों के माध्यम से समाज के सामने रख दिया। स्त्रीवादी विमर्श एक लम्बे संघर्ष और समझ का परिणाम है। साथ ही यह विकसित होती विचारधारा है, पितृसत्तात्मक समाज की स्त्रियों को कमजोर दर्जा की अवधारणा का परिणाम भी है। यह भी सच है कि गिनी–चुनी लेखिकाओं के दम पर कोई विमर्श लम्बे समय तक नहीं चलता है, और न ही किसी एक धारा में विकसित होता है। केवल प्रतिक्रियावादी सोच भी किसी सोच को दिग्भ्रमित कर सकती है। हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सीमित नहीं है। उसके सभी आयामों को तलाशने की आवश्यकता है। साहित्य की हर विचारधारात्मक संघर्ष के पीछे समय और समाज के हर परिवर्तनों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. कुमार वंदना एवं साहू छनेश्वरी, स्त्री–विमर्शः नई चुनौतियाँ, 'आजकल' अक्टूबर 2015, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ. 34।
2. श्रीवास्तव चंपा, नारी के अंतरंग और बहिरंग की विश्लेषक, 'आजकल' मार्च २०१४, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ. 58।
3. वर्मा महादेवी, नए दशक में महिलाओं का स्थान, भारतीय जन–जीवन खंड–एक, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 28।
4. कुमार सुरेश,'एक अज्ञात हिन्दू औरत' का स्त्री चिंतन, 'आजकल' मार्च २०१४, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ. 61।
5. वर्मा अर्चना, जीना जिंदगी को आत्मकथा के नजरिये से, सं.पाण्डेय श्यामसुंदर, हिंदी आत्मकथाएंःसन्दर्भ और प्रकृति, कानपुर, 2015, पृ.54।
6. शुक्ला डॉ.शालिनी, चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में नारी चित्रणः विविध आयाम, कानपुर, 2016, पृ.153।
7. जगताप डॉ.मैना, मंजुल भगत के कथा साहित्य में नारी, कानपुर, 2017, पृ. 205।

अज्ञेय की कहानियों में समय और संवेदना के स्वर

डॉ. योगेश कुमार तिवारी*

जीवन की विशद्–अनुभूति और कलात्मक–शक्ति, साहित्य–सर्जन के मुख्य आयाम हैं। रचनाकार अपने यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति ही करता है; जिसके विविध संदर्भ और आयाम, हजारों सालों के साहित्य के रूप में, हमारे सामने मौजूद है। यदि हम प्रेमचन्दोत्तर युग के कथा साहित्य का अवलोकन करेंगे; तो पाएंगे कि आधुनिक बोध के तत्व स्वचेतना, वस्तुपरकता, सृर्जनात्मकता, मनोवैज्ञानिकता आदि का सर्वप्रथम प्रयोग हमें अज्ञेय के कथा–साहित्य में देखने को मिलता है। अज्ञेय का साहित्य उनके व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने साहित्य की प्रमुख विधाओं में व्यक्तिवाद की स्थापना की है; जिसके पात्र ग्रंथियुक्त हैं और मानसिक अंर्तद्वंद्वों में जीवन जीते दिखलाई पड़ते हैं। भारतीय समाज के निरन्तर बदलते स्वरूप, उससे जुड़ी समस्याएं और चुनौतियों को अतिसूक्ष्म दृष्टि से अज्ञेय ने अपनी कहानियों में केन्द्रीय विषयवस्तु के रूप में अभिव्यक्त किया है; जिसमें पारम्परिक जीवन मूल्यों का विघटन, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन और नए मूल्यों की स्थापनाओं से व्यक्ति और समाज पर जो प्रभाव पड़ता है; उसे अज्ञेय की कथा साहित्य में देखा–परखा जा सकता है। वह अपने अपने ढंग से सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर निरंतर संघर्ष करते नजर आते हैं। इसलिए उनकी कहानियों में कथा–चरित्र केवल ग्रंथियों और अंतर्मन के द्वंद्वों के चित्रण के साथ उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष एवं प्रतिरोध का सचित्र तानाबाना परिलक्षित होता है।

कल्पना और बुद्धि के माध्यम से अज्ञेय ने अन्तः और बाह्य यथार्थ को चित्रित करते हुए अनेकों कहानियों की कथावस्तु बुनी। ''वे व्यक्ति चरित्र की गहन संवेदना को व्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। देशकाल और सामाजिक संदर्भ उनकी कहानियों के प्राण तत्व नहीं हैं, अपितु वह क्षीण आधारभूमि प्रस्तुत करता हैं।''[1] यही कारण है कि अज्ञेय की कहानियों में आधुनिक जीवन के यथार्थ का चित्रण बहुत ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हुआ है। उनकी कहानियों में 'मुस्लिम–मुस्लिम भाई–भाई', 'रमंते तत्र देवता', 'शरणदाता', 'हजामत का साबुन' का उल्लेख इस क्रम में किया जा सकता है; जिसमें विभाजन के दौरान देश में हुए दंगों से फैली वैमनस्य की भावना का यथार्थ चित्रण का अंकित है। पलायन और विस्थापन की पीड़ा हिंदू समाज और मुस्लिम समाज दोनों को झेलनी पड़ी। इस स्थिति में सभी को अपनी सुरक्षा की पड़ी थी। हिंदू इस भागमभाग में हिंदू के लिए अपरिचित था और मुस्लिम, मुस्लिम के लिए भी अपरिचित। विभाजन के समय धर्म का बंधुत्व भी किसी के काम नहीं आ सका। अज्ञेय द्वारा उपर्युक्त कहानियों में दिखाया कि शांति और सुरक्षा के समय धर्म बंधुत्व का भाव लोग खूब दिखाते हैं; परंतु विपत्ति के समय कोई किसी का नहीं होता है। सभी अपना हित साधते नजर आते हैं। इस बात को अज्ञेय ने अपनी कहानियों में व्यंगात्मक रूप से अभिव्यक्ति प्रदान किया। 'मुस्लिम–मुस्लिम भाई–भाई' नामक कहानी में ''दंगे के माहौल और असुरक्षा की भावना के कारण सफीना, अमीना और जमीला भी उसी 'पाकिस्तान स्पेशल ट्रेन' से पाकिस्तान जाना चाह रही है; जो मुस्लिम अधिकारी को लेकर जा रही है। तीनों सविनय फरियाद करती हैं यात्रियों से कि 'बहन, हम नीचे बैठ जाएंगी, मुसीबत में है।''[2] परंतु उसी ट्रेन में यात्रा कर रहे अमजद द्वारा उनको जवाब मिला कि ''मुसीबत का हमने ठेका लिया है? जाओ आगे जाओ.....''[3] कहानी के मुस्लिम पात्र अमजद केवल उनकी औकात को बताता है। साथ ही अधिकारियों की पत्नियां उनके चरित्र पर लांछन लगाने में कोई गुरेज नहीं करती है। ''बड़ी पाक–दामन बनती हो। अरे हिंदुओं के बीच रही और अब उनके बीच से भाग कर जा रही हो, आखिर कैसे? उन्होंने क्या यूं ही छोड़ दिया होगा? सौ–सौ हिंदुओं से ऐसी तैसी करा कर पल्ला झाड़ के चली आई, पाकदामनी का दम भरने।''[4] इस कहानी में एक ही धर्म के दो वर्ग चरित्रों के हाव–भाव एवं व्यवहार को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया गया है; जिसमें सर्वहारा समाज और अभिजात वर्ग के खोखलेपन को उजागर करते हुए धार्मिक सौहार्द की बनावटीपन पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है। 'रमंते तत्र देवता' नामक कहानी में बिशन सिंह मनोविज्ञान का जानकार है। कहानी का नायक भी मनोवैज्ञानिक है। कहानी की उत्तरबेला में वह सत्य का प्रतिपादन करते हुए कहता है कि ''सुनिये, मैं जब

*** अतिथि विद्वान, पंडित एस. एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)।**

सोचता हूँ कि क्या हो तो उस आदमी के साथ इन्साफ हो, तब यही देखता हूँ कि वह औरत घर से दुत्कारी जाकर मुसलमान हो, मुसलमान जने, ऐसे मुसलमान जो एक–एक सौ–सौ हिन्दुओं को मारने की कसम खायें। और आप तो साइकालॉजी पढ़े हैं न, आप समझेंगे हिन्दू औरत के साथ सचमुच वही करें जैसे कि झूठी तोहमत उसकी मां पर लगाई गयी। देवताओं का इन्साफ तो हमेशा से यही चला आया है– नफरत के एक–एक बीज से हमेशा सौ–सौ जहरीले पौधे उगे हैं। नहीं तो ये जंगल यहां उगा कैसे, जिसमें आज हम आप खो गये हैं और क्या जाने निकलेगें कि नहीं? हम रोज दिन में कई बार नफरत का नया बीज बोते हैं और जब पौधा फलता है तो चीखते हैं कि धरती ने हमारे साथ धोखा किया।''[5]

अज्ञेय ने संकेत और प्रतीक का प्रयोग ''चिड़ियाघर', 'हीलीबोन की बतखें', 'सांप', 'पगोडा वृक्ष', 'पठार का धीरज', 'पुरूष का भाग्य' आदि कहानियों में है। विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तु हाथी, बन्दर, भालू, शेर, चीते, स्यार आदि प्रतीक के रूप में 'चिड़ियाघर' नामक कहानी में उपस्थित है। अज्ञेय ने अपने पद्य और गद्य दोनों में सांप को प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। सांप कामोत्तेजना के प्रतीक के रूप में 'हीलीबोन की बतखें' नामक कहानी में उपस्थित है। मनोवैज्ञानिक भी सांप को अतृप्त काम–वासना का प्रतीक मानते है। युवती हीलीबोन के एकाकी जीवन में नीरसता विद्यमान है, अकेलेपन से व्यथित युवती के सम्प्रेषण के लिए अज्ञेय ने सांप को प्रतीक के रूप प्रस्तुत किया है। एक कथन हीलीबोन के विषय में है कि ''लोग कहते है कि हीली सुन्दर है, पर स्त्री नहीं है। वह बांबी क्या जिसमें सांप नहीं बसता।''[6] अज्ञेय के पात्र स्थान–स्थान पर अतीत का अवलोकन करते हुए दिखाई पडते हैं। स्मृतियों की ओर ध्यान जाना और पुनः परिस्थिति के साथ अपने को स्थापित करना दुःखद होता है। ''हीली की आंखें सहसा और भी घनी हो आईं– नहीं, इससे आगे वह नहीं सोचना चाहती। व्यथा मर कर भी व्यथा से कुछ अन्य हो जाती है? सांप की बांबी – अपरूप, अनर्थक मिट्टी की ढूंह।''[7]

अज्ञेय के कथा–सृजन में उनके आत्मकथात्मक चिर–परिचित शैली देखने को मिलती है; क्योंकि यह शैली अज्ञेय की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के काफी अनुकूल है। जिसमें मनोवैज्ञाकिता देखने को मिलती है। कहानी 'अमरवल्लरी', 'आदम की डायरी', 'विपथगा', 'कोठरी की बात', आदि में उपर्युक्त शैली देखने को मिलती है। कहानी 'अमरवल्लरी' के प्रारंभ में उत्तम पुरुष पात्र के रूप में कथा को आगे बढ़ाते हुए सोचता है कि ''मैं दीर्घायु हूं, चिरंजीवी हूं, पर यह बेल, जिसके पास मेरा शरीर, मेरा अंग–अंग बंधा हुआ है, यह वल्लरी दयाहीन है, अमर है।''[8] अज्ञेय ने प्रतीक एवं संकेत का सफलतापूर्वक प्रयोग करते हुए सामंती युग के मूल्यों की वास्तविक स्थिति को परत–दर–परत खोलने का सफल प्रयास किया है। इस विषय में डॉ. रामचंद्र तिवारी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी गद्य का इतिहास' में अज्ञेय की कहानियों का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि ''सामाजिक वैषम्य और अन्याय के प्रति एक प्रकार का तीक्ष्ण व्यंग्यपूर्ण विद्रोह का भाव भी उनकी कहानियों में मिलता है।''[9] आगे अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ''अज्ञेय की कहानियों की बहुत बड़ी विशेषता उनकी संकेतिकता है। जो भी संदर्भ वह प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करते हैं, उसमें कुछ गूढ़तर अभिप्राय, कुछ विशेष संकेत, कुछ सूक्ष्मतर बोध उनके माध्यम से व्यंजित होता है।''[10]

अज्ञेय की कहानियों में कोई चरित्र चालू अर्थों में यथार्थवादी शिकायत नहीं करता है। शिकायत करें तो किससे करें? वह तो अपने भाग्य को ही कोस सकता है। सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि में आधुनिक समाज में बढ़ती हुई यांत्रिकता, औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, अजनबीपन, मनुष्य के जीवन में पैदा होने वाली कुंठित भावना, असंतोष, भय आदि का चित्रण देखने को बहुतायत मिलता है। कहानी 'जिजीविषा' में पलायन के उपरांत व्यक्ति के अंदर और बाहर के यथार्थ को बड़ी जीवंतता के साथ देखा–परखा जा सकता है। प्रस्तुत कहानी एक आदिवासी संथाली युवती 'बातरा' के इर्द–गिर्द बुनी गई है; जो पलायित होकर संथाल परगना से कोलकाता जैसे महानगर में आकर भिखमंगों की दुनिया में शामिल हो जाती है। कहानी में आदिवासी समाज के पलायन और विस्थापन से उपजी समस्याओं को बहुत ही मार्मिक और मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कहानी की नायिका बातरा अपने सुख–दुख को किसी के साथ बांटने की इच्छा रखती है। वह चाहती है कि उसका भी कोई अपना हो जो उसके स्वाभिमान और अस्मिता के साथ छलावा ना करें। वह सोचती है ''कोई और जो उसका अपना हो वैसे नहीं जैसे मालिक कुत्ते का अपना होता है, वैसे जैसे फूल खुशबू का अपना होता है।''[11] बातरा की संचित अभिलाषा को एकदिन आधार मिल जाता है; जब उसकी आंखे भिखारियों के बीच रहते हुए दामू से लड़ जाती है। दोनों के निश्चल प्रेम में शारीरिक सौंदर्य निष्प्रभाव प्रतीत होता है। कहानीकार इसका

विशद और यथार्थ वर्णन करते हुए लिखते हैं कि ''बिखरे और उलझे हुए जूं से भरे केश, बवाइयों वाले नंगे पैर, और कलकत्ते की धूप बारिश और मैल से बिल्कुल काला पड़ गया पहले से ही सांवला शरीर, यह बस भी वह देख रही थी, फिर भी वह जानती थी कि वह कुत्तों से अच्छी है।''[12] सांवली बातरा और दामू भीखमंगे भी हैं; जिनकी अशोक वृक्ष के नीचे टीन की चादर के टुकड़ों से बनी छत दुकानदार लाला को फूटी आंख नहीं सुहाती। लाला उसके घर का विरोध करते हुए दुत्कारता है– ''क्यों बे दामू के बच्चे, यहां हवेली खड़ी करेगा क्या?''[13] दामू आग्रह करते हुए प्रश्न करता है कि ''लाला, हमें भी तो रहने की जगह चाहिए।''[14] यह बात दुकानदार लाला को नागवार लगती है और वह वीभत्स व्यंग्य करते हुए कहता है कि ''अब आ गई है न लुगाई, तभी तो घर चाहिए। उसके.....''[15] प्रस्तुत कहानी में प्रतिरोध के स्वर भी परिलक्षित होते दिखाई पड़ते हैं। दामू लाला को ललकारते हुए कहता है कि ''लाला, आबरू रखनी है, तो जबान संभालकर बात कहो।''[16] जिसकी शिकायत लाला कारपोरेशन कार्यालय में करता है और शाम को कारपोरेशन के इंस्पेक्टर द्वारा बातरा की अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह खड़े करता है। कारपोरेशन इंस्पेक्टर कहता है कि ''तेरे बाप की खरीदी हुई जमीन थी, जो घर बनाया? बनी है नवाबजादी, टके–टके के लिए गलियों में ऐसी–तैसी कराती है, यहां सेंट्रल एवेन्यू पर घर चाहिए.....''[17] इंस्पेक्टर द्वारा लगाए गए मिथ्या आरोप, लांछन और गालियों से बातरा अपना आपा खो बैठती है और इंस्पेक्टर को थप्पड़ जड़ देती है। परिणाम यह होता है कि ''उसने अपनी छड़ी से बातरा की छाती में, कमर में, टांगों में प्रहार करना आरम्भ किया और जबान में इंन्पेक्शन के दौरे करते–करते दिमाग में सड़ांध पैदा करती हुई तमाम कलकत्ते की गन्दगी उगलने लगा और आखिर में बच्चे को ठोकर मारकर आगे बढ़ा और पुकारने लगा–पुलिस! पुलिस!''[18] इस तरह बातरा के अंग–प्रत्यंगों पर इंस्पेक्टर और पुलिस द्वारा कई बार छड़ी और बूटों से प्रहार किया जाता है। झगड़े में चोट खाकर बातरा के बच्चे की मृत्यु हो जाती है। जिससे वह विक्षिप्त सी हो जाती है। इस कहानी में अन्याय का व्यंग्यपूर्ण विद्रोह और नैराश्य का भाव देखने को मिलता है। जिसमें आदिवासी जीवन के अदम्य साहस, जिजीविषा को कहानीकार ने पूरी कथा में ध्वनित किया है। साथ ही कहानी में धर्म परिवर्तन की भयावहता को भी जगह प्रदान किया गया है। इसी तरह अज्ञेय ने 'जिजीविषा' कहानी में सामाजिक विषमता और मानव संवेदनहीनता को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

कुल–मिलाकर छोटी–छोटी घटनाओं को लेकर क्रिया प्रतिक्रिया से गुजरते हुए मानसिक घात प्रतिघातों और अंतर्द्वंद्वों की अंविति में अज्ञेय के साहित्य का कोई जोड़ नहीं है। मनोविश्लेषणात्मक कहानियां आधुनिक समय की मांग है। अज्ञेय ने आधुनिकता को अपनी कहानियों महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान किया है। मनोविज्ञान से प्रभावित होने के कारण अज्ञेय की कहानियों में व्यक्ति के अन्तर्मन के द्वन्द्वों, संघर्षों और कुंठाओं का चित्रण देखने को मिलता है। उन्होंने अपनी कहानी लेखन में बहुविधि प्रयोग किए हैं। उन्होंने चरित्र पात्रों के अनुरूप आत्मकथात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, नाटकीय शैली आदि का प्रयोग अपने कहानियों में किया है। जिसके कारण विश्लेषणात्मक गुण अज्ञेय की कहानियों में प्रमुखता से विद्यमान है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. हिन्दी साहित्य का गद्य इतिहास; डॉ. रामचन्द्र तिवारी; अष्टम् संस्करण 2012, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, 221001, पृ.सं.– 806।
2. अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियां; सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'; संस्करण 1992, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरीगेट दिल्ली, 110006 पृ.सं.– 492।
3. वही; पृ.सं.– 492।
4. वही; पृ.सं.– 493।
5. वही; पृ.सं.– 499।
6. वही; पृ.सं.– 539।
7. वही; पृ.सं.– 539।
8. वही; पृ.सं.– 27।
9. हिन्दी साहित्य का गद्य इतिहास; डॉ. रामचन्द्र तिवारी; अष्टम् संस्करण 2012, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, 221001, पृ.सं.– 807।
10. वही; पृ.सं.– 807।
11. अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियां; सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'; संस्करण 1992, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरीगेट दिल्ली, 110006 पृ.सं.– 432।
12. वही; पृ.सं.– 432।
13. वही; पृ.सं.– 437।
14. वही; पृ.सं.– 437।
15. वही; पृ.सं.– 437।
16. वही; पृ.सं.– 438।
17. वही; पृ.सं.– 438।
18. वही; पृ.सं.– 438।

समावेशी शिक्षा की प्रासंगिकता

सुधीर कुमार तिवारी*

शोध सार : शिक्षा एक माध्यम है जो बालकों को उनकी क्षमताओं के अनुरूप सर्वश्रेष्ठ प्राप्त करने के प्रयास में सहायक होता है। इस प्रयास में शिक्षक उनकी समस्याओं को हल करने का प्रयास करता है, जिससे शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों की क्षमता का विकास किया जा सके। यह शिक्षण का एक दृष्टिकोण है, जो बालकों के शिक्षण–अधिगम एवं भागीदारी को सुनिश्चित करता है और उनके शिक्षण अधिगम हेतु उपयुक्त संसाधन उपलब्ध कराता है। आज एक शिक्षक को ज्ञान के साथ–साथ कौशल, मानवीय मूल्यों से भी परिपूर्ण होने की जरूरत है, जो मानवीय मूल्यों और विकसित समाज को सुदृढ़ करता है। इस व्यापक दृष्टिकोण का एक प्रमुख कारण यह है कि इनमें से कई कारक परस्पर क्रिया करते हुए संयोजन के रूप में कार्य करते हैं। समावेशन के इस व्यापक दृष्टिकोण एवं शैक्षिक आवश्यकताओं की धारणा को सीखने के लिए अतिरिक्त समर्थन की अवधारणा से जोड़कर विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने का प्रयास किया जाता है। अर्थात् समावेशन वह है जहाँ हम सब एक–दूसरे को स्वीकार करें, एक–दूसरे का समर्थन करें और एक–दूसरे का सहयोग करें। सभी विद्यार्थियों को शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया में किसी न किसी रूप में अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता होती है। इसलिए समावेशी शिक्षा केवल विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की आवश्यकताओं तक ही सीमित नहीं है, वरन् यह सभी बालकों की आवश्यकताओं पर केंद्रित है।

मुख्य शब्द : समावेशी शिक्षा, दिव्यांगजन अधिनियम, विकलांगता का वर्गीकरण, समावेशन।

प्रस्तावना : समावेशी शिक्षा की उत्पत्ति विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं के आधार पर विशेष शिक्षा और विकलांगता के क्षेत्र में हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में विशिष्ट बालकों के शिक्षण–अधिगम हेतु विशिष्ट विद्यालयों की संकल्पना का विकास हुआ और बीसवीं शताब्दी के मध्य में विभिन्न आयोगों द्वारा गंभीर सांवेगिक विकलांग बालकों के शिक्षण–अधिगम के लिए विशिष्ट विद्यालय खोले जाने पर बल दिया गया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी में विशेष शिक्षा के क्षेत्र का उदय और विकास हुआ और विकलांग विद्यार्थियों के लिए विशेष विद्यालय आदर्श बन गए। विशिष्ट बालकों को शिक्षा के सामान्य अधिगम प्रक्रिया से लाभ उठाने में असमर्थ माना जाता था। इसलिए इन बालकों की अक्षमतानुसार शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को अलग–अलग विद्यालयों में आवश्यक माना गया। ऐतिहासिक रूप से अलग–अलग विशेष बालकों की शिक्षा को विकलांगता के चिकित्सा मॉडल द्वारा निर्धारित किया गया, जो सीखने की क्षमता पर आधारित थी। विशिष्ट विद्यार्थियों के लिए इस दृष्टिकोण को सामाजिक स्वीकारिता प्राप्त थी। यह प्रक्रिया कई वर्षों तक बिना चुनौतीपूर्ण चलती रही किंतु जैसे–जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास हुआ वैसे–वैसे विशेष शिक्षा के क्षेत्र में भी व्यापक विस्तार हुआ और अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान एवं प्रयासों के परिणाम स्वरूप समावेशी शिक्षा की संकल्पना का विकास हुआ।

वर्तमान समय में समावेशी शिक्षा के अंतर्गत कक्षा–कक्ष प्रक्रियाएँ, ज्ञान सृजन, सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन आदि ऐसे शैक्षणिक सरोकार हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सभी विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कार्य करें। शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी है, इसलिए किसी भी समाज की उन्नति में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। भारत जैसे लोकतंत्रीय देश में शिक्षा की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि शिक्षा का संबंध केवल साक्षरता से ही नहीं है, बल्कि यह चेतना और उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करने वाला साधन भी है। विकलांगता के क्षेत्र में प्रभावशाली परिवर्तन का दौर 3 दिसम्बर 1981 ई० में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय विकलांगता दिवस की स्थापना उदय के साथ होता है। इसका उद्देश्य था– पूर्ण सहभागिता व समानता। सही मायनों में इसी घोषणा ने सामान्य लोगों का ध्यान विकलांग लोगों के प्रति आकर्षित किया। अंतरराष्ट्रीय विकलांगता दिवस का प्रमुख उद्देश्य सामान्य लोगों में विकलांगता के प्रति धनात्मक

*** पी–एच. डी.– शोध छात्र, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)।**

अभिवृत्ति का विकास करना, दिव्यांगजन को समाज में उचित स्थान प्रदान करना तथा सामाजिक क्रियाओं में उन्हें सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार करना था, जिसके परिणाम स्वरूप समावेशी शिक्षा के रूप में नए विचार का उदय हुआ (कुमार, 2017)।

समावेशी शिक्षा संबंधी अवधारणा जनतांत्रिक व्यवस्था, स्वतंत्रता, समता, समानता एवं बंधुत्व के मानवीय मूल्यों पर बल देती है जो मानवतावादी दृष्टिकोण की उपज है और सामाजिक भेदभाव को मिटाने में सहायक भी। समावेशी शिक्षा केवल एक दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि एक माध्यम है, विशेषकर उन लोगों के लिए जिनमें कुछ सीखने की ललक होती है और जो तमाम अवरोधों के बावजूद आगे बढ़ना चाहते हैं। यह इस बात को दर्शाता है कि सभी व्यक्ति, चाहे वो सक्षम हो या अक्षम... उन्हें सीखने योग्य बनाया जाए। समावेशन सभी विद्यार्थियों को एक ही स्तर पर आंके जाने पर बल नहीं देता बल्कि उनकी आवश्यकता पर बल देता है।

वर्तमान समय में शिक्षा ने दिव्यांगों के लिए अस्वीकरण और अति संरक्षण जैसी धारणा को पूर्णतः नकार दिया है क्योंकि अति संरक्षण की भावना दया से प्रेरित होती है और अस्वीकरण की भावना घृणा से। इसलिए ये दोनों ही दिव्यांगों के समाजीकरण में बाधक होते हैं। समावेशी शिक्षा द्वारा सभी छात्रों की योग्यता का विकास किया जाता हैं जिससे वे अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकें। यह एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जिसमें मूल्य, ज्ञान–प्रणाली, संस्कृति, प्रक्रिया एवं संरचनाओं के सभी स्तरों पर समावेशी नीतियों द्वारा ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है जिससे सभी विद्यार्थी शिक्षा के साथ–साथ अन्य सभी सामाजिक गतिविधियों से जुड़ जातें हैं और उनका सांवेगिक एवं बौद्धिक विकास होता है।

विशेष विद्यालय, एकीकृत विद्यालय एवं समावेशी विद्यालय में अंतर : मंगल एवं अन्य (2017) के अनुसार विशेष विद्यालय, एकीकृत विद्यालय एवं समावेशी विद्यालय में अंतर इस प्रकार हैं–

विशेष विद्यालय	एकीकृत विद्यालय	समावेशी विद्यालय
सामाजिक अलगाव की नीति	एकीकरण नीति	समावेशी शिक्षा नीति
माफ़ कीजिए हमारे पास आपके लिए शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं है	आपका स्वागत है, यद्यपि हमारे पास आपकी विशिष्ट आवश्यकता पूर्ति हेतु कोई संसाधन नहीं है परन्तु हम आपको जैसे–तैसे समायोजित करेंगे।	आपका स्वागत है, हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपकी आवश्यकताओं के अनुरूप शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराएंगे।

मंगल, एवं अन्य (2017)

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (Rights of Persons with DisabilitiesAct 2016) : दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों का संयुक्त राष्ट्र समझौता (UNCRPD, 2006) तथा निःशक्त जन अधिनियम (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण तथा पूर्ण भागीदारी–1995) को आधार बनाते हुए भारत सरकार ने दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम–2016 बनाया, जो दिव्यांगों की दृष्टिकोण से एक क्रांतिकारी सकारात्मक परिवर्तन है। विकलांगता के नए प्रकारों को चिंहित कर उन सभी विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को भी मुख्य धारा से जोड़ने के लिए प्रयास किया गया है जो अभी तक समाज की परिधि में स्थापित थे। विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को विकास की मुख्य धारा में शामिल करने हेतु उनकी विभिन्न प्रकार की अशक्तओं की पहचान होना आवश्यक था क्योंकि उनकी सुगमता तथा प्राप्त अधिकारों की व्यापकता ही, उनके कौशल व रचनात्मकता का पोषण कर सकती है। इन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से 16 दिसंबर, 2016 को लोक सभा में 'दिव्यांगजन अधिकार विधेयक, 2016 पारित कर दिया गया। इस विधेयक ने निःशक्त जन (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण तथा पूर्ण सहभागिता) अधिनियम, 1995 का स्थान लिया। यह अधिनियम (दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम–2016) निशक्तजनों, निशक्त महिलाओं और बच्चों को स्वावलंबी जीवन व्यतीत करने, उन्हें सभी प्रकार की हिंसाओं से सुरक्षित करने सहित निशक्त लोगों के अधिकारों का समर्थन करता है (लिमये एस. 2017)। आज विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को शिक्षा देने हेतु समावेशी वातावरण के निर्माण की बात की जा रही है, जिसमें सभी बच्चों का ध्यान रखा जा सके। 2011 के आंकड़े बताते हैं कि देश में दिव्यांगों की संख्या 2,68,10,577 हैं जिसमे से 0–19 वर्ष के बीच की आयु के दिव्यांगों की संख्या 77,90,921 है। आज दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (2016) के परिणाम स्वरूप विकलांगता के नए वर्गीकरण प्रकाश में आ सकें हैं, जिनसे अभी तक हम अनभिज्ञ थे। केंद्र सरकार ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए कई अक्षमताओं को विकलांगता की श्रेणी में रखा है,

जिससे विकलांगता के प्रकारों की संख्या 7 से बढ़कर 21 हो गयी हैं। इस विधेयक में विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के लिए 6–18 वर्ष तक की आयु तक मुफ्त शिक्षा के अधिकार की व्यवस्था की गयी है। दिव्यांगजन के लिए शिक्षा में आरक्षण 3% से बढ़ा कर 5% और नौकरी में आरक्षण 3% से बढ़ाकर 4% कर दिया गया है। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (2016) के अनुसार दिव्यांगता को मुख्य रूप से 6 भागों वर्गीकृत किया गया है–

1.	शारीरिक दिव्यांगता (Physical Disability)	गतिविषयक दिव्यांगता (Locomotor Disability)	
		दृष्टिगत अक्षमता (Visual Impairment)	अन्धता/ दृष्टिबाधिता (Blindness)
			निम्न–दृष्टि/ अल्प–दृष्टि (Low Vision)
		श्रवण शक्ति अक्षमता (Hearing Impairment)	बधिर (Deaf)
			ऊँचा सुनने वाला(Hard of Hearing)
		वाक् और भाषा दिव्यांगता (SpeechAnd Language Disability)	
2	बौद्धिक दिव्यांगता (Intellectual Disability)	विनिर्दिष्ट विद्या दिव्यांगता/ विशिष्ट अधिगम अक्षमता (Specific Learning Disabilities)	डिस्लेक्सिया (DysleÛia), डिसग्राफिया (Dysgraphia), डिसकैलक्यूलिया (Dyscalculi), अफेसिया (Aphasia), विकासात्मक डायस्प्रेसिया (DyspraÛi)
		स्वपरायणता/ आत्मकेंद्रित स्पेक्ट्रम (Autism Spectrum Disorder)	
3.	मानसिक व्यवहार (Mental Behaviour) एवं मानसिक रुग्णता (Mental illness)	जो किसी व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास रुकने या अपूर्ण होने की स्थिति है।	
4.	निम्नलिखित के कारण दिव्यांगता	चिरकारी तंत्रिका दशा (Chronic Neurological Conditions)	बहु–स्केलेरोसिक/ बहु–काठिन्य (Multiple Sclerosi)
			पार्किन्सन रोग (ंतापदेवदे क्पेमेंम)
		रक्त विकृति (Blood Disorder)	हेमोफीलिया (Haemophili)
			थेलेसीमिया (Thalassemia)
			सिक्कल कोशिका रोग (Sickle Cell Disease)
5.	बहु–दिव्यांगता (Multiple Disabilitiè)	एक या एक से अधिक विनिर्दिष्ट दिव्यांगताएं, जिसके अंतर्गत दृश्य और श्रव्य से संबंधित अक्षमता सम्मिलित हो (Including Deaf Blindness)	
6.	कोई अन्य प्रवर्ग जो केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं।		

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (2016) के अध्याय 3 की धारा 16, 17 एवं 18 में दिव्यांगजनों की शिक्षा हेतु कई प्रावधान सुनिश्चित किए गए हैं। धारा 16 में यह स्पष्ट किया गया है कि सरकार और स्थानीय प्राधिकारी प्रयास करेंगें कि उनके द्वारा वित्तपोषित व मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाएं, दिव्यांग बालकों के लिए समावेशी शिक्षा प्रदान करें। इस प्रक्रिया हेतु इस धारा में कुल 8 प्रावधानों को समिल्लित किया गया है। धारा 17 में यह स्पष्ट किया गया है कि धारा 16 के प्रावधानों अर्थात् समावेशी शिक्षा को सुगम और संवर्धित बनाने के लिए क्रियान्वयन करना अनिवार्य है। इस प्रक्रिया हेतु इस धारा में कुल 11 प्रावधानों को समिल्लित किया गया है। धारा 18 में यह स्पष्ट किया गया है कि समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी प्रौढ़ शिक्षा में दिव्यांगजनों की भागीदारी को संरक्षित संवर्धित और सुनिश्चित करने के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ समान शिक्षा कार्यक्रम जारी रखने के उपाय करेंगे। समाज का विकास उसमें निहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमताओं का कुशलतापूर्वक

उपभोग पर निर्भर करता है, समाज के सभी वर्ग के सहयोग के बिना पूर्ण विकास सम्भव नहीं हो सकता है। शिक्षा किसी समाज के ऊर्ध्वगामी विकास का सबसे महत्वपूर्ण कारक है। भारत में विकलांग लोगों की संख्या अधिक है और इनके विकास के बिना देश का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। भारत में विकलांग लोगों के लिए शिक्षा का इतिहास एक बदलते स्वरूप में उभरता हुआ दिखाई देता है (शुक्ला, एस. के. 2015)। समवेशी शिक्षा के अनुसार सरकार और स्थानीय प्राधिकारी यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेंगे कि उनके द्वारा सभी वित्तपोषित व मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाएं विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को मुख्य धारा के विद्यार्थियों के साथ–साथ शिक्षा प्रदान करें।

भारत में विकलांगता का वर्गीकरण : भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार कुल विकलांगता के अंतर्गत 19% लोग देखने में अक्षम है, 19% लोग सुनने में अक्षम हैं, 7% लोग बोल नहीं पाते, 20% लोगों को गामन अक्षमता हैं, 6% लोगों को मानसिक मंदता है, 3% लोग मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं, 8% बहु–विकलांगता से और 18% किसी न किसी विकलांगता से पीड़ित हैं। सांख्यिकीय विकलांगता की रूपरेखा 2021 (A statisties Porfile PwD 2021 Disability) के अनुसार आयु के अनुसार विकलांगता का वर्गीकरण इस प्रकार है–

- भारत में कुल विकलांगता के अंतर्गत 0–19 आयु के मध्य 18% लोग देखने में अक्षम है, 20% लोग सुनने में अक्षम हैं, 9% लोग बोल नहीं पाते, 13% लोगों को गामन अक्षमता हैं, 8% लोगों को मानसिक मंदता है, 2% लोग मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं, 9% बहु–विकलांगता से और 21% किसी न किसी विकलांगता से पीड़ित हैं।
- भारत में कुल विकलांगता के अंतर्गत 20–39 आयु के मध्य 15% लोग देखने में अक्षम है, 18% लोग सुनने में अक्षम हैं, 9% लोग बोल नहीं पाते, 22% लोगों को गामन अक्षमता हैं, 7% लोगों को मानसिक मंदता है, 3% लोग मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं, 6% बहु–विकलांगता से और 20% किसी न किसी विकलांगता से पीड़ित हैं।
- भारत में कुल विकलांगता के अंतर्गत 40–59 आयु के मध्य 19% लोग देखने में अक्षम है, 18% लोग सुनने में अक्षम हैं, 8% लोग बोल नहीं पाते, 23% लोगों को गामन अक्षमता हैं, 5% लोगों को मानसिक मंदता है, 4% लोग मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं, 5% बहु–विकलांगता से और 18% किसी न किसी विकलांगता से पीड़ित हैं।
- भारत में कुल विकलांगता के अंतर्गत 59 की आयु से ऊपर के 25% लोग देखने में अक्षम है, 19% लोग सुनने में अक्षम हैं, 4% लोग बोल नहीं पाते, 25% लोगों को गामन अक्षमता हैं, 2% लोगों को मानसिक मंदता है, 2% लोग मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं, 12% बहु–विकलांगता से और 11% किसी न किसी विकलांगता से पीड़ित हैं।

विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों का समावेशन : भारत में समावेशी शिक्षा का वर्तमान स्वरूप शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन हेतु किये जा रहे संरचनात्मक परिवर्तनों का परिणाम है। समावेशी शब्द एक सामाजिक विचारधारा है। समावेशन की इस प्रक्रिया में विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को सामान्य कक्षाओं में गैर–विकलांग साथियों के साथ सीखने के अवसरों को सुरक्षित करता है। शिक्षा सामाजिक–आर्थिक गतिशीलता के लिए सबसे शक्तिशाली साधन है और एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है। ऐसी दशा में विकलांग बालकों की शिक्षा की व्यवस्था करना समवेशी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक हो जाता है। विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के लिए शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने हेतु विभिन्न प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रम, विशेष शिक्षकों की नियुक्ति, सामान्य शिक्षकों का प्रशिक्षण, विशेष आवश्यकता वाले बालकों की पहचान, उनका सामान्य विद्यालयों में समावेशन, समावेशी शिक्षा, उपकरण, ब्रिज कोर्स आदि की व्यवस्था की जा रही है। विशिष्टता प्रकृति का दिया गया एक वरदान है जिसके कारण अपनी विशिष्टता के कारण प्रत्येक बालक अन्य दूसरे बालकों से अलग होते हैं। अगर इनकी विशिष्टता को ध्यान मे रखते हुए उनकी आवश्यकतानुसार शिक्षा का प्रबंध किया जाए तो वे पराश्रित न होकर दूसरों के लिए प्रेरणा के रोल मॉडल बन सकते हैं, क्योंकि अधिकतर दिव्यांग ही सक्षम लोगों को यह सिखाते हैं कि जब जीवन में चुनौती आए तो खुद चुनौती को स्वीकार करो (रघुराम, 2016)। परामर्श एवं मार्गदर्शन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम विशिष्ट आवश्यकता

वाले विद्यार्थियों के अंदर की नकारात्मक अभिवृत्ति, हीनता की भावना को दूर कर के उन्हें आत्मनिर्भर बना सकते हैं। इसलिए विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के विकास में परामर्श एवं मार्गदर्शन की भूमिका बहुत आवश्यक होती है। जहाँ निर्देशन बालक के व्यक्तित्व व्यवसायिक एवं शैक्षिक जुड़ी समस्याओं का समाधान करने में सहायक होता है वहीं परामर्श व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में उचित योग्यता का विकास करता है। जोसेफ (2013), भास्कर एवं श्रीवास्तव (2017) के अनुसार भिन्न–भिन्न आवश्यता वाले विद्यार्थियों का परामर्शन की प्रक्रियाएं भिन्न–भिन्न होती हैं–

1. बुद्धि लब्धि परिक्षण, साक्षात्कार, विद्यालय प्रगति–पत्र, रुचियाँ, योग्यता एवं एवं क्षमता को जानने के पश्चात् ही परामर्श देना चाहिए।
2. बालकों की रूचि योग्यता एवं क्षमता के अनुकूल क्रियाओं का आयोजन करना चाहिए।
3. चुनौतीपूर्ण एवं जिम्मेदारी वाला कार्य देना चाहिए।
4. पाठ्यक्रम को उनकी आयु और मानसिक योग्यता के अनुकूल रखना चाहिए।
5. व्याख्यान विधि के स्थान पर व्यवहारिक विधि का उपयोग करना जिसमें श्रव्य–दृश्य उपकरणों का समुचित प्रयोग हो।
6. छोटे–छोटे कार्यों को करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।
7. शिक्षण हेतु बहुआयामी इंद्रिय प्रशिक्षण, अभ्यास एवं पुनरावृत्ति की जनि चाहिए।
8. इनके प्रश्न एवं समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनकर विचार करना चाहिए।
9. इनकी क्षमता एवं विचारों की सराहना एवं प्रोत्साहन करना चाहिए।
10. रचनात्मक कार्यों में इन बालकों को संलग्न किया जाना चाहिए एवं रचनात्मक कार्यों के लिए पुनर्बलन दिया जाना चाहिए।
11. ऐसे बालकों को स्व–अध्ययन एवं वाद–विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

निष्कर्ष :– समावेशी शिक्षा द्वारा विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का अभिप्राय यह है कि उन्हें उनकी आवश्यकतानुसार शिक्षा, समायोजन, विकास हेतु आवश्यक सहयोग एवं सुविधाएं उपलब्ध करायी जाए। यह बालकों की स्वतंत्रता, गरिमा के साथ–साथ सभी के लिए अवसरों की समानता पर बल देती है। इसमें सभी विद्यार्थियों के साथ भेदभाव एवं अवरोध रहित वातावरण का निर्माण करके आवश्यक उपकरणों की सहायता से प्रशिक्षित किया जाता है और उनके अंदर निहित क्षमताओं का विकास करके उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाता है। इस प्रकार समावेशी शिक्षा के अंतर्गत कक्षा–कक्ष में एक शिक्षक को विशिष्ट बालक की योग्यता को ध्यान में रखते हुए, उसकी योग्यता के अनुरूप श्रव्य, दृश्य एवं क्रियात्मक अधिगम शैलियों के द्वारा शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का क्रियान्वयन करना चाहिए।

संदर्भ सूची :–

1. कुमार, एस. (2017). दिव्यांग बच्चों के प्रति शिक्षामित्रों का दृष्टिकोण. परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 24(2). पृ.सं. 67–74.
2. जोसेफ, डॉ. आर. ए. (2013). पुनर्वास के आयाम. समाकलन पब्लिशर्स करौंदी, वाराणसी।
3. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (2016). http://www.ncpedp.org/RPWDact2016
4. निःशक्त जन अधिनियम (1995) http://gu.vikaspedia.in/health/ab8a95acdab7aae-a97ac1a9cab0abeaa4/PWD.pdf
5. भारत में विकलांग व्यक्ति (दिव्यांगजन) – एक सांख्यिकीय रूपरेखा : (Persons with Disabilities (Divyangjan) in India - A Statistical Profile : 2021) http://mospi.nic.in/sites/default/files/publication_reports/Persons_Disabilities_31mar21.pdf
6. भास्कर, एस. एवं श्रीवास्तव ए. के. (2017). समावेशी विद्यालयों का सृजन, राखी प्रकाशन प्रा. लि. आगरा।
7. मंगल, एस. के. एवं मंगल, एस. (2017). समेकित विद्यालय की स्थापना, शिप्रा प्रकाशन, प्रयागराज।
8. लिमये, संध्या (2017) : निशक्तजनों का सशक्तीकरण, योजना, जुलाई, 07(61). नई दिल्ली।
9. विकलांग व्यक्ति अधिकार संयुक्तराष्ट्र अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन (UNCRPD, 2006) https://www.un.org/disabilities/documents/convention/convoptprot-e.pdf
10. शुक्ला, एस. के. (2015). सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन. परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 22(2). पृ.सं. 91–102.

संगीत और आनुषंगिक विषय

(आचार्या सुभद्रा चौधरी के विशेष संदर्भ में)

रोली पाण्डेय *

डॉ. के. ए. चंचल**

सारांश :– आचार्या सुभद्रा चौधरी जी ने **संगीत–संचयन** नामक पुस्तक के तीसरे अध्याय में संगीत से संबंधित विषयों यथा वेद, व्याकरणशास्त्र, संस्कृत के काव्यशास्त्र, पाश्चात्य संगीत के म्यूजिकोलॉजी से भारतीय संगीतशास्त्र के अन्तःसंबंध को प्रकाशित किया है। उनका यह श्लाघनीय प्रयास भारतीय संगीत के अन्तर्विषयी अध्ययन को हमारे सम्मुख रखता है। संगीत को प्रायः प्रयोगपक्ष अर्थात् उसके व्यावहारिक स्वरूप के कारण जाना जाता है परन्तु सुभद्रा जी ने अपने विशद् अध्ययन के द्वारा यह सिद्ध किया कि संगीत का सैद्धान्तिक पक्ष अथवा शास्त्रपक्ष भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि शास्त्रपक्ष। वे संगीत के सिद्धान्तपक्ष को पुनर्जीवित कर सम्पूर्ण संगीतज्ञ का निर्माण करना चाहती थीं। **संगीत–संचयन** उनके इन्हीं प्रयासों का प्रतिफल है। इसके माध्यम से वे यह सिद्ध करने में सफल हुई कि अन्य विषयों कि भाँति संगीतशास्त्र में भी अन्तर्विषयी अध्ययन कि अपार संभावनाएँ है।

मुख्य शब्द :– गान्धर्व, नाट्य, गीत, वाद्य, नृत्य, नाद, काव्य, भाषा, अर्थबोध, रस, रसानुभूति, श्रुति, स्वर, स्फोटवाद, प्रतीयमान, छन्द, म्यूजिकोलॉजी

साहित्यावलोकन :– प्रस्तुत शोध–पत्र आचार्या सुभद्रा चौधरी कृत संगीत–संचयन (संगीत और सम्बन्ध विषयों पर लेखों का संग्रह) पर आधारित है। इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन सन् 1986 में कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर से हुआ था। जहाँ तक मुझे ज्ञात है सुभद्रा जी की इस कृति पर कोई लेख, पुस्तक–समीक्षा अथवा किसी भी प्रकार का निबन्ध आदि भी उपलब्ध नहीं है।

शोध–पत्र का उद्देश्य :– इस शोध–पत्र का उद्देश्य आचार्या सुभद्रा चौधरी जी की बहुमूल्य कृतियों की उपादेयता को पुनः आलोकित करना है जिससे उनका अविस्मरणीय श्रम चिरंजीवी हो सकें।

शोध–पद्धति :– प्रस्तुत शोध–पत्र की पूर्णता हेतु विश्लेषणात्मक अथवा समीक्षात्मक शोध–पद्धति का बहुलता के साथ प्रयोग किया गया है। आचार्या सुभद्रा जी की पुस्तकों की सामग्री को यथोचित विधि से चुनकर उनका विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना :– भारतीय संगीतशास्त्र के क्षेत्र में आचार्या सुभद्रा चौधरी का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। सुभद्रा जी संगीतमार्तण्ड पण्डित ओंकार नाथ ठाकुर जी एवं आचार्या प्रेमलता शर्मा जी की सुयोग्य शिष्या थीं। उन्होंने अपनी लेखनी तथा कठोर सांगीतिक साधना के बल पर भारतीय संगीतशास्त्र के उन्नयन में अविस्मरणीय योगदान दिया। वे अनेक ग्रन्थों की अनुवादक, सम्पादक, संकलनकर्त्री तो थीं साथ ही, एक कुशल रचनाकार भी थीं। प्रस्तुत शोध–पत्र आचार्या सुभद्रा जी कृत **संगीत–संचयन** नामक पुस्तक पर आधारित है जो उनके द्वारा रचित लेखों का संग्रह है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है। इस पुस्तक का प्रत्येक अध्याय सांगीतिक दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है क्योंकि इसके सभी अध्यायों को सुभद्रा जी ने सांगीतिक स्वर सा, रे ग, म, प, ध, नि, सां में विभक्त किया है। प्रत्येक स्वर जो इस ग्रन्थ में अध्याय के सूचक हैं, उसके अन्तर्गत उन्होंने अपने 3–4 लेखों को समाहित कर अध्याय को पूर्णता प्रदान की है। प्रस्तुत शोध–पत्र का आधार **संगीत–संचयन** पुस्तक का तृतीय अध्याय है जिसे संगीत के तीसरे स्वर **'ग'** की संज्ञा दी गई है। इस अध्याय में आचार्या सुभद्रा चौधरी जी ने क्रमशः **गान्धर्व, नाट्य और संगीत**, **संगीत और**

***शोध–छात्रा, संगीतशास्त्र विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

**** असिस्टेंट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

काव्य, भारतीय संगीत की अवधारणाएँ (भाषा सम्बन्धी चिन्तन तथा अर्थबोध और रसानुभूति की प्रक्रिया के आलोक में), भारतीय संगीत में छन्द तथा **म्यूजिकोलॉजी और संगीतशास्त्र की क्षेत्र की रूपरेखा** नामक पाँच लेखों का संकलन किया है। प्रस्तुत शोध–पत्र इन्हीं लेखों के मन्तव्य और भावार्थ को सरलीकृत करने का अकिंचन प्रयास है।

गान्धर्व, नाट्य और संगीत :– यह **संगीत–संचयन** पुस्तक के तीसरे अध्याय **'ग'** का प्रथम लेख है। इस लेख में सुभद्रा जी कहती हैं कि हमारे शास्त्रों में प्राचीन काल से ही संगीतकला का प्रमाण शाश्वत रूप में उपलब्ध होता है। यद्यपि समस्त कलाओं और उनके शास्त्रों के विचारों में भले ही भिन्नता हो लेकिन ये एक–दूसरे से कहीं न कहीं जुड़े हैं। ये समस्त कलाएँ वेदों से जुड़ी होने के कारण इन्हें स्थायी और शाश्वत रूप प्राप्त हुआ है। संगीत का संबंध गान्धर्व वेद से है। अतः संगीत की पद्धति प्राचीनकाल से दो रूपों में चली आ रही है– पहला वैदिक संगीत और दूसरा लौकिक संगीत।

सुभद्रा जी के अनुसार संगीत में परंपरा का विशेष महत्व था, परन्तु लौकिक संगीत इसके विपरीत देशकाल एवं स्थिति में परिवर्तन के साथ बदलती रही। इसके अतिरिक्त गान्धर्व और गान से भारतीय संगीत का सम्बन्ध अखण्ड है और ये सभी नाट्य से जुड़े हैं। अतः इस दृष्टि से गान्धर्व उपवेद और नाट्यवेद के रूप में परिलक्षित हुआ। **नाट्यशास्त्र** में नाट्य के अंग के रूप में गान्धर्व का प्रमाण प्राप्त होता है। गान्धर्व परंपरा का प्रवर्तक नारदमुनि को माना जाता है गान्धर्व शब्द की व्युत्पत्ति में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है– **'गन्धर्वस्य इदं इति गान्धर्वम्'** अर्थात् गंधर्व में अण् प्रत्यय लगने से गान्धर्व शब्द बनता है। अन्यत्र गान्धर्व शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार प्राप्त होती है– **'गंधं अवंति इति गंधर्वम्'** अर्थात् गन्ध तक पहुँचने का अर्थ है गन्ध से जान लेना। दूसरे शब्दों में, जो गंध तक पहुँचे वह गंधर्व है। गंधर्व की व्युत्पत्ति में गंध से जान लेने का अर्थ यह है कि जो स्वर की गंध को भी पहचान ले।[1]

'गान्धर्व शब्द में प्रयुक्त **'ग, ध, व'** इन तीनों वर्णों के आधार पर स्पष्ट किया गया है कि **'ग'** के द्वारा गेय का सूचन है। **ध** और **व** चातुर्यपूर्वक हस्तांगुलि के द्वारा वादन को सूचित करते हैं।[2] गीत, वाद्य और नृत्य के साथ गन्धर्वों का सम्बन्ध आदिकाल से ही चला आ रहा है। ''प्राचीनकाल से ही गान्धर्व योनि कलाओं में निपुण मानी गई है।''[3] आचार्या सुभद्रा चौधरी जी ने भरतमुनि कृत **नाट्यशास्त्र** (22/107) में उल्लिखित गान्धर्व–स्त्री के लक्षण का वर्णन अपने प्रस्तुत लेख में करते हुए कहती है– ''जो वाद्य, गीत तथा नृत्य में प्रवीण हो तथा मुखमण्डल पर स्निग्धता, त्वचा, केश व नेत्र, हृदय को सुख देते हों, गान्धर्व–स्त्री की संज्ञा से अभिहित की जाती है।''[4]

सुभद्रा जी ने गान्धर्व के पश्चात् नाट्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कहा है कि नाट्य में **ऋग्वेद** से पाठ, **सामवेद** से गीत, **यजुर्वेद** से अभिनय और **अथर्ववेद** से रसतत्त्व लेकर ही इसकी रचना हुई। मतंगमुनि और शाङ्गदेव के काल से ही में नाट्य से पृथक् गीत, वाद्य, नृत्य के लिये एक शब्द 'संगीत' का प्रचलन शुरू हुआ और यहीं से संगीत की परिभाषा गढ़ी गयी। संगीत का अर्थ है सम्यक् गीत अर्थात् भली प्रकार से गीत प्रयोग। **संगीतरत्नाकर** तथा उसके बाद के ग्रन्थों में संगीत को परिभाषित करते हुए कहा गया है **'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।'** इससे सिद्ध होता है कि इसमें गीत और वाद्य के साथ नृत्य को भी स्थान प्राप्त हुआ। जबकि नृत्य का प्रयोग पहले से ही नाट्य में होता था। इसका तात्पर्य यह है कि संगीत को केवल सुनने योग्य बनाना ही इष्ट नहीं था अपितु दृश्यांश भी रखने की भावना विद्यमान थी।

नाट्य, गान्धर्व और संगीत का परस्पर सम्बन्ध बताते हुए सुभद्रा जी ने कहा कि ''सत्, चित्, आनन्द की जो अवधारणा भारतीय दर्शन में है उसमें सत् की अपेक्षा चित् और चित् की अपेक्षा आनंद की महत्ता अधिक मानी गई है और सत् से क्रिया का, चित से ज्ञान का तथा आनन्द से इच्छा का सम्बन्ध माना जाता है।''[5] अतः नाट्य, गान्धर्व और संगीत की परिभाषाओं से यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि नाट्य में स्वर, ताल, पद, नृत्य चारों है तथा यह दृश्य और श्रव्य दोनों है। नाट्य के अंग के रूप में गान्धर्व **'स्वरतालपदात्मकं'** होने से केवल श्रव्य है। संगीत में गीत–वाद्य–नृत्य का समुच्चय होने के कारण वह दृश्य

व श्रव्य दोनों ही है। कालान्तर में हुए परिवर्तनों से प्रभावित होकर संगीत से नृत्य तत्त्व को अलग कर दिया गया।

संगीत और काव्य :– द्वितीय लेख में लेखिका ने संगीत और काव्य के सहसम्बन्ध को प्रकाशित किया है तथा **'नाद'** तत्त्व और उसके प्रकारों से अपने लेख का प्रारम्भ किया है। सुभद्रा जी के अनुसार शास्त्रों में आहत नाद (जिसमें ध्वनि सुनाई दें) से ही संगीत और काव्य की उत्पत्ति मानी गयी है। पंच महाभूतों (पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल तथा आकाश) में सबसे सूक्ष्म गुण शब्द है, यह शब्द ही 'वाक्' तत्त्व है, अर्थात् शब्द के द्वारा ही हम बोलते हैं और अपने मन के भाव को दूसरे से व्यक्त करते हैं, यह संगीत एवं काव्य दोनों का आधार है। ''वाक् के दो प्रकार हैं– नादात्मिका वाक् तथा वर्णात्मिका वाक्। इन्हीं दोनों से क्रमशः संगीत एवं काव्य की उत्पत्ति होती है।''[6]

काव्य के अन्तर्गत कविता, कहानी, नाट्य, गद्य, पद्य इन सभी का समावेश है। पुनः नादात्मिका वाक् ही चित्त वृत्तियों की अभिव्यक्ति में सहायक होती है। ''संगीत के मूल में यही नादात्मिका वाक् है। इसलिए संगीत को भावाभिव्यक्ति की भाषा कहा जाता है।''[7] ''इन्हीं चित्तवृत्तियों को अभिव्यक्त करने के लिए वर्णों से पद अर्थात् शब्द बनते हैं और शब्दों से भाषा बनती है, जो सभी प्रकार के लौकिक व्यवहार का आधार है, लेकिन काव्य का मूल आधार पद अर्थात् सार्थक शब्द ही है।''[8]

सुभद्रा जी के अनुसार काव्य और संगीत में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है। काव्य में विचार की और संगीत में अभिव्यक्ति की प्रधानता है। संगीत के उपकरण स्वर, लय है और काव्य के शब्द और अर्थ है। संगीत और काव्य दोनों ही श्रव्य है तथा उनका आधार वाणी है। संगीत और काव्य वाक् के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं परन्तु प्राण और मन भी उतने ही आवश्यक हैं, क्योंकि प्राण अर्थात् शारीरिक क्रिया और मन की जितनी गहराई से संगीत और काव्य उत्पन्न होगा, वह श्रोता को उतना ही प्रभावित करता है। संगीत और काव्य का उद्गम नाद ही है। अतः एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है।

भारतीय संगीत की अवधारणाएँ (भाषा सम्बन्धी चिन्तन तथा अर्थबोध और रसानुभूति की प्रक्रिया के आलोक में) :– सुभद्रा जी द्वारा लिखित तीसरा लेख भारतीय संगीत की अवधारणाएँ, भाषा सम्बन्धी चिन्तन, अर्थबोध तथा रसानुभूति से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत वाणी अथवा शब्द के प्रयोग तथा उसे समझने के माध्यम श्रवण (सुनना) के बारे में विस्तार से समझाया गया है। उदाहरणार्थ हम वाणी अथवा शब्द के माध्यम से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं तथा उसे अपनी श्रवणेन्द्रियों के माध्यम से सुनते हैं।

भाषा और संगीत का अन्तःसम्बन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों के अनेक शब्द समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। जैसे संगीतशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली में नाद, श्रुति, स्वर, वर्ण और पद जैसे शब्द है, जो व्याकरणशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले स्फोटवाद, साहित्यशास्त्र के ध्वनि–सिद्धान्त एवं रसाभिव्यक्ति के सिद्धान्त में भी भाषा और संगीत की अखण्डता प्रदर्शित होती है। सुभद्रा जी ने इस अध्याय में नाद, श्रुति, स्वर, स्फोटवाद और संगीत, ध्वनि–सिद्धान्त एवं संगीत, रस अभिव्यक्ति एवं संगीत के माध्यम से इसी अखण्डता को प्रदर्शित किया है जिनका वर्णन इस प्रकार है–

नाद :– 'अव्यक्त ध्वनि' अर्थवाली **'णद्'** धातु से **'घञ्'** प्रत्यय लगाने पर **'नाद्'** शब्द निष्पन्न होता है। व्याकरणशास्त्र में 'शब्द' को ध्वनि, स्फोट, नाद, वाक् शब्दब्रह्म की संज्ञा से अभिहित किया गया है। सुभद्रा जी का स्पष्ट कथन है कि संगीत में 'नाद' शब्द की व्याख्या और उसके स्वरूप पर विचार भारतीय दर्शन की शब्दावली में ही हुआ है। नाद ही संगीत का मूल तत्त्व है इसलिए संगीत के सभी शास्त्रकारों ने 'नाद' को अपरिहार्य रूप से व्याख्यायित किया है। ''शाङ्र्गदेव ने 'नाद' तत्त्व में ब्रह्म के समस्त गुणों को आरोपित कर संगीत में नादब्रह्म की प्रतिष्ठा की है तथा यह भी कहा है जो श्रुति स्वर आदि को विस्तारित कर लोकरंजन तथा भवभंजन एक साथ करें आहतनाद कहलाता है।''[9]

श्रुति :– श्रवणार्थ 'श्रु' धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाने पर 'श्रुति' शब्द बनता है। व्याकरण के अनुसार 'श्रुयते इति श्रुतिः' अर्थात् जो भी ध्वनि सुनाई देती है वह 'श्रुति' कहलाती है।[10]

स्वर :– व्याकरण में स्वर का प्रयोग तीन सन्दर्भों में किया गया है। भाषा में 'अ से औ' तक 14 स्वर हैं। वैदिक साहित्य में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सामगान में क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय आदि स्वर हैं।[11]

स्फोटवाद एवं संगीत :– व्याकरणशास्त्र में स्फोट शब्द का अर्थ फूटना अथवा प्रस्फुटित होना है। दूसरे शब्दों में, स्फोट वह है जो प्रकाशित होता है। स्फोट से शब्द का अर्थ प्रकाशित होता है। सुभद्रा जी ने भारतीय दर्शन की इसी आधारशिला पर भारतीय दर्शन और संगीत के एकत्व को प्रकाशित करने का श्लाघ्य उपक्रम किया। उनके अनुसार ''भारतीय संगीत में स्वर और ताल के साथ पद का समावेश होने के बाद भी पद को छोड़कर स्वर के आधार पर ही स्फोट का विचार उचित है क्योंकि स्वर संगीत का मूल तत्त्व है। यदि वाद्य संगीत के दृष्टिकोण से देखा जाए तो वाद्य में पद नहीं होता। इसलिए वाद्यसंगीत भी स्फोट के अन्तर्गत आ सकता है।''[12]

सुभद्रा जी का अभिप्राय है कि संगीत में भी स्वर के माध्यम से उसी अर्थ को अभिव्यक्त किया जा सकता है, जो भाषा से अभिव्यक्त होने वाले वाक्यों के द्वारा होता है। जिस प्रकार भाषा में वर्ण, शब्द तथा पद है उसी प्रकार संगीत में स्वर है। स्फोट में वक्ता के आकांक्षा के अनुसार शब्दों का चयन होता है। संगीत में भी यह संगीतज्ञ की इच्छा पर निर्भर करता है कि उन्हें कैसा स्वर तथा स्वर सन्निवेश अभिव्यक्त करना है।

भाषा में शब्द और अर्थ का निश्चित सम्बन्ध होता है और संगीत में स्वर और भाव का। संगीत में स्वरों के क्रमिक प्रयोग से एक आकार बनता है, जिसके द्वारा राग का स्वरूप व्यक्त होता है, इसलिए भाषा की अपेक्षा संगीत का प्रभाव अधिक व्यापक है, क्योंकि कुछ स्वरों के माध्यम से व्यक्ति की भावनाएँ स्पष्ट हो जाती हैं, इसलिए ''संगीत की भाषा को सार्वभौम (Universal) कहा गया है।''[13]

ध्वनि सिद्धान्त और संगीत :– 'स्फोट' सिद्धान्त से ध्वनि शब्द को लेकर ही ध्वनि सिद्धान्त की उपपत्ति हुई है। मनुष्य के हृदय में विशेष अनुभूति काव्य आदि के द्वारा होती है जो ध्वनि के माध्यम से उत्पन्न होती है। इसीलिए ध्वनि सिद्धान्त की महत्ता है। ''अर्थबोध कराने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग होता है उन शब्दों से या उनके साक्षात् सांकेतिक अर्थों से अनुभूत नहीं होता, बल्कि वाच्यार्थ से भिन्न जिस नये अर्थ या भाव की प्रतीति होती है, वही वास्तव में आनन्ददायक होता है। इसी को प्रतीयमान कहते हैं। इसीलिए ध्वनि को काव्य की आत्मा कहा गया है।''[14]

प्रतीयमान शब्द वाच्य न होकर व्यंजित होता है। व्यंजक शब्दों के माध्यम से प्रतीयमान अर्थात् ध्वनि व्यंजित होती है। सौन्दर्य को प्रदर्शित करने का यह माध्यम ही काव्य में ध्वनि है। ''अर्थ जब शब्दों से वाच्य होता है तो वाच्यार्थ कहलाता है। वाच्य न होने पर उससे संबद्ध किसी अर्थ का प्रतीति हो तो लक्ष्यार्थ कहलाता है और यदि इन दोनों से भिन्न और वाच्यार्थ से संबद्ध न होने वाले किसी अर्थ की प्रतीति होती है तो वह 'व्यंग्य', प्रतीयमान अथवा ध्वनि होता है।''[15]

''ध्वनि सिद्धान्त के ख्यातिलब्ध ग्रन्थ **'ध्वन्यालोक'** और उस पर आचार्य अभिनवगुप्त की **''ध्वन्यालोकलोचनटीका''** में ध्वनि सिद्धान्त की सिद्धि हेतु दिये हुए अनेक उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि संगीत के मूलतत्त्व ध्वनि और उसके द्वारा होने वाले बोध से भी इस सिद्धान्त की स्थापना की प्रेरणा या बल अवश्य मिला होगा लेकिन इस सिद्धान्त की स्थापना के बाद संगीत में भी व्यंजकता की पुष्टि को बल मिला।''[16]

अभिव्यक्ति सिद्धान्त :– रस को काव्य की आत्मा मानने वाले रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरत मुनि के **'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति'** सूत्र की व्याख्या में चार सिद्धान्तों का महत्त्वपूर्ण स्थान है– भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद, आचार्य शंकुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक का भुक्तिवाद और आचार्य अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद।[17]

आचार्य अभिनवगुप्त के अभिव्यक्ति सिद्धान्त में रसानुभूति की प्रक्रिया इस प्रकार है– अनेक जन्मों द्वारा संचित संस्कारों के फलस्वरूप जो रति आदि स्थायी भाव मनुष्य के हृदय में संस्कार रूप में उपस्थित रहते हैं, वही स्थाई भाव विभावादि का संयोग पाकर साधारणीकृत होकर रसरूप में अभिव्यक्त हो जाते हैं। रसानुभूति के लिए परिस्थितियों का होना अनिवार्य है। संगीत में यह तभी सम्भव है जब उस रस के अनुकूल पद–रचना भी हो। संगीत किसी भाव के कारण परिस्थितियों को प्रस्तुत नहीं करता किन्तु भाव को व्यक्त करने का सर्वोकृष्ट माध्यम है।[18] उपर्युक्त लेख में आचार्या सुभद्रा जी व्याकरणशास्त्र, संगीतशास्त्र तथा भाषा इत्यादि के द्वारा अर्थबोध के स्वरूप को समझाने का प्रयास किया गया है । इसमें श्रव्य की अखण्डता बार–बार परिलक्षित होती रही। यही उनके लेख का मूल बिन्दु है।

भारतीय संगीत में छन्द :– चतुर्थ लेख में लेखिका ने भारतीय संगीत में छन्द अर्थात् संगीत में लय के महत्व को बताया है क्योंकि काव्य का छन्द ही संगीत में लय है। लय ही संगीत है। यही लय जब निश्चित स्वरूप में व्यक्त होता है तो छन्द की उत्पत्ति होती है। ''छन्द की मूल प्रकृति लयबद्धता है। सार्थक शब्द की अनुपस्थिति में भी छन्द का महत्त्व है जो पद में विशिष्ट लय के रूप में विद्यमान रहता है। पद का पठन–पाठन हो सकता है किन्तु छन्द केवल अनुभव का ही विषय है। काव्य में छन्द का जो स्थान है वही संगीत में ताल का है।''[19]

सुभद्रा जी के अनुसार ''काव्य में यदि छन्द के अनुसार क्रियाएँ की हो तो वह ताल के रूप में परिवर्तित जायेगा और यदि संगीत में क्रिया न हो, केवल लघु–गुरु क्रम हो तो वह छन्द का रूप धारण कर लेगा।''[20] संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि काव्य–संगीत और छन्द–ताल का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती।

म्यूजिकोलॉजी और संगीतशास्त्र की क्षेत्र की रूपरेखा :– संगीत–संचयन पुस्तक के तीसरे अध्याय के पंचम लेख में सुभद्रा जी ने संगीतशास्त्र और म्यूजिकोलॉजी की अवधारणा को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार यूरोप आदि पश्चिमी देशों में म्यूजिकोलॉजी की उत्पत्ति 18वीं सदी के उत्तरार्ध में हुई थी। पश्चिमी देशों में केवल गीत और वाद्य ही म्यूजिक (संगीत) की श्रेणी में आते हैं नृत्य नहीं, जबकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में संगीत के अन्तर्गत गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों आते हैं।[21] म्यूजिकोलॉजी की पद्धति पूर्णतया वैज्ञानिक है। इसमें संगीत के साथ–साथ अन्य विषयों (मनोविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र, ध्वनि विज्ञान आदि) का भी अध्ययन अन्तर्विषयी रूप में किया जाता है जबकि भारतीय संगीतशास्त्र धर्म और दर्शन से संपृक्त है।

यदि पश्चिम में म्यूजिकोलॉजी के साथ मनोविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र, ध्वनिविज्ञान आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है तो भारतीय संगीतशास्त्र के साथ काव्यशास्त्र, छन्दशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन, व्याकरणशास्त्र आदि का अध्ययन किया जा रहा है। दोनों की अध्ययन पद्धतियों में समानता ही इसकी विशेषता है। इस समानता के होते हुए भी कतिपय असमानता भी है। जैसे– यदि पाश्चात्य संगीत में स्वर की चर्चा होती है तो स्वर साधृत, स्वरक्रम का वर्णन प्राप्त होता है। इसके विपरीत भारतीय संगीत में स्वर के संदर्भ में ग्राम का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार वाद्यों के संदर्भ में हमारे यहाँ वाद्यों का वर्गीकरण, वाद्यों का स्वर के साथ मिलान आदि प्रमुख तत्त्व है जबकि पाश्चात्य संगीत में वाद्यों के निर्माण पर अधिक बल दिया जाता है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय पद्धति धार्मिक–दार्शनिक थी जबकि पाश्चात्य पद्धति भौतिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित रही। आचार्या सुभद्रा जी का यह निष्कर्ष है कि वर्तमान में संगीतशास्त्र में अनेक ऐसे तत्त्व हैं जिन पर विचार करना अभी शेष है।

निष्कर्ष : आचार्या सुभद्रा जी ने अपने प्रथम लेख में यह सिद्ध किया है कि समस्त कलाओं तथा उनके शास्त्रों में भिन्नता होते हुए भी आन्तरिक रूप से ये सभी (गान्धर्व, नाट्य और संगीत) परस्पर सम्बद्ध है क्योंकि उनका मूल स्रोत वेद हैं। इन तीनों के परस्पर संबंध को आलोकित करते हुए वे भारतीय दर्शन के सत्, चित् और आनन्द की अवधारणा के समान ही गान्धर्व, नाट्य और संगीत भी समान है। अपने दूसरे लेख में, संगीत और काव्य के सूक्ष्म अंतर को स्पष्ट करते हुए उनका कहना है कि काव्य में विचारों की तथा संगीत में अभिव्यक्ति की प्रधानता है। दोनों का उद्गम नाद तत्त्व है। भारतीय संगीत की अवधारणाएँ नामक

तृतीय लेख में उन्होंने भाषा और संगीत के महत्त्वपूर्ण अन्तःसंबंध को प्रदर्शित करते हुए संगीत की पारिभाषिक शब्दावलियों यथा नाद, श्रुति, स्वर आदि को व्याकरणशास्त्र में दिखला कर भाषा और संगीत की अखण्डता प्रदर्शित की है। भारतीय संगीत में छन्द नामक चतुर्थ लेख में उन्होंने कहा है कि काव्य का छन्द ही संगीत में लय है। छन्द भी लयबद्ध है तथा संगीत भी लयबद्ध है। दोनों का प्रस्थान बिन्दु एक ही है। म्यूजिकोलॉजी और संगीतशास्त्र की रूपरेखा नामक पाँचवें लेख में वे यह उद्घाटित करती है कि भारतीय दृष्टि आध्यात्मिक तथा दार्शनिक है जबकि पाश्चात्य दृष्टि वैज्ञानिक है। पाश्चात्य जगत् में अन्तर्विषयी अध्ययन काफी समय से प्रचलन में है जबकि भारत में यह अपेक्षाकृत नवीन है। यहाँ अब भी अन्तर्विषयी अध्ययन को प्रश्रय देने की महती आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची :–

1. चौधरी, डॉ0 सुभद्राः *संगीतसंचयन (संगीत और सम्बन्ध विषयों पर लेखों का संग्रह),* कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्रथम संस्करण 1989 पृ0 48।
2. तत्रैव, पृ0 49।
3. तत्रैव, पृ0 49।
4. तत्रैव, पृ0 49।
5. तत्रैव, पृ0 57।
6. तत्रैव, पृ0 59।
7. तत्रैव, पृ0 59।
8. तत्रैव, पृ0 60।
9. तत्रैव, पृ0 67।
10. तत्रैव, पृ0 68।
11. तत्रैव, पृ0 69।
12. तत्रैव, पृ0 77।
13. तत्रैव, पृ0 78।
14. तत्रैव, पृ0 78।
15. तत्रैव, पृ0 79।
16. तत्रैव, पृ0 80।
17. तत्रैव, पृ0 80।
18. तत्रैव, पृ0 81।
19. तत्रैव, पृ0 88।
20. तत्रैव, पृ0 88।
21. तत्रैव, पृ0 94।

भारतेंदुयुगीन साहित्य का हिन्दी नवजागरण में योगदान

डॉ. अपराजिता जॉय नंदी*

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के विभिन्न प्रवृत्तियों का शुभारंभ भारतेंदुयुगीन साहित्य से ही माना जाता है। साथ–ही साहित्यिक नवजागरण की दृष्टि से भी यह युग हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना एक अलग ही महत्व रखती है। भारतेंदुयुगीन रचनाओं में जहाँ एक ओर रीतिकालीन प्रवृत्तियों के प्रभाव स्वरूप पद्य में श्रृंगार एवं भक्ति–काव्य की रचनाओं का सृजन किया गया, वहीं दूसरी ओर जन–चेतना को जागृत करने हेतु अनेक नवीन विषयों का समावेश गद्य एवं पद्य दोनों में ही किया गया। यह भारतेंदु युग आधुनिक गद्य–साहित्य के प्रायः सभी विधाओं के प्रवर्तन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के विकास में अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। इस युग के अधिकांश साहित्यकारों ने परम्परागत विषयों का प्रसार करने के साथ–साथ समाज को संदेश देने वाली रचनाओं का सृजन भी किया।

हिन्दी प्रदेशों के जन–जीवन के विविध क्षेत्रों को जागृत करने के लिए जितने भी क्रांतिकारी आंदोलन हुए, उनमें जितनी अहम् भूमिका समाज–सुधारकों की रही, उतना ही महत्व साहित्यकारों का भी रहा। इन दोनों के प्रयासों के फलस्वरूप ही साधारण जन–जीवन तथा समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित हुए। **डॉ. सुखदा पाण्डेय** के विचारानुसार– **'साहित्य समाज और सामाजिक सचिंतन का अनुबिंबग्राही दर्पण होता है। पद्य से अधिक गद्य युगचेतना का प्रतिसारण अथवा दर्पण होता है। उन दृष्टियों से भारतेंदु युग अपनी युग चेतना को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है– 'दर्पण प्रतिबिम्बनम्'।'**[1] यही कारण है कि भारतेंदु युग के साहित्य में मुख्य रूप से देशप्रेम, सामाजिक दुर्व्यवस्था, कुप्रथाओं से संघर्ष, स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति चिंता, धार्मिक रुढ़ियों एवं अंधविश्वासों का खण्डन, स्त्री–शिक्षा एवं स्वतंत्रता आदि (जो कि भारतीय नवजागरण के आधारभूत सुधार संबंधी प्रयास थे) ऐसे ही सामाजिक विषय का भी समावेश किया गया।

इन विषयों के समावेश ने हिन्दी साहित्य में नए प्राण फूँके, जिससे साहित्य भी जीवित लगने लगा। भारतेंदुयुगीन साहित्य ने सामाजिक–चेतना के स्वर को बुलन्द कर समाज को नए मूल्यों एवं दायित्व को वहन करने योग्य बनाया। इस विषय में **राजकुमार शर्मा** ने लिखा है– **'भारतेंदु युग के साहित्य ने समाज की कुरीतियों, सामाजिक समस्याएँ, विदेशी शासन के संत्रास और गरीबी के करुणापूर्ण चित्रण से समाज का उन्मेष करने का प्रयास किया है।'**[2] भारतेंदुयुगीन साहित्यकारों के संघर्ष के कारण ही पहली बार सामाजिक समस्याओं एवं जन–साधारण की दयनीय दशा साहित्य के माध्यम से समाज के समक्ष उभरा। साथ–ही उसके निवारण के उपायों को भी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों के मध्य पहुँचाया। ये रचनाएँ जन–चेतना को जागृत करने की भावनाओं से अनुप्रेरित था। भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास आदि साहित्यकारों के अधिकांश रचनाओं में इन भावों का स्पष्ट उदाहरण मिल जाते हैं। भारतेंदुयुगीन साहित्यकारों के इन्हीं भावनाओं के कारण ही हिन्दी साहित्य का समाज राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों से अन्तर्संबंध स्थापित हो सका।

भारतेंदुयगीन साहित्यकारों के प्रयासों के परिणामस्वरूप जब साहित्य का विविध क्षेत्रों से अन्तर्संबंध स्थापित हुए, तो इससे परवर्ती साहित्यकारों को लेखन हेतु और अधिक प्रेरणा मिली। वे इन क्षेत्रों से जुड़े विषयों को अधिकाधिक रूप से अपनाने लगे। इससे साहित्य का स्वरूप और अधिक निखरने लगा। साहित्य के इस नवीन स्वरूप ने साधारण जनता को भी अपनी ओर आकर्षित किया। अब जनता भी साहित्य में रुचि

*** सहायक प्राध्यापक, श्री शंकराचार्य कॉलेज ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, रायपुर–छत्तीसगढ।**

लेने लगी। **डॉ. रामविलास शर्मा** ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि **'भारतेंदु युग के साहित्यिक रचनाओं का विषय–वस्तु ही नहीं बल्कि साहित्य के अनेक रूप ऐसे हैं, जो जनता में लोकप्रिय थे।'**[3] जनता में आए इस नवीन परिवर्तन को और अधिक जागृत करने वाली रचनाओं का सृजन किया जाने लगा। इन प्रयासों के अतिरिक्त सार्वजनिक शिक्षा का उत्थान, जनतंत्र के नए आदर्शों की स्थापना, समाचार–पत्रों की वृद्धि, बुद्धिवाद का उदय, मनुष्य के विचारों में स्वतंत्रता तथा साहित्य में सामाजिक–मूल्यों का समन्वय आदि इस सक्रिय शताब्दी के मौलिक–चिंतन की ही देन है। इन मौलिक–चिंतनों एवं प्रयासों के कारण ही हिन्दी में नवजागरण की गतिविधियों को गति मिली।

मूल रूप से भारतेंदुयुगीन साहित्य ने नए सांस्कृतिक एवं सामाजिक जागरण लाने में भी अपना भरपूर सहयोग दिया। साथ–ही भारतीय नवजागरण के प्रेरणादायक स्रोतों का समावेश भी भारतेंदुयुगीन साहित्य में किया गया, इसलिए भारतेंदुयुगीन साहित्य नवजागरण के स्वरूप से परिपूर्ण लगते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण भारतेंदुयुगीन साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं, जो समाज में सुधार लाने के लिए आदर्श रूप बने। तत्कालीन भारतीय समाज में स्त्री–विषयक समस्याएँ, यथा– बालविवाह, दहेज–प्रथा, सती–प्रथा, विधवा विवाह–निषेध, अनमेल विवाह, बहुपत्नी–प्रथा आदि में सुधार कार्य विभिन्न प्रांतों में निरंतर जारी था, वही प्रयास हिन्दी प्रदेशों में भी क्रियान्वित हो रहा था। इन सामाजिक बुराइयों का भारतेंदुयुगीन साहित्यकारों ने जमकर विरोध किया। समाज में फैले कुप्रथाएँ किसी–न–किसी रूप में स्त्री की स्वतंत्रता, उसके आत्मविश्वास को समाप्त कर रही थी। साथ–ही इन प्रथाओं के कारण स्त्रियाँ अप्रत्यक्ष रूप से शोषण का शिकार हो रही थीं।

ये कुप्रथाएँ न तो समाज का भला कर रही थी और न ही जनता का, इसलिए साहित्यकारों ने अपने लेखों के माध्यम से समय–समय पर इसके विरुद्ध आवाज़ उठाए। इनके विरोध का एक प्रमाण **बालकृष्ण भट्ट** की पत्रिका **'हिन्दी प्रदीप'** में प्रकाशित इन पंक्तियों से भी स्पष्ट हो जाता है–

'सकल दोष की ख्याति, वीर्य हरन दारिद करन।
आलस की जड़ जानि, त्यागहूं बाल्य विवाह को।।'[4]

ऐसा ही उदाहरण **राधाकृष्ण दास** के **'भारतेंदु'** नामक पत्रिका में प्रकाशित **'बाल विधवा'** नामक उपन्यास में भी मिलते हैं। इनमें व्याप्त कुप्रथाओं के दुष्परिणाम को न केवल लेखों के माध्यम से वरन् रंगमंच पर नाटक खेलकर भी विरोध प्रदर्शन किया गया। साथ–ही जनता को इसे समाप्त करने का अनुरोध भी किया करते थे। वस्तुतः भारतेंदुयुगीन साहित्य तत्कालीन परिस्थितियों को प्रदर्शित करने वाला एक सच्चा साहित्य था। इस युग में लिखे गए व्यंग्यात्मक लेख भी समाज की कुरीतियों पर करारा प्रहार करती थी। समाज को इस दुषित वातावरण से निकालकर एक स्वच्छ वातावरण में लाना ही साहित्यकारों का मुख्य उद्देश्य था। भारतेंदुयुगीन साहित्यकार तत्कालीन समाज व साधारण जनता के वास्तविक शुभचिंतक थे। वे जनता के जीवन को सुखद व स्वतंत्र करना चाहते थे। इसके लिए जनता में आत्मविश्वास एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने की भावना को जागृत करना अति आवश्यक था। तभी समाज में सुधार संभव हो सकता था, इसलिए सुधार अति आवश्यक था और यही नवजागरण की पहली सफलता की सीढ़ी थी। **बंशीधर लाल** ने इन परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि– **'भारतेंदुकालीन साहित्य में समाज का यथार्थ चित्र स्पष्ट होता है। उन दिनों समाज में अनेक कुरीतियाँ व्याप्त थीं। समाज बिल्कुल खोखला होता जा रहा था। इस कमजोरी का अंग्रेज भरपूर फायदा उठा रहे थे। ऐसी स्थिति में भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने लेखों के माध्यम से सोयी हुई भारतीय जनता को जगाने की कोशिश की।'**[5] यह सत्य है कि समाज को सुधारने तथा देश के विकास के लिए जनता का जागरुक होना आवश्यक था, किंतु जनता समाज की बुराइयों एवं कुरीतियों के दलदल में फँसा हुआ था। इससे उन्हें बाहर निकालना आवश्यक था। वैसे तो समाज को सुधारना एवं जनता को जागरुक करना ये दोनों ही कार्य एक–दूसरे के पुरक थे। यह तभी संभव हो सकता था, जब दोनों ही पक्षों में सुधार किया जाए, इसलिए साहित्यकारों ने इन दोनों महत्वपूर्ण तथ्य को अपना लक्ष्य बनाया।

सर्वप्रथम साहित्यकारों ने समाज की वास्तविक परिस्थितियों से लोगों का परिचय करवाया। लोगों में इसके लिए जागरुकता लाने का प्रयास किया गया, क्योंकि जब तक लोगों में जागरुकता नहीं आएगी, तब तक समाज को सुधारना संभव नहीं था। हालाँकि इसमें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, ऐसा करना साहित्यकारों के लिए आसान तो नहीं था। शासन में अंग्रेजों का राजस्व था और शासन के विरुद्ध कोई भी कार्य करना आसान नहीं था, फिर भी उन्होंने यह जोखिम भी उठाया। उन्होंने अपने सुधार–कार्य को आंदोलन का रूप दिया और ये आंदोलन वे अपने लेखों, पत्र–पत्रिकाओं, रचनाओं द्वारा क्रियान्वित कर रहे थे। ऐसा ही उदाहरण भारतेंदु युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध पत्रिका **'हिन्दी प्रदीप'** को माना जा सकता है, जिसने 33–34 वर्षों तक हिन्दी की न केवल सेवा की वरन् हिन्दी प्रदेश की जनता को जागरुक करने में अहम् दायित्व का निर्वाह भी किया। इस दायित्व–बोध के चलते लेखकों ने जनता का ध्यान देश का अर्धपतन स्थिति, शोषण, उत्पीड़न, रुढ़िवादिता और आंतरिक कलह की यथार्थवादी पृष्ठभूमि की ओर आकृष्ट किया तथा उनसे मुक्त होने के लिए जन–मानस में स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीयता की एक अविरल धारा को प्रवाहित करने का प्रयास किया। इस अविरल धारा के प्रवाह ने भारतेंदुयुगीन साहित्य को और परिष्कृत किया तथा एक नई चिंतन के स्वरूप का निर्माण किया। **डॉ. शिवकरण सिंह** के मतानुसार– **'भारतेंदुयुगीन साहित्य के एक–एक शब्द से चेतना एवं जागृति के भाव दृष्टिगोचर हुए। इस सम्पूर्ण साहित्यिक चेतना वैविध्य को एक निश्चित स्वरूप के माध्यम से भी मुखरित हुआ।'**[6] वास्तव में भारतेंदुयुगीन साहित्य उन सभी रूपों को धारण किए हुए था एवं अपने में उन सभी विशेषताओं को समाति किए हुए था, जो नवजागरण के लिए अनिवार्य था।

केवल हिन्दी प्रदेश के इन साहित्य में ही नहीं वरन् अन्य प्रांतों के साहित्य में भी यही स्वरूप देखने को मिलता है। साहित्यकार ऐसे विषयों को लेकर एक योद्धा की भाँति जनता की रक्षा के उद्देश्य से शासन के विरुद्ध आगे बढ़ते रहे। इनके द्वारा प्रारंभ किया गया यह सुधार–कार्य तथा जनता के जन–जीवन को अपने साहित्य में स्थान देने की परम्परा भारतेंदुयुगीन साहित्य में प्रारंभ से ही निरंतर रूप से अपने परवर्ती काल को भी प्रभावित करती रही, इसलिए भारतेंदु युग के बाद द्विवेदी युग, छायावादी युग एवं छायावादोत्तर युगों में भी ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं। इस युग के लेखकों में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक आदि क्षेत्रों में फैली अव्यवस्थाओं को दूर करने के लिए सांस्कृतिक जनजागरण की ओर विशेष ध्यान दिया, क्योंकि सांस्कृतिक क्षेत्र के अंतर्गत समाज के बहुत से पक्ष आते हैं तथा सांस्कृतिक जागरण के माध्यम से लोगों को जागृत करना भी संभव हो सकता है। **डॉ. नगेन्द्र** के अनुसार– **'भारतेंदुयुगीन साहित्य सांस्कृतिक जागरण का साहित्य है। इस युग में रचित गद्य–साहित्य की प्रत्येक विधा; नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना के समीक्षात्मक परिचय से विशेषतः इस सांस्कृतिक जागरण का स्वरूप ही स्पष्ट होता है।'**[7]

एक प्रकार से भारतेंदुयुगीन साहित्य साहित्यिक–चेतना के विकास का साहित्य रहा है। इस विकास ने बौद्धिक–चिंतन को जन्म दिया, जिसके प्रतिफलस्वरूप हिन्दी साहित्य में अनुपम एवं स्वच्छ वातावरण की सृष्टि हुई। इसी वातावरण की छत्र–छाया में परवर्ती युग का साहित्य पल्लवित एवं पुष्पित होने लगा। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण तक संपूर्ण हिन्दी प्रदेश में सांस्कृतिक जागरण की एक विशाल लहर सी दौड़ पड़ी। केवल सांस्कृतिक क्षेत्र में जागरण हेतु ही नहीं वरन् धार्मिक जागरण के लिए भी कार्य करते रहे। इस युग में धार्मिक साहित्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। इसके सृजन के पीछे साहित्यकारों का मुख्य उद्देश्य भी धार्मिक क्षेत्र में फैली कुरीतियों को समाप्त कर उसमें सुधार लाना था, इसलिए हिन्दी साहित्य के आधुनिक स्वरूप में हिन्दू–चेतना अधिक परिलक्षित होती है तथा इसमें ऐसे साहित्य की मात्रा अधिक मिलती है, जो धर्म के प्रचार हेतु रची गई। साथ–ही जाति–व्यवस्था, सम्प्रदाय–व्यवस्था, वेदांत, योग, भक्ति, नीति, धर्म आदि विषयों से संबंधित रचनाएँ रची गई।

इन विषयों में नव–चेतना के लक्षण भले ही अधिक न दिखाई देते हों, किंतु इन साहित्यिक रचनाओं से यह अवश्य पता चलता है कि साहित्यकारों ने जनता के धार्मिक सद्भावना को अनदेखा नहीं किया।

उन्होंने ऐसे विषयों को इसलिए उभारा ताकि लोग धर्म के वास्तविक रूप को जान सकें, क्योंकि समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा धर्म से जुड़ा था। इसके अतिरिक्त भारतेंदुयुगीन साहित्य भाषा संबंधी एक विशाल आंदोलन का भी साहित्य रहा और यह भाषा संबंधी आंदोलन नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में ही लड़े जा रहे थे। **डॉ. नगेन्द्र** के मतानुसार– **'भारतेंदु काल का साहित्य व्यापक जागरण का संदेश लेकर आया और भाषा के स्वरूप विकास में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई।'**[8] इन आंदोलनों के स्पष्ट उदाहरण इस युग की रचनाओं में दृष्टव्य होता है और साथ–ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यकारों ने कितनी कठिनाइयों के साथ अपनी मातृभाषा को बचाए रखने के लिए अपना संघर्ष जारी रखा।

इस शताब्दी में देश तथा समाज की विषम परिस्थितियों के मध्य इन साहित्यकारों के अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा और साहित्य ने जैसी प्रगति की, वैसा संसार की बहुत ही कम भाषाओं और उनके साहित्य ने की होगी। सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के साथ–साथ हिन्दी का भी अपना भाषागत परिवेश रहा है। यह परिवेश भी अपनी कुछ अलग विशेषताओं को अपने में समेटे हुए थी। भाषागत विशेषताओं का यह अनुकूल वातावरण भारतेंदु युग में व्याप्त था, क्योंकि एक तो देश में विशाल हिन्दी भाषी प्रदेशों का होना तथा दूसरा इसकी अनेक बोली तथा उपबोली होने के कारण इनमें साहित्यिक रचनाओं के साथ–साथ बोलियों में लोक–साहित्य की निधि भी अधिक थी। **डॉ. रामविलास शर्मा** के अनुसार– **'हिन्दी भाषी प्रदेश में जनपदों की संख्या अधिक है, उस संख्या के अनुरूप लोक– साहित्य की विविधता और समृद्धि है। ऐसी विविधता और समृद्धि बहुत कम जातीय प्रदेशों को सुलभ है।'**[9] इन विभिन्न बोलियों को एक प्रधान भाषा के अंतर्गत लाने का कार्य भारतेंदुयुगीन साहित्यकारों ने किया। उन्होंने हिन्दी प्रदेशों की हिन्दी भाषा को अपना साहित्यिक भाषा बनाया तथा इसके विकास के लिए निरंतर प्रयास किया। इससे साहित्यकारों की आपसी एकता भी बढ़ी। यह भाषीय एकता हिन्दी प्रदेशों में नवजागरण की धारा को प्रवाहित करने में काफी लाभकारी प्रमाणित हुई। ऐसा प्रयास विशेष रूप से भारतेंदुयुगीन साहित्य में ही देखा जा सकता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतेंदुयुगीन साहित्य का महत्व एवं मूल्य हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में असाधारण रहा है। उन्हीं साहित्यिक रचनाओं के कारण हिन्दी प्रदेश में आधुनिक जीवन–चेतना का प्रवेश हुआ, साथ–ही तत्कालीन सामाजिक परिवेश के मध्य साहित्य का जो रूप उभरा वह देश तथा समाज के हित की भावना से परिपूर्ण था। भाषा तथा साहित्य ने मिलकर लोगों के विचारों को बदलने में सहायता पहुँचाई। **डॉ. नगेन्द्र** ने इस संदर्भ में सटीक ही लिखा है कि– **'भारतेंदु युग के उत्थान में सबसे मूल्यवान तत्व था– साहित्यकारों का अदम्य साहस ! उनमें हिन्दी के प्रति प्रेम, राष्ट्र और समाज के प्रति अटूट निष्ठा थी। उन्होंने हँसते–हँसते अपने को उत्सर्ग करके हिन्दी के विशाल भवन का निर्माण किया।'**[10] भारतेंदुयुगीन साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से लोगों के विचारों में नवजागरण का एक ऐसा बीज बोया जो एक विशाल वृक्ष बनकर अपने परवर्ती युगों को प्रेरणा देती रही तथा अपने छाँव में अन्य लेखकों को भी फलने–फूलने में सहायता प्रदान की।

संदर्भ–सूची :–

1. सुखदा पांडेय, साहित्य और इतिहास, भारती भवन प्रकाशन, 1969, पृष्ठ–83।
2. राजकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास. कॉलेज बुक डिपो, दिल्ली, 1998, पृष्ठ–275।
3. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1999, पृष्ठ–129।
4. बंशीधर लाल, भारतेंदु युगीन हिन्दी पत्रकारिता, अनुभव प्रकाशन, 1987, पृष्ठ–32।
5. बंशीधर लाल, भारतेंदु युगीन हिन्दी पत्रकारिता, अनुभव प्रकाशन, 1987, पृष्ठ–38।
6. शिवकरण सिंह, आलोचना के बदलमते मानदण्ड और साहित्य, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967, पृष्ठ–375।
7. डॉ. नगेन्द्र एवं हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2014, पृष्ठ–458।
8. डॉ. नगेन्द्र एवं हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2014, पृष्ठ–15।
9. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1999, पृष्ठ–191।
10. डॉ. नगेन्द्र एवं हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास. मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2014, पृष्ठ–16।

तुलनात्मक-प्रविधि की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ और गांधी

डॉ. राम बिनोद रे *

तुलनात्मक साहित्य का मूल उद्देश्य साम्य और वैषम्यमूलक सामग्रियों का गहन रूप से अध्ययन कर सुनियोजित व्यवस्था प्रदान करना है। अध्ययन की दृष्टि से प्रभाव प्रविधि को एक अनंतम आंकलन प्रक्रिया माना जाता है। प्रभाव उनका पड़ता है, जो बौद्धिक रूप से वर्चस्वशाली हो। जो इस पद्धति को अनन्य शक्तिशाली बनाती है। जाँच–पड़ताल इसकी अनंतम विधा है। प्रभाव को समरूपी और विसमरूपी के पृष्ठभूमि पर जाँचा–परखा जा सकता है। मैलोंन ने प्रत्यक्षवादिता पर जोड़ दिया है। जिसके पीछें कार्य–कारण प्रभाव सूत्र का होना जरुरी है। क्लानड गुइए ने प्रभाव सूत्र को मनौवैज्ञानिक प्रतिभास मात्र माना है। प्रतिभास से तात्पर्य आभास मात्र। आभासीय प्रभाव के कारण किसी कृति या रचना की निर्मिती नहीं होती; इसके लिए अनेक आलोचकों, साहित्यकारों, विद्वानों के चिंतन और प्रभाव का अध्ययन करना अनिवार्य होता है। इसके बगैर मौलिकता की कमी का आभास हो सकता है– 'सूर का झूठन' के समान। अनुभव की वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता। प्रभाव सोची–समझी प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह एक लम्बी प्रक्रिया है; जो स्वतः स्फूत है। जिसमे सम्पूर्ण जीवन प्रणाली, संबंध, विरोध, विचारधारा, भाषा, पात्र, विषय, शैली आदि किसी भी रूप में निहित हो सकता है। पैरिस जर्मन स्कूल तुलनात्मक साहित्य की आपसी संबंधों की जाँच पड़ताल करता है, अर्थात् "प्रभाव प्रविधि पारस्परिक सूत्रों का अध्ययन करनेवाला आधुनिक विज्ञान हैं।'[1] (तुलनात्मक साहित्यः भारतीय परिप्रेक्ष्य, इंद्रनाथ चौधरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2006 पृष्ट–59) निराला की कविता (पर प्रभाव) – रवीद्रनाथ ठाकुर (पर प्रभाव) – उपनिषद्। तात्विक दृष्टि से प्रभाव युक्त साहित्य को निम्नांकित सन्दर्भों में विभाजित कर सकतें हैं –

1. वैचारिक व्यक्तित्व का प्रभाव।
2. परिकल्पनात्मक प्रभाव।
3. संबंधों का सूक्ष्मतामूलक विश्लेषण और प्रभाव।
4. वैचारिक विरोधात्मक सामंजस्य।
5. विषमकालीन पृष्ठभूमि में समान गुणात्मक प्रवृत्ति।

साहित्यिक निर्मिती में भावना, कल्पना, विचार, कलात्मकता, लालित्य और व्यक्तित्व की छाप परिलक्षित होती हैं। सांस्कृतिक सामाजिक संवेदना को संप्रेषणीयता का माध्यम बनाया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने अपने निबंध में कविता को सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह माना है।

तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन में दरिदा के वायनरी अपोजीशन जैसी स्थिति नहीं होती, इसके ठीक विपरीत स्थिति होती है। जिसमें प्रभावकारी व्यक्ति का व्यक्तित्व ही प्रमुख होता है। व्यक्ति का समष्टि, संस्था, विचार के रूप में परिवर्तित होना–एक सामान्य घटना नहीं है। इसके पीछे व्यक्तित्व के अन्तः में निहित समग्र परिस्थितियां, परिवेश और सिद्धांत स्वतः अंतःभूत है। निःसंदेह गांधीजी इससे अछूते नहीं रहे होंगे। वे उपनिषद वेद मनुःस्मृति और भगवतगिता से गहरे प्रभावित थे। वाल्मीकि के रामायण के बजाय तुलसीदास के रामचरितमानस को पढ़ना ज्यादा पसंद करते थे। "विभिन्न धर्मों एवं धर्म ग्रन्थों के अतिरिक्त गांधीजी पर विभिन्न भारतीय एवं पश्चिमी राजनीतिक चिंतकों, साहित्यकारों, विद्वानों तथा धार्मिक गुरुओं का भी प्रभाव पड़ा।'[2] (वर्तमान परिदृश्य और गांधी, संपा– डॉ.रमा, डॉ. विजय कुमार मिश्र, महेंद्र प्रजापति,संवाद मीडिया प्रा. लि.,दिल्ली, 2017,पृष्ट–145) गांधी जीवन का मूल मंत्र अहिंसा है, अहिंसा के धरातल पर खड़े होकर अपने विचारों, सिद्धांतों, एवं चिंतन को व्यवहारिक रूप देने का प्रयास किया है। उनके सत्य, अहिंसा जैसे आदर्श, मूल्य, विचार सीमाओ में बंधकर नहीं रहे, बल्कि समस्त बाधाओं को भेदकर विश्व में एकमय हो गए। दक्षिण अफ्रीका से लौटे लगभग सौ–वर्ष पूर्ण हो चुके हैं, लेकिन गांधीजी के विचार आज भी सम्पूर्ण

* सहायक आचार्य, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल।

विश्व में बदलते समय में बड़ी सशक्त रूप से अपने को स्थापित किए हुए है। वर्ष 1915 में भारत लौटने के पश्चात् उनके विचार न केवल राजनीतिक जगत में बल्कि साहित्यिक जगत को अत्यंत गंभीर रूप से प्रभावित किया है। जिसे हम भारतीय साहित्य में देख सकते हैं। जवरीमल्ल पारख जी कहते है " गांधीजी जो कहते थे और उनका कहना ही शत्रुओं के लिए चिंता का विषय था। यही नहीं गांधीजी अपने विचारों को जन–जन तक पहुँचाने का भरसक प्रयास करते थे।'[3] (गवेषणा', संपा. प्रो.मोहन, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, अंक– 101/2016,पृष्ठ–11)

भारत विभाजन के समय हिन्दू और मुसलमान के मध्य एक गहरी खाई बन गई थी, जिससे गांधीजी गंभीर आहत हुए, गांधीजी इस गहरी खाई को पाटने का प्रयास कर रहे थे। अवज्ञा, अनशन, बहिष्कार और भूख–हड़ताल शरीर है और अहिंसा उनकी आत्मा, जो किसी संग्राम में बगैर किसी को आहत पहुचाएं विजय प्राप्त कर सकता है 'चौरा–चौरी कांड' इस बात का प्रमाण है। साहित्य में गांधीजी के सिद्धांतों और विचारों का प्रभाव बंगला साहित्यकारों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, काजी नजरुल इस्लाम, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, सुकुमार राय, सत्येन्द्रनाथ दत्त, बिरेन्द्र चट्टोपाध्याय आदि पर पड़ा। इतिहासकार सुकुमार सेन लिखते हैं–"रवीन्द्रनाथ का परिवार सही अर्थों में उस राष्ट्रीय आन्दोलनों का उद्‌गम स्रोत था, जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान के हाथ में हाथ अपनी अहम् भूमिका निभा रहे थे। इसलिए इस बात की आशा की जा सकती है कि रवीन्द्रनाथ के किशोरकाल रचनाओं के सबसे आरंभिक उदाहरण देश भक्तिपरक थे और उन पर हेमचन्द्र बनर्जी के काव्य का (विशेष भारत संगीत) प्रभाव था।'[4] (बांग्ला साहित्य का इतिहास, सुकुमार सेन, अनु–निर्मला जैन, साहित्य अकादमी, संशोधित संस्करण, 2004, पृष्ठ –242) 'बोसुन्धरा' नामक कविता में धरती के लिए असीम प्रेमानुभाव की उत्कंठा, उसके आविर्भाव, विकास और उसके समापन होने की प्रवृतियो को उज्जागर किया है, यह उनके जीवन की अनुभूतियाँ है।

साहित्यिक कृति में साहित्यकार की मनस्थिति और मनोभाव का प्रभाव पड़ता है, कभी आंशिक रूप में तो कभी प्रतिपक्ष रूप में। जीवन क्या है ? जीवन उस धारा का आवेग है, जो निरंतर प्रवाहित रहता है। हमे अपने विरासत और धरा से जोड़ने का कार्य करती है। मनुष्य को अपनी वास्तविक स्थिति को अनदेखा नहीं करना चाहिए। आत्मविसर्जन का बोध रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी कविताओं में करवाया है 'सुख' और 'ज्योत्स्ना रातें' नामक कविताओं में मानव जीवन की कठिनाई भरी दर्दनाक व्यवस्थाओं का चित्रण किया, जीवन में सुख–शांति की समन्वयता के साथ–साथ मृत्यु, दुःख, निराशा, गरीबी, रोग, अन्याय, अत्याचार आदि के मध्य से गुजरना होगा। उसके लिए इंतजार करना व्यर्थ है "एबार फिराओ मोरे' कविता में लिखते है –"केवल इतना जानता हूँ कि जिसने भी उसका आहवान गीत सुना है, निर्भय होकर संकट के भंवर में कूद पड़ा हूँ, विश्व–विसर्जन करके उसके अत्याचारों के आगे छाती खोल दी है, मृत्यु की गर्जना को उसने संगीत मानकर सुना है।'[5] (बांग्ला साहित्य का इतिहास, सुकुमार सेन,पृष्ठ–248)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर 1911 में राष्ट्रगान द्वारा समग्र भारत को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया है, जिसमे भारत की आज़ादी से पूर्व सिंध प्रान्त का उल्लेख है, अब वह सिन्धु हो गया है। पंजाब, गुजरात, मराठा के महत्व को स्पष्ट करते हुए हिमालय से कन्याकुमारी तक के प्राकृतिक सौन्दर्य, मिट्टी की खुशबू का चित्रण कर ह्रदय की गहराई तक पहुँचाने का प्रयास किया है ''गांधीजी के इस कविता को देशप्रेम का भक्तिमंत्र कहा है।'[6] (भारतीय साहित्य, डॉ.शशि पंजाबी, ज्ञान प्रकाशन, प्रथम संस्करण, वर्ष –2012, पृष्ठ–75) इसी प्रकार 'स्वर्णदेश' नामक कविता में देश की स्वर्णिम वृत्यों को उज्जागर कर 'आमार सोनार बांग्ला, आमी तोमाके भालो बाशी' अर्थात् हे मेरे स्वर्ण रूपी बंगाल, मै तुम्हे ह्रदय से प्रेम करता हूँ। हमें अपने मातृभूमि ,भाषा, प्रकृति और लोगो से सदा प्रेम करना चाहिए। इसी प्रकार गांधीजी द्वारा चलाये गए असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह आन्दोलन का प्रभाव बंगला साहित्य में बहुत गहरे रूप में पड़ा है।

1906 में जमालपुर में रेल कर्मचारियों के ऊपर किये गए अत्याचार का पुरजोर विरोध किया गया। मानवता का परिचायक और प्रखर रूप उस समय दिखाई पड़ता है जब 1919 में "जलियावाला कांड" के उपरांत नाईटहुड 'सर' की उपाधि का परित्याग किया तो दूसरी तरफ दक्षिण अफ्रीका से प्राप्त

काईजा–ई–हिन्द को गांधीजी ने वापस किया। अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के विरोध अपनी कठोर प्रतिक्रिया को व्यक्त करता हैं। मानव मन की आदर्शात्मक तत्वों का चित्रण करते हुए 'उर्वशी' और 'शर्गो होइते बिदाई' नामक काव्य में मन की आदर्शात्मक मनस्थिति के सौन्दर्य की लालसा, उत्कंठा को व्यक्त करते हुए नारी मन के प्रेम को व्यक्त किया है। आरंभिक कविताओं में महाभारत, कालिदास की रचनाओं के अनेक संदर्भ मिल जाते हैं। सं. 1900 में इतिहास में वर्णित गौरवमयी गाथा को काव्य का विषय बनाया 'गान्धारीर आबेदौन' और 'कौर्नो कुंती संग्बाद' तो दूसरी ओर 'श्रेष्ठो लेखा', 'पुजारिनी ओभिसार' में बौद्ध साहित्य के मूल्यों को उज्जागर किया ताकि स्वतंत्रता की लालसा उत्पन्न की जा सके। 1902 में पत्नी की मृत्यु,1903 में बेटी की मृत्यु, और 1907 में बेटे की मृत्यु ने ठाकुर का जीवन अन्धकारमय हो गया, उस समय बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन का वातावरण छाया हुआ था। अन्धेरेपन और अकेलेपन से बाहर निकलने में स्वदेशी आन्दोलन ने उनकी काफी मदद की। 1910 में गीतांजलि, 1914 में गीतिमाल्य और 1914 में गीताली की रचना की। यह तीनों रचनाओं को गीतात्मक पद्धति में भारतीयता को स्पष्ट करना चाहते थे। किस पथ पर चलकर भारतीयता का कल्याण, हमारे वेद शास्त्रों में मौजूद आर्य महर्षियों का कथन, पथ प्रदर्शन आदि को अपने काव्य में संजोने का प्रयास किया है। उनके काव्य में गांधी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है– "तुमि केमन करे गान करो जे, गुणी/अवाक हये शुनि केवल शुनि।/सुरेर आलो भुवन फेले छेये,/सुरेर हावा चले गगन बेये,/पाषाण टुटे व्याकुल वेगे धेये/बहिया जाय सुरेर सुरधुनि।'[7](गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक–शकुंतला मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली वर्ष–2013, पृष्ठ–16)

दलित समुदाय के प्रति गांधीजी की दृष्टी रवीन्द्रनाथ की कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होती है 1920 में बरौदा में दलित आश्रम में स्वागत समारोह में गांधीजी कहते हैं – "पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में हमारा जन्म हुआ, यही हमारे लिए सबसे बड़ी बात है। हम सब लोगों में वह परम ब्रह्म विराजमान है। देवता अपने मन्दिर में प्रच्छन्न है, उसे प्रकाशित करना होगा। इस गौरव से किसी मनुष्य को वंचित कर सके, ऐसी शक्ति इस जगत में किसी को प्राप्त नहीं, यह गौरव विधाता से प्राप्त हुआ है। – तुम्हे हमने नीच बना रखा है, इसलिए ही हम अधिक पतित हुए है। तुम्हारी हीनता हमारी हीनता है।'[8] (भारतीय साहित्य, डॉ.शशि पंजाबी, ज्ञान प्रकाशन, प्रथा संस्करण, 2012, पृष्ठ–159) मनुष्य को ईश्वर ने बनाया है ; जहाँ सब समान है। गांधी जी मानव सेवा परम धर्म मानते हैं अर्थात मानव सेवा और मानव प्रेम ही ईश्वर सेवा और ईश्वर प्रेम के सामान है कारण ईश्वर मनुष्य के मध्य से ही अपने होने का अहसास कराती है गांधीजी ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग इसी कारण किया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर गीतांजलि में लिखते हैं कि "तोमारी इच्छा कोरोहे पूर्नो आम्मार जीबोन माझे" वे आगे लिखते है– "एमनि करे दरिद्र क्षीण/मलिन वेशे/संकोचेते एकटि कोणे /रइलो ऐसे।/राते देखि प्रबल हये/पाशे आमार देवालये,/मलिन हाते पुजार बलि/हरण करे"'[9] (गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक–शकुंतला मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली वर्ष–2016,पृष्ठ–78)

द्विआयामी प्रभाव प्रवृत्ति निम्नांकित सन्दर्भो को देखा जा सकता है, जातीयता का मूल उदेश्य लोभ, अहंकार, स्वार्थ, पराधीनता आदि की स्वीकृति देना है। ठाकुर जी गीतांजलि में लिखते है "घुटिआछे जाति प्रेम मृत्युर संधाने" प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर का वास होता है। वह किसी धर्म, जाति, वर्ग, समुदाय, शास्त्र, संस्कृति को ठेस पहुचाएं गाँधी जी को मंजूर नहीं। असल में मानव जाति से प्रेम करना ही ईश्वरीय भक्ति है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रति गांधीजी कहते है "मै नहीं चाहता कि मेरे घर की खिड़की और दरवाजे बंद रहे। मै चाहता हूँ दुसरे देशों की संस्कृति के झौकें हमारे घर में आए परन्तु यह झौकें यदि हमारी संस्कृति के पांव उखाड़ फेंके, यह मुझे मंजूर नहीं।" अर्थात पाश्चात्य संस्कृति के प्रति गांधीजी की चिंता स्वाभाविक है। सांस्कृतिक दास बनाने की प्रवृति अनादिकाल से रहा है। इसकी चिंता रवीन्द्रनाथ जी को थी वे गीतांजलि में लिखते हैं– "विरहगान उठलो बेजे /विश्वगगनमय।/कतो रडेर कन्नाहासि।/कतोई आशा–भय।'[10] (गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक–शकुंतला मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली वर्ष–2013, पृष्ठ–178)

आधुनिकता को टैगोर जी ने ह्रदय की स्वाधीनता के रूप में स्वीकार किया है, इसकी पुष्टि डॉ. इंद्रनाथ मदान जी करते हैं "टैगोर भी आधुनिकता को मूलरूप में स्वीकार करते हुए शाश्वतता, स्थायित्व तथा आनंद, जो कविता को अन्तर्मुखी बनाते हैं, ठाठ पारदर्शिता आदि को आधुनिकता की विशेषताएं बताते हैं।'[11] ('गवेषणा', संपा. प्रो. मोहन, केन्द्रीय हिंदी संस्थान,आगरा, अंक–101/2013, पृष्ठ– 45) परन्तु वे अपनी कविता में लिखतें हैं– पाश्चात्य संस्कृति सर्प की भांति विष फ़ैलाने के लिए फंन फैलाए है। दो संस्कृतियों की टकराहट से भारतीय समाज को बचना है। यह केवल विरोधों के सामंजस्य से ही संभव है। इस बचाव के अंतराल में न कोई निराशा हो और न कोई उत्साह केवल शांति हो। इस शांति की कल्पना 1932"पुनश्च" के 'प्रथोमो पूजा' कविता में देख पाते हैं। 1940 में 'नबोजतक' कविता में पश्चिम की यांत्रिक सभ्यताओं के मूल्यों का चित्रण है, तो दूसरी ओर "अपोघात" नामक कविता में महायुद्ध के भिषण परिणामों का चित्रण बड़ी सजगता के साथ किया है। विश्व युद्ध के सन्दर्भ में 1938 में "प्रान्तिक" कविता में द्वितीय विश्वयुद्ध की आशंका को व्यक्त किया है। कहते है – विश्वयुद्ध नागिन की भांति चारों दिशाओं में अपने विश को फैलाए हुए है। अतः संक्षेप में देखा जाए गांधीजी और ठाकुरजी निरंतर अपने समय, समाज और परिस्थिति से प्रभावित होने बावजूद समकालीन दृष्टि, ऐतिहासिक निर्देशनात्मक आधार, और भविष्य के प्रति सचेतनापरक दृष्टिकोण समान है। दलित और भाषापरक विषय पर वैचारिक मतभेद होने के बावजूद राष्ट्रीय समरूपता एक–समान है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. तुलनात्मक साहित्यः भारतीय परिप्रेक्ष्य, इंद्रनाथ चौधरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ट–59।
2. वर्तमान परिदृश्य और गांधी, संपा– डॉ.रमा, डॉ. विजय कुमार मिश्र, महेंद्र प्रजापति,संवाद मीडिया प्रा. लि.,दिल्ली, 2017, पृष्ट–145।
3. गवेषणा', संपा. प्रो.मोहन, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, अंक – 101/2013, पृष्ठ–11।
4. बांग्ला साहित्य का इतिहास, सुकुमार सेन, अनु–निर्मला जैन, साहित्य अकादमी, संशोधित संस्करण, 2004, पृष्ठ–242।
5. बांग्ला साहित्य का इतिहास, सुकुमार सेन, अनु–निर्मला जैन, साहित्य अकादमी, संशोधित संस्करण, 2004, पृष्ठ –248।
6. भारतीय साहित्य, डॉ.शशि पंजाबी, ज्ञान प्रकाशन, प्रथम संस्करण, वर्ष –2012 पृष्ठ–75।
7. गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक–शकुंतला मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली वर्ष–2013, पृष्ठ–16।
8. भारतीय साहित्य, डॉ.शशि पंजाबी, ज्ञान प्रकाशन, प्रथा संस्करण, 2012, पृष्ठ– 159।
9. गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक–शकुंतला मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली वर्ष–2013, पृष्ठ–78।
10. गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर,अनुवादक–शकुंतला मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली वर्ष–2013, पृष्ठ–178
11. 'गवेषणा', संपा. प्रो. मोहन, केन्द्रीय हिंदी संस्थान,आगरा, अंक–101/2013, पृष्ठ– 45।

पत्नी की भूमिका में स्त्री का स्वरूप

(वाल्मीकि-रामायण के संदर्भ में)

डॉ. मौमिता भट्टाचार्य*

सारांश :– वाल्मीकि प्रणीत रामायण अतिप्राचीन महाकाव्यों में से एक है। रामायण में मनुष्य जीवन के प्रत्येक पक्ष का सुंदर चित्रण हुआ है। यह पारिवारिक संबंधों, गृहस्थ आश्रम के आदर्शों एवं नैतिक व्यवहारों का प्रेरक ग्रन्थ है। रामायण से सम्बन्धित इस आलेख में पत्नी के रूप में स्त्री की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए तत्कालीन समाज में नागरिक सभ्यता की स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। क्योंकि यह कहा जाता है कि समाज में नागरिक सभ्यता की स्थिति का स्तर इस बात पर निर्भर करता है कि उस समाज में स्त्रियों की स्थिति कैसी है? वैसे तो एक स्त्री को अपने सम्पूर्ण जीवन में माता, पत्नी, पुत्री, सास, बहन, साली आदि अनेक भूमिकाएँ निभानी होती है, परन्तु इस लेख में यह बताने का प्रयास किया गया है कि एक पत्नी से परिवार क्या अपेक्षाएँ रखता है? रामायण में स्त्री जीवन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण संकल्पना पत्नीत्व का बहुत सुंदर तरीके से वर्णन किया गया है। रामायणकालीन समाज में स्त्री पति को अपना सर्वस्व मानती थी। पत्नी दुःख और सुख हर परिस्थिति में पति का अनुसरण करती थी। अपने पति की प्रिय पत्नी पति पर दृढ़ अधिकार रखती थी। इस तरह रामायणकालीन समाज में पत्नीत्व एक शक्तिशाली कारक था।

मुख्य शब्द :– समाज, स्त्री, वधु, पत्नी, परिवार, परिस्थिति, जीवन, संस्कार, आदि।

समाज में कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा स्त्रियों का है। किसी समाज विशेष में नागरिक सभ्यता की स्थिति मुख्यतः उस समाज में स्त्रियों के प्रभाव पर निर्भर करती है। एक स्त्री को अपने सम्पूर्ण जीवन में अनेक भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं, जैसे की पुत्री, पत्नी, माता, सास, बहन, साली आदि। एक पत्नी के रूप में एक स्त्री से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने पति की सभी आवश्यकताएँ और इच्छाएँ पूरी करे, साथ ही अपने परिवार के कल्याण की परवाह करे। इसलिए एक स्त्री को परिवार में उत्तरदायित्वों से भरी भूमिका निभानी होती है।

संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में प्रथम महाकाव्य वाल्मीकि रचित रामायण संस्कृत के बहुत से अन्य महाकाव्यों और नाटकों की तरह ही मुख्य रूप से स्त्री पात्रों पर केन्द्रित है। स्त्री जीवन की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण संकल्पना पत्नीत्व का इस महाकाव्य में बहुत ही सुंदर तरीके से वर्णन किया गया है। विवाह के बाद एक स्त्री अपने जीवन साथी के माता–पिता के लिए एक वधू के रूप में होती है। रामायण में यह देखना बहुत ही रुचिकर है कि कौशल्या सास के रूप में अपनी नवविवाहिता अनुभवहीन पुत्रवधू सीता का मार्गदर्शन करती है कि कैसे उसे एक पत्नी के रूप में अपने पति राम के प्रति जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना है।[1] सास और पुत्रवधू में इस तरह का रिश्ता आज के समाज में भी बहुत ही आदर्श माना जा सकता है। रामायणकालीन समाज में पति स्त्री के लिए सर्वस्व माना जाता था। एक स्त्री के लिए उसके जीवन में और जीवन के बाद भी न तो उसका पिता, न उसकी माता, न उसका पुत्र, न उसकी सहेलियाँ और न वह स्वयं अपने लिए सहारा होती थी, बल्कि उसका पति ही उसका एकमात्र और सच्चा सहारा होता था।[2] यह भी कहा गया है कि एक पत्नी अपने पति के बिना प्रसन्न नहीं हो सकती, भले ही उसके सौ पुत्र हों।[3]

अयोध्याकाण्ड में सीता स्वयं अपने पति के साथ वन में जाने की जिद करती है, वह कहती है कि पिता, माता, पुत्र, भाई, पुत्रवधू– ये सब अपनी नियति को भोगते हैं, अपने पूर्व जन्म में अर्जित पुण्यों का आनंद लेते हैं।[4], परन्तु एक पत्नी ऐसी है जो अपने आश्रयदाता पति के भाग्य में भागीदार होती है।[5]

*** सह–शिक्षिका, आसाम सरकारी विद्यालय, गौरीपुर, राज्य– आसाम, डाक सूचित संख्या– 783331**

वाल्मीकि की रामायण में समाज एक पत्नी से यह अपेक्षा रखता था कि उसे अपने पति की कमियों के बारे में नहीं सोचना चाहिए और विनम्रता से अपने पति की सेवा करनी चाहिए। ऋषि अत्रि की पत्नी अनसूया के अनुसार एक श्रेष्ठ स्त्री के लिए पति ही उसका सर्वोच्च देवता है, फिर यह महत्त्व नहीं रखता कि वह बीमार है या मनमानी करने वाला है।[6] सीता ने भी अनसूया के इस विचार को पूरी तरह से अंगीकार किया और यह घोषित किया कि भले ही एक पति गरीब हो या अप्रतिष्ठित हो, पत्नी को उसकी आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। इस प्रकार यह माना गया कि पत्नी के लिए पति उसका आध्यात्मिक मार्गदर्शक होता है, पत्नी का एक मात्र धर्म है अपने पति के सुख के लिए काम करना।[7] पत्नी की भूमिका के बारे में राम ने अपनी माता कौशल्या, जो कि अपने पति दशरथ को छोड़कर राम के साथ वन में जाना चाहती थी, से कहा कि एक पत्नी के लिए उसका पति ही उसका सहारा, स्वामी, भगवान, गुरु और मित्र होता है।[8] उस समय के समाज में पत्नी सुख और दुःख हर परिस्थिति में अपने पति का अनुसरण करती थी। सीता ने स्वयं यह विचार वन के लिए प्रस्थान करने से पहले राम के सम्मुख व्यक्त किये थे।[9] सीता के अनुसार हर परिस्थिति में अपने पति के चरणों में संरक्षण प्राप्त करना ही एक स्त्री की पहली प्राथमिकता है, फिर वह कोई महल हो या वायुयान।[10]

मगर विवाहित जीवन में अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पित होते हुए भी कुछ मामलों में स्त्री अपने पति के विरोध में बोलती थी। जैसे की कौशल्या अपनी उपेक्षा किये जाने पर राम की उपस्थिति में दशरथ के सामने जोर–जोर से बोली थी। जब राम वन में जा रहे थे, कौशल्या ने दुःखी होते हुए राम पर अन्याय करने के लिए अपने पति को दोषी ठहराया था। परन्तु कौशल्या एक पतिव्रता अर्थात् समर्पित पत्नी थी, उसने अपने पति को क्षमा कर दिया जब दशरथ ने हाथ जोड़कर दया की याचना की। तब कौशल्या अपनी गलती मानते हुए और अपने दोषारोपण के लिए लज्जित होते हुए अपने पति के चरणों में गिर गई थी।[11]

रामायण के दिनों में, एक आदर्श पत्नी वह होती थी, जिसमें कुछ निश्चित शारीरिक गुण होते थे। सुंदर चेहरे की मुस्कान, कोमल सुघड़ आकृति, आँखों में चमक और वाणी की मधुरता– सबसे सुंदर संकल्पनाएँ थी, जो पत्नी के प्रति पति के स्नेह को बढ़ाती थी।

यह भी माना जाता था कि पति से जुड़ाव ही पत्नी का एकमात्र गहना था।[12] एक पत्नी से अपने पति का पूर्ण विश्वास अर्जित करने के लिए हमेशा अपना पूरा प्रयास करते हुए धार्मिक और मधुर स्वभाव से संपन्न होने की अपेक्षा की जाती थी।[13] पति की सेवा उसका सर्वोच्च धर्म था और वह केवल अपने पति के आराम के लिए काम करते हुए उसकी खुशियों को बढ़ाने के लिए अपना सर्वोत्तम प्रयास करती थी।[14]

उस समय के समाज के अनुसार, एक पत्नी को कभी भी अपने पति के प्रति अनुचित या अप्रिय आचरण का दोषी नहीं होना चाहिए।[15] अयोध्या काण्ड में यह देखा जाता है कि राम अपने महल में सुनहरे आसन पर बैठे हैं और सीता उनके बगल में हाथ में चंवर लेकर खड़ी है।[16] इन सबने एक पत्नी का अपने पति के प्रति प्रेम और सम्मान को बताया है।

एक पत्नी के प्रतिदिन के कर्तव्यों के बारे में रामायण में कहा गया है कि उसे जल्दी जागना चाहिए, स्नान करना चाहिए और अपने संस्कारजनित स्वभाव से भगवान् की पूजा करनी चाहिए। यह हमेशा सही है कि उसे अपने पति के कल्याण के लिए अपने आपको व्रतों, सत्य की प्रतिज्ञा और तपस्या में लगाव रखना होता था।[17] जब सीता जंगल में राम के साथ थी, उसने निर्वासन के दौरान अपने पति की भलाई और अयोध्या में उसकी सुरक्षित वापसी के लिए देवी गंगा और कालिंदी एवं पवित्र न्यग्रोध वृक्ष की प्रार्थना की थी।[18]

उस समय स्त्री प्रोषितभर्तृका थी अर्थात् एक पत्नी को पति के वियोग में बालों की एक ही चोटी बनानी होती थी, उपवास का पालन करना होता था, प्रार्थनाएँ करनी होती थी और हमेशा एक तपस्वी का जीवन जीना होता था और हर समय पत्नी उत्सुकता से एवं चिंतित होते हुए अपने पति की वापसी की राह देखती थी।[19] जब रावण ने सीता का अपहरण कर लिया था तब वह भी नंगी भूमि पर लेटती थी, धार्मिक प्रतिज्ञाओं का पालन करती थी और पवित्रता बनाये रखती थी।[20] उसने किसी भी कारण से अपने शरीर को

अपनी इच्छा से किसी दुसरे पुरुष के संपर्क में आने की भी अनुमति नहीं दी थी। इसीलिए जब हनुमान ने कैद में बंद सीता को ले जाने की इच्छा व्यक्त की, तो सीता ने यह सोचते हुए प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि न केवल उसके लिए बल्कि राम के सम्मान के लिए भी यह हानिकारक होगा।[21] उस समय माना जाता था कि पति और पत्नियाँ आपस में एक–दूसरे के कर्मों के फल बाँटते थे।[22] सभी यज्ञों का आरम्भ करने के लिए निरपवाद रूप से पत्नी की उपस्थिति आवश्यक थी। अश्वमेध यज्ञ में दशरथ की रानी ने भाग लिया था।[23] राजतिलक समारोह में पत्नी का साथ यह दिखाता था कि समाज में स्त्री को समानता का स्थान प्राप्त था। विधवाएँ अपने पति के अन्तिम संस्कार में शामिल हो सकती थीं।[24] बाली के अंतिम संस्कार में दूसरे लोगों के साथ उसकी पत्नियाँ भी गई थीं।[25] यह भी पाया जाता है की पति की अनुपस्थिति में पत्नी को नित्य अग्निहोत्र यज्ञ में उपस्थित होने का अधिकार था।[26] कौशल्या ने अपने पुत्र का कल्याण सुनिश्चित करने के लिए स्वस्त्ययन यज्ञ के सभी अनुष्ठान अकेले ही किये थे।[27] समान रूप से अपने पति की अनुपस्थिति में तारा ने वही यज्ञ किया था।[28] समाज में यह भी परम्परा थी कि एक पत्नी अपने पति की अनुपस्थिति में राज्य का शासन भी चला सकती थी। इसीलिए जब राम वन के लिए गमन कर रहे थे, तब महान संन्यासी वशिष्ठ ने कैकेयी को सलाह दी थी कि राम की विशेष पूरक होने से सीता राम के प्रतिनिधि के रूप में अयोध्या का शासन चलाये।[29]

रामायणकालीन समाज में पत्नीत्व एक शक्तिशाली कारक था। एक प्रिय पत्नी अपने पति पर दृढ़ अधिकार रखती थी। दशरथ पर कैकेयी का प्रभाव और वन में साथ चलने के सीता के प्रस्ताव को ठुकराने में राम की असमर्थता यह स्पष्ट करने वाले उदाहरण हैं। जब राम ने सीता को अयोध्या में छोड़कर वन में जाने का प्रस्ताव दिया, तब सीता ने प्रस्ताव को स्पष्ट रूप से निरस्त कर दिया और अपने पति के साथ वन में आने की इच्छा के समर्थन में मजबूत विचार रखे।

यह महाकाव्य अपने पति के द्वारा एक पत्नी के परित्याग को भी सिद्ध करता है। गौतम ऋषि की सुंदर पत्नी अहल्या इंद्र के साथ प्रेम प्रसंग की दोषी थी, जो कि उसके पति के भेष में उसके पास था। गौतम ने उसे उसकी चपलता के लिए दण्डित किया। तब अहल्या ने अपनी सफाई पेश की और क्षमा के लिए याचना की।[30] गौतम अन्ततः इस शर्त पर पुनर्मिलन को सहमत हुए कि उसे एक पत्थर के आकार में एक लम्बी तपस्या के द्वारा अपने आपको पवित्र करना होगा और अंत में उसने राम के द्वारा मुक्ति पाई।[31] इसी तरह लंका के युद्ध के बाद राम के द्वारा सीता का परित्याग हुआ। इस मामले में परित्याग सीता की शुद्धता के संदेह पर आधारित था ओर राम को जनता में बदनामी से बचने के लिए वह करना पड़ा। बाद में उन्होंने अग्नि परीक्षा में सफल रहने पर सीता को फिर से स्वीकार किया। रामायण में एक आदर्श पत्नी वह मानी जाती थी जो शारीरिक और नैतिक पूर्णताओं से संपन्न होती थीं। इस प्रकार एक पत्नी अपने पति की खुशी का मूल तत्व, उसका मित्र और उसके जीवन की सहयात्री मानी जाती थी। देखभाल करने वाले स्वभाव और अपने प्रति समर्पण के कारण सीता के प्रति राम का स्नेह अधिक से अधिक होता गया और सीता ने राम के अंतःकरण में स्थायी जगह बना ली।[32] महर्षि वशिष्ठ के अनुसार भी एक पत्नी अपने पति की आत्मा होती है।[33] इसीलिए एक पत्नी के बिना एक पुरुष पूर्ण व्यक्ति नहीं माना जाता है।[34]

रामायण में एक स्त्री की पत्नी के रूप में जो स्थिति हम पाते हैं, वो आज के समाज से मिलती–जुलती है। यद्यपि उस समाज में स्त्री निष्ठावान थी और अपनी पसंद के बारे में बोलने की स्वतंत्रता रखती थी, फिर भी स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं थी। उन्हें अपना जीवन उस तरह से जीने की पूरी स्वतंत्रता नहीं थी, जिस तरह से वे अपना जीवन जीना चाहती थीं। सामान्यतया समाज में स्त्रियों पर प्रभुत्व जमाया जाता था। पतियों को अपने पूरे जीवन में अनेक पत्नियाँ रखने का अधिकार था, परन्तु जब एक पत्नी अपने पति के अलावा दूसरे पुरुष को स्पर्श भी कर लेती थी तो उसे अस्वीकृत कर दिया जाता था और जनता में बदनामी से बचने के लिए पति के द्वारा उसे दण्डित किया जाता था। आज के समाज में भी कई बार कर्तव्यों के नाम पर और समाज में अपना कद्र बनाये रखने के लिए पतियों द्वारा अपनी पत्नियों की उपेक्षा की जाती है। कुछ मामलों में पतियों द्वारा पत्नियों का शोषण किया जाता है। जब इस तरह का व्यवहार स्त्री के साथ बार–बार किया जाता है, तो आत्महत्या करने के सिवाय उसके पास और कोई रास्ता

नहीं बचता है। सीता के मामलें में अग्नि परीक्षा, लंका के युद्ध के बाद उनकी शुद्धता प्रदर्शित करने के लिए राम के द्वारा थोपी गई थी। और वह परीक्षा सीता ने सफलतापूर्वक उत्तीर्ण की। राम ने उनको स्वीकार किया और अयोध्या लौट आये। अयोध्या लौटने के बाद सीता की शुद्धता पर फिर प्रश्न उठे और यह अयोध्या के नागरिकों में गपशप का मुद्दा बन गया। जनता में बदनामी से बचने के लिए राम ने सीता को फिर से अस्वीकार कर दिया और उनको वन में भेज दिया। उस समय सीता गर्भवती थी। ऐसी स्थिति में उनको अपने पति से पूर्ण प्रेम और देखभाल की आवश्यकता थी, पर उनको कुछ नहीं मिला। और दूसरी तरफ समाज में ऐसी स्त्रियाँ भी थी जिन्होंने अपने अभिमान में अपने परिवार को नष्ट कर दिया। वास्तव में एक परिवार में पति और पत्नी के बीच सामंजस्य होना चाहिए। पति और पत्नी को एक दूसरे को समान रूप से आदर देना चाहिए। इसीलिए रामायाण से हमें यह शिक्षा लेनी कि सीता जैसी स्त्री की उपेक्षा करके एक पति उसे खो देता है और पूरा परिवार विघटित हो जाता है, जैसा कि राम और सीता के मामले में हुआ।

सन्दर्भ–सूची :–

1. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, २.३६.२०–२५, पृ.–२८६।
2. न पिता नात्माजो वात्मा त माता न सखीजनः। इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा।। वही, २.२७.६, पृ.–२५८।
3. नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा। वही, २.३६.२६, पृ.–२८६।
4. वही, २.२७.४–५, पृ.–२५८।
5. गतिरेका पतिर्नार्या। वही, २.६१.२४, पृ.–३४४।
6. स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः। वही, २.११७.२४, पृ.–४६७।
7. वही, २.११८.२–६, पृ.–४६८
8. (प) वही, २.२१.६१, पृ.–२४४ (पप) वही, २.२४.१६, २०, पृ.–२५६।
9. वही, २.२६.२०, पृ.–२६३।
10. प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा।/सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशेष्यते।। वही, २.२७.६, पृ.–२५६।
11. वही, २.६२, पृ.–३४४–३४५।
12. वही, ५.१७.२१, पृ.–६४।
13. वही, १.७७.२७–२८, पृ.–१७६।
14. वही, २.२४.२६, पृ.–२५२।
15. नहि किंचिदयुक्तं वा विप्रियं वा पुरा मम।/अकरोस्त्वं विशालाक्षि तेन न श्रद्धामि ते।। वही, २.१२.२०, पृ.–२१०।
16. वही, २.१६.१०, पृ.–२२७।
17. वही, २.२६.२६–३०, ३७–३८, पृ.–२५७–२५८।
18. (प) वही, २.५२.८२–६१, पृ.–३२१–३२२ (पप) वही २.५५.२०–२१, २४, पृ.–३३०।
19. वही, ५.१६.१६–२०, पृ.–६८।
20. वही, ५.२८.१२, पृ.–६१।
21. वही, ५.३७.६२–६४, पृ.–११६।
22. भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।/अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि।। वही, २.२७.५, पृ.–२५८।
23. वही, १.८.२३–२४, पृ.–४८।
24. प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम्।/स्त्रियश्च शोकसंतप्ताः कौसल्याप्रमुखस्तदा।। वही, २.७६.२०, पृ.–६८२।
25. वही, ४.२५.३५, पृ.–७०७।
26. अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।/अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः।। वही, २.७५.१४, पृ.–३७७।
27. वही, २.२०.१५–१६, पृ.–२३७।
28. ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी।/अन्तः पुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमहिता।। वही, ४.१६.१२, पृ.–६८२।
29. वही, २.३७.२३–२४, पृ.–२८५।
30. वही, ७.३०.४०, पृ.–६८३।
31. वही, १.७७.२७–२८, पृ.–१७६।
32. वही, १.४८.२६–३२, पृ.–१२६।
33. वही, २.३७.२४, पृ.–२८५।
34. वही, २.७५.३५, पृ.–३७६

सन्दर्भ–ग्रन्थसूची :–

- श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीताप्रेस द्वारा, गोरखपुर, 2006।
- Winternitz, M., *History of Indian Literature*, University of Calcutta, 1927.
- Shastri, H.P., *The Ramayana of Valmiki*, *Shanti Sadan*, London, Vol. I, 1952.

मैकियावेली और आधुनिक प्रबंधन : तुलनात्मक विश्लेषण

डॉ. संजीव कुमार लवानियाँ *
मुकेश्वर सोनवानी**
संत कुमार तिवारी***

प्रस्तुत अध्ययन 15वी शताब्दी के यूरोपियन चिंतक मैकियावेली के राजनीतिक दर्शन तथा आधुनिक प्रबंध प्रणाली के मध्य तुल्नात्मक अध्ययन पर केन्द्रित है। द्वितीयक स्रोत से प्राप्त तथ्यों के आधार पर विश्लेषणात्मक ढंग से मैकियावली के विचारों की आधुनिक प्रबंधन प्रणाली में प्रासंगिकता को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। मैकियावेली ने शुद्ध व्यवहारवाद का प्रतिपादन किया जो यथार्थवाद से प्रेरित है। उनकी प्रसिद्ध कृति ''द प्रिंस'' समकालीन राजनीतिक दर्शन की संहिता मानी जा सकती है जिसमें प्रशासक की भूमिका का विस्तृत वर्णन है। दूसरे अर्थों में यह कहा जा सकता है कि मैकियावेली का राजनीतिक चिंतन शासन प्रबंधन की कला से सम्बद्ध है। प्रबंधन की यह कला आधुनिक ज्ञान–समाज में उपयुक्त नही रह गया है। यह केवल राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली के लिए लाभप्रद था।

कुंजी शब्द– प्रबंधन, शुद्ध व्यवहारवाद, राजनीतिक दर्शन, धर्म, प्रशासन, सामूहिक प्रतिनिधान, ज्ञान–समाज

मैकियावेली की आधारभूत मान्यताएँ :–

मैकियावेली पर तात्कालिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव था, जिससे प्रभावित होकर उन्होने प्रशासन के यथार्थवादी एवं व्यवहारिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। मैकियावली के राजनीतिक चिंतन को आधुनिक युग के प्रथम राजनीतिक विचार होने का गौरव प्राप्त है, क्योकि उनके विचार मध्ययुगीन परम्पराओं से सर्वथा भिन्न थे। ''मैकियावेली राजनीति में धर्म और नैतिकता का अनुसरण करने के बजाय शुद्ध व्यवहारवाद का प्रतिपादन किया है। उन्होंने ऐतिहासिक और अनुभवसिद्ध तत्वों के आधार पर राजनीतिक दर्शन में एक नए विचारधारा का सूत्रपात किया। मैकियावेली के चिंतन को समझने के लिए उनके युग के उन पोषक तत्वों और उपलब्ध परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है, जिन्होने उनके चिंतन को प्रभावित किया। पुनर्जागरण आंदोलन, निरंकुश राजतंत्रों का उदय और इटली का राजनीतिक प्रशासकीय विभाजन से मैकियावली के दर्शन की रूप रेखा निर्धारित हुई थी। मैकियावेली ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए निम्न लिखित तत्वों को प्रमुखता से स्थान दिया–

- धर्म निरपेक्ष राजनीति
- मानव स्वभाव
- प्रशासन की भूमिका
- साध्य ही साधनों का औचित्य है।

मैकियावेली की मध्ययुगीन मान्यताओं के विरूद्ध राजनीति को धर्म एवं नैतिकता के बंधनों से पूर्णतः मुक्त कर दिया। वह उस मूल धार्मिक मान्यता में विश्वास नही करता कि मनुष्य की नियति एक पारलौकिक साध्य की सिद्धि करना है। उनके अनुसार मनुष्य की सभी साध्य पार्थिव है, दिव्य नही। भौतिक समृद्धि के अलावा वह जिन मूल्यों को स्वीकार करता है वे सब पार्थिव है, दिव्य नही। ये मूल्य है–मानवता, शक्ति और यश। मैकियावेली राज्य को साध्य मानता है और धर्म को इस साध्य के साधन की पदवी देता है। राज्य और

*** विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र–समाजकार्य पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त), वि.वि छत्तीसगढ़ बिलासपुर।**
****अतिथि शिक्षक, पं. सुन्दरलाल शर्मा(मुक्त), वि.वि छत्तीसगढ़ बिलासपुर।**
***** अतिथि शिक्षक, पं. सुन्दरलाल शर्मा(मुक्त), वि.वि छत्तीसगढ़ बिलासपुर।**

प्रशासन के सम्बन्ध में मैकियावेली धर्म, नैतिकता और सामाजिक सदाचार के नियमों को उसी सीमा तक उपयोगी मानता है जिस सीमा तक ये राजनैतिक लक्ष्यों की सिद्धि में सहायक हों''[1]।

मैकियावेली ने प्रशासन के संबंध में जो कुछ कहा है, उसके मूल में एक विशिष्ट धारणा कार्य कर रही है। वह धारणा यह है कि मानव प्रवृत्ति पूर्णतः स्वार्थी है। ''दि प्रिंस के 17 वें अध्याय में वर्णित करते हुए कहते हैं कि मानव स्वभाव में स्वार्थी, लोभी, दानव प्रवृत्ति ही उसकी क्रियाओं का मूल स्त्रोत है। मैकियावेली क अनुसार ''लोग न केवल डरपोक और अज्ञानी होते हैं, वरन स्वभाव से ही दुराचारी होते हैं, उनमें आवश्यकता पड़ने पर ही सद्चरित्र दिखाई पड़ते हैं। लोग अपने वासनाओं के दास और प्रथम श्रेणी क स्वार्थी होते हैं। मानव स्वभाव से दुष्ट और धोखेबाज होने के कारण मैकियावली ने प्रशासक को निरंकुश और शक्तिशाली होने को कहा है। मैकियावेली ने बताया कि मानव स्वभाव की जो प्रवृत्तियां हैं उन्हे शिक्षा द्वारा नही सुधारा जा सकता, उनके सुधार का प्रमुख साधन शक्ति या दमन ही है। उसने मानवीय स्वभाव की दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए राजा में शेर जैसा साहस और लोमड़ी जैसी चालाकी दोनो ही गुणों के समावेश की चर्चा की है। लोमड़ी के स्वरूप को छिपाने के लिए राजा को उच्च कोटि का बहुरूपिया और आवश्यकता पड़ने पर अपने सिद्धान्तों का खण्डन करने की चाल से काम लेना चाहिए''[2]।

मैकियावली ने बताया कि किस प्रकार से एक शासक को अपने राज्य का संचालन करना चाहिए तथा उसके लिए उसे क्या–क्या करना चाहिए–

- ''जनता में लोकप्रिय होनाः शासक को अपनी प्रजा का प्रेम जीतना चाहिए। जनता को उसकी आवश्यकता महसूस होनी चाहिए।
- अनुनय–विनय का चतुराई से प्रयोगः एक कुशल शासक लोगों पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए प्रथम चरण में बल का प्रयोग नही करता। प्रचार तथा धर्म के माध्यम से लोगों को शांति तथा आत्म–समर्पण के मार्ग की ओर सुगमतापूर्वक प्रेरित किया जा सकता है।
- प्रेम की अपेक्षा भय का पात्र होना चाहिएः जनता को राजा से प्रेम करना तथा उससे भयभीत रहना दोनो ही उत्तम है, यद्यपि प्रेम की अपेक्षा भय ज्यादा महत्वपूर्ण है।
- निष्ठुरतापूर्वक बल का प्रयोगः अपनी जनता की कठिनाइयों को अल्प मात्रा में ध्यान रखते हुए राजा को अपनी इच्छा को बलपूर्वक लागू करना चाहिए। अपनी सत्ता का विरोध करने वालों को कुचल डालने के लिए राजा को बल का प्रयोग निष्ठुरतापूर्वक करना चाहिए।
- सार्वजनिक उत्साह उत्पन्न करनाः एक प्रशासक को जनता का उत्साह बढ़ाने के लिए शिक्षा, धर्म तथा प्रचार का सहारा लेना चाहिए।
- अच्छा परोपकारी दिखाई देना चाहिएः प्रशासक को यह प्रदर्शित करना चाहिए कि वह सभी सद्गुणों की खान है। प्रशासक को अत्यंत उदार, दयालु, कृपालु, सहृदय, धार्मिक तथा साहसी होने का प्रदर्शन करना चाहिए, जिससे जनता में उसके प्रति आस्था एवं विश्वास मजबूत बना रहे।
- आवश्यकता पड़ने पर लोमड़ी और शेर का खेल खेलनाः प्रशासक को शेर की तरह ताकतवर तथा दिमाग से लोमड़ी जैसा चतुर होना चाहिए। शेर बहादुर होता है, परन्तु वह फंदे में फस जाने पर बाहर नही निकल पाता और लोमड़ी बहुत चालाक होती है, परन्तु भेड़ियों से अपने आप को नही बचा पाती। इसलिए प्रशासक को फंदे से बाहर निकलने के लिए लोमड़ी जैसे चतुर तथा भेड़ियों को खदेड़ने के लिए शेर जैसा बहादुर होना चाहिए।
- अवसरवादी होना चाहिए : शासक को यह जानना चाहिए कि उसका न कोई स्थायी मित्र होता है न कोई स्थायी शत्रु। विशेष परिस्थितियों में ही यह निर्धारित होता है कि वह मित्र है या शत्रु।
- चाटुकारों से बचना : उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों में खुशामद की कमजोरी होती है, यह खुशामद एक मादक जैसी होती है, जिससे प्रशासक की निर्णय शक्ति निष्क्रिय हो जाती है।
- प्रजा की सम्पत्ति तथा औरतों से दूर रहना : शासक को जनता की सम्पत्ति और स्त्रियों से दूर रहना चाहिए, क्योकि प्रत्येक मानव इन दानों विषयों पर अति संवेदनशील होता है''[3]।

व्यवहारिक प्रशासन के क्षेत्र में मैकियावेली का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैकियावेली के सिद्धांतों को उनके समकालीन विचारकों ने बड़ा विरोध किया। यद्यपि मैकियावेली के सिद्धान्तो का पालन व्यवहारिक शासन में किया जाता ह। मैकियावेली पर अनैतिकता का आरोप लगाया जाता है, किंतु उसने स्वयं इसका उत्तर देते हुए कहा था कि ''कोई व्यक्ति पुस्तक पढ़कर अनैतिक बन गया हो– यह मैने कभी नही सुना। मैकियावेली का दोष यह है कि उसने व्यवहारिक शासन में प्रयोग किये जाने वाली कुटिल नीतियों को सबके सामने रख दिया। उसने राजनीति को भ्रष्ट नही किया, ऐसा तो सदियों पूर्व हो चुका था, किंतु उसने जिस निर्ममतापूर्वक उन पवित्र षड़यंत्रों का पर्दाफाश किया जो धार्मिक मंत्रोचार द्वारा बड़े–बड़े स्थानों में रखे जाते थे। ''मैकियावेली को पक्का देश भक्त होने और आधुनिक राष्ट्र का नेता होने का श्रेय दिया जाना चाहिए। सैद्धांतिकता के विरूद्ध व्यावहारिकता की ओर उसके तीव्र सुझावों ने निस्संदेह राजनीति दर्शन को मध्ययुग के पाण्डित्यपूर्ण अस्पष्टवाद से बचाने में बहुत योगदान दिया और इस कारण उसे महान कार्य–कारणवादियों में सर्वश्रेष्ठ नही तो प्रथम कार्य–कारणवादी स्वीकार किया जाना चाहिए''[4]।

आधुनिक प्रबंधन :– प्रबंधन का अर्थ–उपलब्ध संसाधनों को दक्षतापूर्वक तथा प्रभावपूर्ण तरीके से उपयोग करते हुए लोगों के कार्यों में समन्यवय करना ताकि लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित की जा सके। प्रबंध इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति में अपना श्रेष्टतम योगदान दे सके। मानव संसाधन प्रबंधन का लक्ष्य किसी प्रतिष्ठान के प्रति कर्मचारियों को आकर्षित करने, उन्हे बरकरार रखने और उसके प्रभावी ढंग से प्रबंधन के कौशलगत लक्ष्यों को पूरा करने में मदद करता है। मनुष्य चैतन्य प्राणी है। यह अलग–अलग सोच रखता है, इसमें नया कुछ करने का साहस होता है और ये संगठित होकर सामूहिक नैतिक बोध से, दलीय भावना से कार्य करता है तो संगठन अपने लक्ष्यों को सहजता से प्राप्त करता है। अर्थात प्रबंधन अनिवार्य रूप से योजनाबद्ध और निर्णय लेने की प्रक्रिया है। एक संगठन के मानव, वित्तीय, भौतिक और सूचना संसाधनों को व्यवस्थित, अग्रणी और नियंत्रित करना है, जिसमें संगठनात्मक लक्ष्यों को सर्वोत्तम संभव तरीके से प्राप्त करना है।

आधुनिक प्रबंधन के संबंध में प्रमुख अवधारणाएँ :– ''थियो हैमन द्वारा प्रबंधन की तीन अवधारणाओं को प्रस्तुत किया गया जिसका विवरण इस प्रकार से है–

1. **प्रबंध अधिकारियों की अवधारणा स्वरूपः–** इस अवधारणा के अनुसार प्रबंध से आशय प्रबंध अधिकरियों से होता है, जिसके अंतर्गत किसी सम्बन्धित इकाई में कार्य करने वालों के कार्यो पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है।
2. **प्रबंध विज्ञान की अवधारणा स्वरूपः–** इस अवधारणा के अनुसार प्रबंध से आशय ऐसे विज्ञान से होता है, जिसमें व्यवसायिक नियोजन, संगठन, समन्वय, प्रेरणा तथा नियंत्रण से संबंधित सिद्धांतों का वैज्ञानिक विश्लेषण होता है।
3. **प्रबंध प्रक्रिया की अवधारणा स्वरूपः–** इस अवधारणा के अनुसार प्रबंध शब्द का अर्थ एक प्रक्रिया के रूप में लिया गया है, जिसके अंतर्गत लोगों के साथ मिल–जुलकर काम किया जाता है।

उपरोक्त तीसरी अवधारणा प्रबंधन के संबंध में महत्वपूर्ण मानी गई है।

हैराल्ड कुण्ट्ज ओ डानेल की अवधारणा :– ''प्रबंधन औपचारिक रूप से संगठित व्यक्तियों के समूह के साथ उनके द्वारा कार्य कराने की कला है, यह एक आधुनिक अवधारणा है, जो आधुनिक परिस्थिति में प्रबंधक अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से तभी काम ले सकता है जबकि वह स्वयं उसके साथ काम करने के लिए तत्पर हो''

उपरोक्त अवधारणाओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कोई भी संगठन हो जिसका एक उद्देश्य हो, इनमें एक समानता वह है प्रबंध और प्रबंधक। दूसरे अर्थ में, पारस्परिक रूप से संबंधित एवं एक–दूसरे पर निर्भरतापूर्वक कार्य करना प्रबंध कहलाता है। कोई संगठन स्वयं के उद्देश्यों को संयोगवश प्राप्त नही करता बल्कि यह पूर्ण नियोजित कार्य प्रणाली का प्रतिफल है।

डब्ल्यू. एफ. टेलर आधुनिक प्रबंध के पिता के पिता माने जाते हैं, इन्होने वैज्ञानिक प्रबंधन के दृष्टिकोण को विकसित किया। इस अवधारणा के अंतर्गत टेलर ने प्रबंधन की प्रमुख कमियों को उजागर किया तथा इसके साथ ही अनुसंधान की वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग, परीक्षण की आवश्यकता, कार्य की दशा के मानकीकरण और कामगारों तथा प्रबंधक वर्ग के मध्य परस्पर सहयोग की प्रधानता को महत्व दिया''[6]।

वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धांत–

किसी भी संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धांतों का महत्वपूर्ण स्थान है, जो निम्नलिखित है–

1. **''कार्य विश्लेषणः–** संगठन के संचालन के लिए कार्य विश्लेषण महत्वपूर्ण तत्व है। इसमें कार्यों का कई भागों में विभाजित किया जाता है तथा सभी कर्मचारियों को उसकी इच्छा के अनुसार कार्य सौंप देना चाहिए। प्रत्येक का अपने–अपने कार्यों में स्वतंत्र होना तथा अन्य का हस्तक्षेप अनुचित होता है।
2. **श्रम विभाजनः–** संगठन के विभिन्न स्तरों के कर्मचारियों के कार्य एवं दायित्व का विभाजन उसकी कार्य क्षमता एवं योग्यता के निर्धारण के आधार पर किया जाना चाहिए।
3. **कार्य प्रणालीः–** वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धांत के अनुसार संगठन की कार्य प्रणाली में सुधार किया जाना आवश्यक है। इसके अंतर्गत समय का मूल्यांकन, गति अध्ययन, मानकीकरण आदि आवश्यक उपकरण प्रयोग किये जाते हैं।
4. **अधिकतम लाभः–** किसी संगठन के सफलतापूर्वक संचालन हेतु प्रबंधक की भूमिका अहम होती है। प्रबंधक को ऐसी नीतियाँ बनानी चाहिए कि उपयुक्त व्यवस्थापन द्वारा संगठन को लाभान्वित करा सके।
5. **पारिश्रमिक प्रोत्साहनः–** प्रत्येक कर्मचारी को उसकी योग्यता एवं पद के अनुसार पारिश्रमिक मिलना चाहिए जिससे वह अपना व अपने परिवार का भरण–पोषण एवं आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। उचित पारिश्रमिक पाने पर ही वह अपने पारिवारिक चिंताओं से मुक्त होकर संगठन में निष्ठापूर्वक अपनी सेवाएं दे सकता है।
6. **समन्वयः–** संगठन में समन्वय दो प्रकार के होते हैं, पहला कर्मचारियों के मध्य। संगठन के अनुकूलतम संचालन हेतु उक्त दोनों में समन्वय अनिवार्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रबंधक एवं कर्मचारियों के मध्य सहकारिता की भावना होनी चाहिए''[6]।

मैकियावेली और आधुनिक प्रबंधन सिद्धांत का तुलनात्मक विश्लेषणः–

मैकियावेली 15वी–16वीं शताब्दी के समकालीन सामाजिक परिवेश से प्राप्त अनुभवों के आधार पर अपनी प्रसिद्ध कृति दि प्रिंस में प्रबंधक (शासक) की भूमिकाओं का विश्लेषण किया। मैकियावेली के अनुसार मानव स्वभाव दुष्ट और धोखेबाज होता है इसे शिक्षा द्वारा नही सुधारा जा सकता, उनके सुधार का प्रमुख साधन शक्ति या दमन है, इसलिए प्रबंधक को शक्तिशाली तथा निरंकुश होना बताया है। आधुनिक राष्ट्रवादी व समाजवादी विचारधारा व्यक्तिगत एवं सामूहिक समानता पर केंद्रित है और प्रत्येक व्यक्ति और समूह इस कल्याणकारी विचारधारा को स्वयं मे समाहित करता है और उसी के अनुसार उनके व्यवहारों का निर्धारण होता है। मैकियावेली का विश्लेषण आधुनिक परिप्रेक्ष्य में त्रुटिपूर्ण है, क्योकि उन्होने मानव समाज की सामूहिक प्रतिनिधान की अवहेलना की है जो समूह की विचारधारा को सामूहिकता से मुक्त कर व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के उत्प्रेरण पर अधारित व्यवहार को सर्वोपरि माना है जो यथार्थ नही है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक युग में धर्म का स्थान ''ज्ञान समाज'' ने ले लिया है जहाँ प्रत्येक चरणों पर तर्क की कसौटी से वास्तविका को निर्धारित करना है। मैकियावेली ने किसी व्यवस्था के संचालन में, व्यवस्था प्रमुख के व्यवहारों चतुराई, कुटिलता तथा धर्म से मानव व्यवहार को सम्बद्ध कर उनमें नियंत्रण तथा उनमें

प्रभाव स्थापित करनें की कला के समावेश को महत्वपूर्ण माना है, जिसे इस उत्तर–औद्योगिक वैज्ञानिक प्रबंधन पर लागू कर उद्देश्यों की प्राप्ति संभव नही है, प्रबंधक की स्वेच्छाचारिता और कुटिलता प्रबंधन तंत्र में प्रबंधक और कर्मचारियों के मध्य नकारात्मक भ्रम को जन्म दे सकता है। संगठन के सफल संचालन में पारस्परिक सहयोग और निर्भरता का प्रश्न मैकियावेली के चिंतन के अनुसार गौंण रह जाता है।

मैकियावेली का शुद्ध व्यवहारवाद तात्कालीन सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था की उपज थी, जो राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली की परिधि तक सीमित थी। जहाँ न तो कोई विकसित प्रोद्यौगिकी न स्वैच्छिक संगठन और न उनके स्वतंत्र नियोजित उद्देश्य थे। आधुनिक विश्व प्रजातंत्रात्मक शासन को आत्मसात् करने के पक्ष में है, इस परिप्रेक्ष्य में लक्ष्यों को नियोजित कर उसकी पूर्णता को साधने की विचारधारा महत्वपूर्ण है और यह व्यवस्था एकात्मकता का खंण्डन करता है साथ ही संस्कृतिकरण के परिणामस्वरूप प्रत्येक ऐतिहासिक विचारों का सृजन आने वाली पीढ़ी मे परिस्कृत रूप में स्थानांतरित की जाती है जो मैकियावेली के ऐतिहासिक अनुभवों के चिंतन को निरीह बना देता है। प्रबंधन का अभिनव स्वरूप ऐतिहासिकता के बंधनों से मुक्त हो चुका है। प्रशासक की निरंकुश और शक्तिशाली प्रवृत्ति किसी भी अर्थ में अधनिस्थों के कार्य की गुणवत्ता को सकारात्मक रूप में प्रभावित नही कर सकती।

आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में विभिन्न अंगों के मध्य प्रकार्यात्मक अन्योन्याश्रिता के सिद्धांतों का परिपालन करना नितांत आवश्यक है। मैकियावेली का चिंतन प्रबंधन के क्षेत्र में उद्देश्य के प्रति प्रेरणा को नष्ट कर आदेशात्मक एकता को बढ़ावा देता है जो संघर्ष को उत्पन्न करने वाला है। फिर भी मैकियावेली की राजनीतिक विचारधारा स्वयं मे मौलिक है जिसने तात्कालिक विचारकों में एक नवीन दृष्टिकोण को विकसित किया। शासन–प्रबंधन के क्षेत्र में मैकियावेली के चिंतन का प्रभाव प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष स्वरूप में परिलक्षित होते रहे हैं।

संदर्भ सूची–

1. हिन्दी माध्यम *कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,* नई दिल्ली, 1997।
2. मेहता, जीवन. *राजनीतिक चिंतन का इतिहास,* साहित्य भवन, आगरा, 1990।
3. वेदालंकार, हरिदत्त. *आधुनिक राजनीतिक चिंतन का इतिहास,* साहित्य भवन, आगरा, 1982।
4. सूद, ज्योति प्रसाद. *राजनैतिक विचारों का इतिहास,* के. नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, 1983।
5. जैन, पूजा. *प्रबंधन की अवधारणा,* 2021।
6. पचउरीए, एन.के. *पुस्तकालय सूचना विज्ञान दिग्दर्शन,* ऊमा प्रकाशन, आगरा, 2004।

हिमाचली लोकगीतों के प्रकाश्य में संगीतकार एस. डी. कश्यप का योगदान

बलदेव सिंह*

डॉ. श्रुति होड़ा**

सार संक्षेपिका :– हिमाचली लोकगीतों को प्रकाश में लाने का श्रेय संगीतकार एस0 डी0 कश्यप जी को ही जाता है। एस0 डी0 कश्यप जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन हिमाचली लोक संगीत के संरक्षण व संवर्धन के लिये न्योछाबर किया है। अन्धकार में डुबे हिमाचली लोक संगीत को उभारने के लिये एस0 डी0 कश्यप जी ने हिन्दी सिनेमा जगत में संगीतकार के रूप में अपनी सफलता तक को त्याग दिया था। एस0 डी0 कश्यप जी ने 1982 में हिमाचल की पहली औड़ियो कैसेट ''डिस्को नाटी ''प्रकाशित की थी और इसी कैसेट की वजह से एस0 डी0 कश्यप जी का हिमाचली लोक संगीत में पदार्पण हुआ। हिमाचली लोक संगीत में पदार्पण के साथ ही एस0 डी0 कश्यप जी ने हिमाचल प्रदेश का पहला व्यवसायिक रिकार्डिंग स्टूडियो बर्ष 1986 में ''साउण्ड ऑफ साउण्ड'' नाम से मण्डी जिला के सकरोहा नामक स्थान पर स्थापित किया। यह रिकार्डिंग स्टूडियो हिमाचली लोक संगीत को प्रकाश में लाने का मुख्य माध्यम बन गया। साउण्ड ऑफ साउण्ड रिकार्डिंग स्टूडियो की वजह से ही हिमाचली लोक संगीत में एक नई क्रान्ति आ गई। इस रिकार्डिंग स्टूडियो के माध्यम से हिमाचली लोक संगीत जगत को एक ऐसा अनुभवी संगीतकार मिला जिसने कि अपनी संगीत कला का लोहा हिन्दी सिनेमा जगत में भी सावित किया था। विलुप्त होते हिमाचली लोक गीतों को संरक्षण प्रदान करने में एस0 डी0 कश्यप जी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और वर्तमान में भी निरंतर कार्यरत है। एस0 डी0 कश्यप जी के उत्कृट योगदान के परिणाम स्वरूप ही हमें वर्तमान समय में हिमाचली लोक संगीत का एक उन्नत स्वरूप देखने को प्राप्त हो रहा है। हिमाचली लोक संगीत जगत के लिए एस0 डी0 कश्यप जी का योगदान कभी न भूलने वाला कार्य है।

हिमाचली लोकगीतों को प्रकाश में लाने का श्रेय – हिमाचल प्रदेश प्रकृति का अत्यन्त मनोहर और समृद्ध स्थल है। यह प्रदेश अपने प्राकृतिक सौन्दर्य और जलवायु के कारण न सिर्फ देश बल्कि पूरे विश्व भर में प्रसिद्ध है। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ–साथ यह प्रदेश अपने लोक संगीत के लिए भी जाना जाता है। हिमाचल प्रदेश के भोले–भाले लोगों के द्वारा गाये जाने वाले इस लोक संगीत में मौलिकता और परम्परा के मूल तत्व प्रचुरता से उपलब्ध है। सामूहिक अभिव्यक्ति,प्रेम,सदभावना,अपनत्व,पारस्परिक सामंजस्य,सामाजिक व्यवहार आदि यहां के लोक गीतों में स्पष्ट रूप से झलकते हैं। किसी भी क्षेत्र का लोक संगीत अपने आप में आडम्बरहीन तथा सीधा–सादा और परम्परा से युक्त होता है। लोक संगीत में उस क्षेत्र की छाया निहित होती है। लोक संगीत को परिभाषित करते हुए ''संगीत विषारद'' में उल्लेख किया गया है कि विभिन्न प्रान्तों में प्रादेशिक संस्कृति की आवश्यकता के अनुसार भिन्न–भिन्न अवसरों पर जो गीत गाए जाते हैं। उसे लोक संगीत कहा गया है। [1]

हिमाचली लोक संगीत का अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि यहां का लोक संगीत लोक गीतों की विशाल परम्परा को अपने अन्दर समेटे हुए है। लेखक देवराज शर्मा जी ने अपनी पुस्तक ''हिमाचल प्रदेश परिचय'' में हिमाचली लोक गीतों को परिभाषित करते हुए उल्लेख किया है कि हिमाचल प्रदेश के लोक गीत अत्यन्त मधुर, आनन्ददायक और लयात्मक हैं। इन लोक गीतों की झंकार आप खेत–खलिहान से लेकर चरागाहों, जंगलों, मेलों और उत्सवों सभी में सुन सकते हैं। इन लोक गीतों का

***शोधार्थी, पी0 जी0 जी0 सी0 जी0, पंजाब विश्वविद्यालय, सैक्टर–11, चण्डीगढ़।**

****एसोसिएट प्रोफेसर पी0 जी0 जी0 सी0 जी0, पंजाब विश्वविद्यालय, सैक्टर–11, चण्डीगढ़।**

विषय सामान्य जन–जीवन से लेकर इतिहास, धर्म, पुराण सभी से संबंधित हो सकता है। [2] लोक गीत अशिक्षित ग्रामीण जनता के भावुक तथा संवेदनशील हृदय के वे स्वाभाविक उद्‌गार हैं जो संगीत की बलबती धारा के रूप में प्रभावित हो उठते हैं। लोक गीतों के माध्यम से वहां के लोगों की स्पष्ट झलक व जनजीवन की पूरी कहानी सामने आ जाती हैं। यह एक ऐसी कला है जिससे कोई भी मनुष्य अछूता नहीं रह सकता हैं संगीत कला और मनुष्य दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

किसी भी कला का अस्तित्व कलाकार के बिना असम्भव है। कला एक कलाकार द्वारा ही प्रवाहित व प्रसारित होती हैं कला की यह प्रक्रिया सदियों से चली आ रही हैं हिमाचली लोकगीतों को उभारने का वर्णन करें तो यहां के लोक कलाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनकी मेहनत और लोक संगीत के प्रति इनके लगाव के कारण ही आज हम यहां के लोक संगीत को सुन पा रहे हैं। इन्हीं कलाकारों में एक प्रमुख नाम संगीतकार एस0डी0 कश्यप जी है, जिन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन लोक संगीत की सेवा में समर्पित किया है और हिमाचली लोक संगीत को नया जीवन प्रदान किया।

भगवाहन मोहल्ला जिला मण्डी हिमाचल प्रदेश 18 अप्रैल 1948 को जन्में संगीतकार एस0 डी0 कश्यप जिनका पूरा नाम सोमदेव कश्यप है। जितनी इनकी कद–काठी है, उससे भी कहीं अधिक ऊंचा कद इनका लोक संगीत जगत में है। ब्राह्मण परिवार में जन्में एस0 डी0 कश्यप जी की शैक्षणिक योग्यता दसवीं कक्षा तक ही है। बचपन से ही संगीत विषय में रूचि ज्यादा होने के कारण आपने संगीत की विधिवत शिक्षा स्वर्गीय प्रो0 श्याम लाल ठाकुर जी से लेनी शुरू की। संगीत शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात 1972 में आप अपनी किस्मत आजमाने माया नगरी बम्बई गए। 1972 से संघर्ष करते–करते 1979 में पहली हिन्दी संगीत एलबम "Danny Denzongpa & Nazm Geet and Ghazals" में संगीतकार के रूप में सफलता प्राप्त हुई। उसके बाद तो कश्यप जी के जीवन में सफलता का दौर चल पड़ा। हिन्दी नाटक उल्लास, अजनवी और हिन्दी फिल्म कोबरा और अनेखा मोड़ में एक सफल संगीतकार के रूप में कार्य किया। सफलता अर्जित करने के बाद दिल में इच्छा जगी कि क्यों न हिमाचली लोक संगीत पर भी काम किया जाए और 1982 में पहली बार गायक और संगीतकार के रूप में ''डिस्को नाटी'' नामक हिमाचली एलबम जो कि हिमाचल की पहली एलबम थी, इसमें काम किया। उस समय शायद आपने भी यह कल्पना नहीं की होगी कि आपकी यह शुरूआत अन्धकार में खोए हिमाचली लोकगीतों को नव जीवन प्रदान करेंगी। इस एलबम की वजह से आपकी शुरूआत हिमाचली लोक संगीत में हुई और परिणाम स्वरूप आपने हिमाचल प्रदेश का प्रथम व्यवसायिक रिकार्डिंग स्टुडियो स्थापित किया।

हिमाचल का प्रथम व्यवसायिक रिकार्डिंग स्टुडियो :– वर्ष 1982 में जब हिमाचल प्रदेश के लोक कलाकारों ने पहली बार औडियो कैसेट में हिमाचली लोक गीत सुने तो उनके दिल में संगीतकार एस0डी0 कश्यप जी के रूप में उम्मीद की एक किरण जग गई कि फिल्मी दुनियां की तरह हिमाचली लोक गीतों को भी रिकार्ड किया जा सकता है और इसके संरक्षण व संवर्धन के साथ–साथ इसे अपना व्यवसाय भी बना सकते हैं। लोक कलाकारों के विनम्र आग्रह और हिमाचली होने के नाते आपके भी दिल में इच्छा जाग गई कि क्यों न हिमाचली लोक संगीत में भी कार्य किया जाए और परिणाम स्वरूप 1984 में आपने हिमाचल के प्रथम व्यवसायिक रिकार्डिंग स्टुडियो का कार्य मण्डी जिला के सकरोहा नामक स्थान पर शुरू किया और 1986 में स्टुडियो का कार्य पूर्ण हुआ। हिमाचली लोक गायक ठाकुर दास राठी जी कहते हैं कि इस रिकार्डिंग स्टुडियो को लोक कलाकार मंदिर की तरह पूजते थे। साउंड ऑफ साउंड स्टुडियो के नाम से प्रसिद्ध इस रिकार्डिंग स्टुडियो में पहली ऑडियो कैसेट ''देवदार पुकारते हैं'' की रिकार्डिंग की गई। इस कैसेट में आठ गीतों का समावेश किया गया था ,जिसमें कुछ पारम्परिक लोक गीत और कुछ नए गीतों को रिकार्ड किया गया था। ''झिकड़े धोने वे डोडे रे बुटडू और मनु री मनाली देखी, थीपू लोगा वाली देखी '' गीतों को लोगों ने बहुत अधिक पसन्द किया। 1986 से लेकर 1996 तक लगभग एक हजार से अधिक लोक गीतों और सैंकड़ों लोक कलाकारों को उभारने का सराहनीय कार्य किया। कश्यप जी कहते हैं कि इससे पहले कोई भी व्यवसायिक रिकार्डिंग स्टुडियो हिमाचल में नहीं था और यहां पर हिन्दी और पंजाबी संगीत

अपनी जड़ें मजबूत कर रहा था और हिमाचली लोक संगीत धीरे–धीरे खत्म होने की कगार पर था, लेकिन वर्ष 1986 से हिमाचली लोक गीतों और लोक कलाकारों को साउंड ऑफ साउंड रिकार्डिंग स्टुडियो के रूप में नई ऊर्जा प्राप्त हुई। हिमाचली लोक संगीत में कार्य करने की वजह से आपका मुम्बई फिल्मी जगत से भी सम्पर्क कटता गया। लेकिन वर्ष 1995 में अभिनेता डैनी जी ने आपको मुम्बई दोबारा बुला लिया और आप उन्हें अपना शुभ चिन्तक भी मानते थे इसलिए आप उन्हें इंकार न कर सके और आप मुम्बई वापिस चले गए। आपने डैनी जी से कहा कि जैसे ही उनका कार्य पूर्ण होगा वो वापिस हिमाचल आएंगे और जैसे ही आपने अपना कार्य हिन्दी नाटक उसूल और अजनवी में संगीत देने का कार्य पूर्ण किया तो आप हमेशा के लिए हिमाचल वापिस आ गए। उस समय तक आपका सकरोहा स्थित स्टुडियो पूरी तरह से बिखर चुका था और आपने अपने दूसरे व्यवसायिक रिकार्डिंग स्टुडियो का कार्य शुरू किया।

दूसरा व्यवसायिक रिकार्डिंग स्टुडियो :– एस0 डी0 कश्यप जी कहते हैं कि 1998 में जब आपने अपने दूसरे व्यवसायिक रिकार्डिंग स्टुडियो की स्थापना मण्डी जिला के पनारसा नामक स्थान पर शुरू की तो उस स्टुडियो में आपने आधुनिक से आधुनिक उपकरणों की स्थापना की। इस स्टुडियो की स्थापना में लोक कलाकारों ने अपना भरपूर श्रम दान दिया। हिमाचल के प्रसिद्ध लोक गायक कुलदीप शर्मा जी कहते हैं कि उन्होंने भी लगभग दो वर्ष अपना श्रम दान इस स्टुडियो की स्थापना के लिए दिया और कुलदीप शर्मा जी कहते हैं कि इस स्टुडियो में सभी कलाकार एस0 डी0 कश्यप जी के सानिध्य में गुरूकुल की तरह रहते थे। वर्ष 2000 में स्टुडियो पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था और नई ऊर्जा के साथ लोक संगीत का कार्य आरम्भ किया। कश्यप जी कहते हैं कि उन्होंने दो तरीके से लोक गीतों को रिकार्ड करना शुरू किया। एक तो पारम्परिक लोक गीतों को और दूसरे नए रचित लोक गीतों को रिकार्ड किया। वर्तमान समय तक कश्यप जी के योगदान की बात करें तो आपने 5000 से अधिक हिमाचली लोक गीतों में अपना मधुर संगीत दे चुके हैं और वर्तमान में भी सक्रिय हैं। कश्यप जी के योगदान से न केवल विलुप्त होते हिमाचली लोक गीतों को संरक्षण मिला बल्कि हिमाचली लोक कलाकारों को भी प्रकाश में लाया और उन्हें भी सुनहरा अवसर प्रदान किया।

हिन्दी सिनेमा जैसे बड़े स्तर पर एक संगीतकार के रूप में सफलता हासिल करने के उपरान्त स्वयं को अन्धकार में डूबे हिमाचली लोक संगीत के उत्थान के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन न्योछावर कर एस0 डी0 कश्यप जी के योगदान को हिमाचली लोक संगीत जगत कभी भी नहीं भूल सकता है। हिमाचल के प्रसिद्ध शहनाई वादक सूरज मणी जी कहते हैं कि एस0 डी0 कश्यप जी के योगदान की वजह से ही आज सैंकड़ों कलाकार दो वक्त की रोटी खा रहे हैं। हिमाचली लोक संगीत से जुड़े हरेक कलाकार प्यार से कश्यप जी को गुरू जी कह कर ही संबोधित करते हैं। आपसे ही प्रेरणा पाकर वर्तमान में दर्जनों रिकार्डिंग स्टुडियो हिमाचली लोक संगीत में सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। एस0 डी0 कश्यप जी के प्रमुख गीतों की सूची :–

1. **गीत** – मनु री मनाली देखी थीपू लोंगा वाली देखी। **गायक** – एस0 डी0 कश्यप, **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप।
2. **गीत** – गंगे रामा मुनशी आ, **गायक**– भगत राम **गीतकार** – एस0 डी0 कश्यप।
3. **गीत** – नेगी भादुरा **गायक** – कैलाश बुशैहरी **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप
4. **गीत** – बांकी लाड़िए महाजनु, **गायिका** – कला चौहान, **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप।
5. **गीत** – हाऊली ए, **गायक** – आई0 एस0 चांदनी **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप
6. **गीत** – लोभा न ऐंडे नई रूशदे पागले, **गायक** – डाबे राम कुल्लवी, **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप
7. **गीत** – सुपने नौठा उदीआ नौठा झुरी रे देशा लो, **गायक** – नरेन्द्र ठाकुर, **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप
8. **गीत**– नीलु ए मेरी लश्टीए, **गायक** – ठाकुर दास राठी, **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप

9. **गीत** – नौच मेरी छुणकिए **गायक** – राकेश ठाकुर **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप
10. **गीत** – मथरू देवीए की नाटी, **गायक** – हेत राम भारद्वाज, **संगीतकार** – एस0 डी0 कश्यप

एस0डी0 कश्यप जी के द्वारा प्रकाश में लाए प्रमुख हिमाचली लोक कलाकार :– लोक गायक भगत राम, लोक गायक कैलाश बुशैहरी, लोक गायिका कला चौहान, लोक गायक आई0 एस0 चांदनी, लोक गायक ठाकुर दास राठी, लोक गायक नरेन्द्र ठाकुर, लोक गायक धर्मेन्द्र शर्मा, लोक गायक डाबे राम कुल्लवी, लोक गायक कुलदीप शर्मा, लोक गायिका नीरू चांदनी, शहनाई वादक सूरज मणी, ढोलक वादक स्वर्गीय दुनी चन्द, संगीतकार वाल कृष्ण, लोक गायिका कृष्णा ठाकुर आदि प्रमुख कलाकारों के अलावा भी हिमाचल के बहुत सारे लोक कलाकारों को उभारने में एस0 डी0 कश्यप जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है और आपके इस योगदान को भूल पाना हिमाचली लोक संगीत जगत के लिए आसान नहीं है।

उपसंहार :– प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर हिमाचल प्रदेश में जन्में एस0 डी0 कश्यप जी के व्यक्तित्व का अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि हिमाचली लोक संगीत को उभारने में इनके योगदान को शब्दों में ब्यां कर पाना सम्भव नहीं है। जिन पहाड़ी लोक गीतों को लोग सुनना तक पसन्द नहीं करते थे उन पहाड़ी गीतों में आपने अपनी कला कौशल डाल कर जन–जन तक पहुंचाया और इनके संरक्षण व संवर्धन के प्रति लोगों को जागरूक भी किया। कश्यप जी का ही योगदान है कि वर्तमान समय में हिमाचली लोक गीतों को न सिर्फ हिमाचल बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी सुना और पसन्द किया जाता है। एस0 डी0 कश्यप जी का यह योगदान लोक संगीत जगत हमेशा याद रखेगा।

संदर्भ–सूची :–

1. संगीत विशारद – लेखक, बंसल–सम्पादक, डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग– 33 संस्करण 2020 – प्रकाशक प्र0 संख्या – 566 संगीत कार्यालय, हाथरस – 204101 (उ0प्र0)।
2. देव राज शर्मा – हिमाचल प्रदेश परिचय, जगत प्रकाशन घुमारवीं,जिला बिलासपुर, हि0 प्र0, प्रथम संस्करण – 1993

सक्षात्कार –

1. संगीतकार एस0 डी0 कश्यप
2. शहनाई वादक, सुरज मणी
3. हिमाचली लोक गायक , ठाकुर दास राठी
4. हिमाचली लोक गायक , कुलदीप शर्मा

महादेवी वर्मा की काव्य-संवेदना

डॉ. मीनाक्षी मिश्रा*

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा विरह की अमर गायिका के रूप में प्रतिष्ठित हैं। छायावाद के चतुष्ट्य आधार स्तंभों में कवयित्री के रूप में महादेवी का विशेष स्थान है। कविवर पंत ने महादेवी को 'छायावाद की नवनीत' कहा है साथ ही छायावाद की सशक्त कवयित्री स्वीकार करते हुए उनका कथन है– 'महादेवी जी ही छायावादियों में एकमात्र वह चिरंतन भाव–यौवना कवयित्री हैं,जिन्होंने नए युग के परिप्रेक्ष्य में राग तत्व के गूढ़ संवेदन तथा राग मूल्यों को अधिक मर्मस्पर्शी, गंभीर, अंतर्मुखी तीव्र, संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है।'[1]

काव्य के साथ गद्य के क्षेत्र में भी महादेवी की विशेष पकड़ है। महादेवी सर्वप्रथम कवयित्री रहीं हैं। अल्प वय से ही कविताएं करने लगी। महादेवी के सृजनात्मक व्यक्तित्व पर पारिवारिक वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा। पिता श्री गोविंद प्रसाद वर्मा,भागलपुर(बिहार) में प्राध्यापक थें साथ ही प्रतिष्ठित कवि भी। माता श्रीमती हेमरानी देवी विदुषी, भक्त प्रवण व कलानुरागिनी थीं। महादेवी के ननिहाल का वातावरण भी साहित्यिक व धार्मिक रहा है उनके नाना ब्रजभाषा के कवि व अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति के थें। महादेवी का बाल्यकाल साहित्यिक, सांस्कारिक, धार्मिक व सात्विक वातावरण में बीता जिसका गहन प्रभाव उनके व्यक्तित्व व रचनाओं में दिखलाई पड़ता है। डॉ. क़ामिल बुल्के का कथन है–'भारतीय स्वाभिमान जितना सच्चा और स्वाभाविक है,उतना ही विवेकपूर्ण और प्रगतिशील भी है।नवीन विचारों को अपनी प्रखर बुद्धि की कसौटी पर कसना,खरे उतरने पर उन्हें प्राचीन भारतीय साँचे में डालना तथा निर्भीकतापूर्वक अपनाना यह क्षमता मैं महादेवी जी के शक्तिशाली व्यक्तित्व का अनिवार्य गुण मानता हूँ।[2] महादेवी की काव्य–यात्रा की शुरूआत ब्रजभाषा से होती है बाद में खड़ी बोली में। खड़ी बोली में रचित इनकी पहली कविता 'दीया' है। 'नीहार' (1930 ई०) सर्वप्रथम कविता संग्रह है तत्पश्चात् 'रश्मि'(1932 ई०) 'नीरजा'(1935 ई०) 'यामा'(1940 ई०) 'दीपशिखा' (1942 ई०) 'सप्तवर्णा'(अनुदित काव्य ग्रंथ) 'हिमालय' (संपादित काव्य–संकलन) 'संधिनी' (काव्य–गीत संकलन)।

वेदना और करुणा की कवयित्री के रूप में महादेवी जानी जाती हैं उनके काव्य में वेदना,करुणा और दुःख का समावेश है। यद्यपि वेदना का पर्याय करुणा और दुःख है। महादेवी ने इन शब्दों का प्रयोग भिन्न– भिन्न भावाभिव्यक्ति के रूप में किया है। 'वेदना' का भाव महादेवी के काव्य में प्रणय वेदना के रूप में निहित है, करुणा सांसारिक दुःख में और दुःख को उन्होंने स्वयं से जोड़ा है। महादेवी का कथन है –दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है।.....मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं–एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में जकड़ी हुई असीम चेतन का क्रंदन है।'[3]

महादेवी के काव्य में 'वेदना' प्रणयी वेदना के रूप में निहित है इस प्रणय वेदना का आलम्बन लौकिक न होकर अलौकिक है।अलौकिक होने के कारण उसकी सत्ता सर्वत्र प्रकृति में व्याप्त है,उस प्रियतम से मिलनाकांक्षा की आस से ही उनका हृदय, मन पुलकित हो उठता है– पुलक–पुलक उर, सिहर सिहर तन।/आज नयन आते क्यों भर भर।।

महादेवी के प्रणयीवेदनामूलक गीतों में मिलन का उल्लास,प्रतीक्षा और विरह का निरूपण है– हे नभ की दीपावलियां, तुम पल भर को बुझ जाना।/मेरे प्रियतम को भाता है,तम के पर्दे में आना।।[4]

*** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।**

'वेदना' महादेवी को अत्यंत प्रिय है इसकारण वेदना–भाव के लिए 'मधुर' 'मधुमय' आदि विशेषणों का प्रयोग करती हैं– मेरी मधुमय पीड़ा को कोई पर ढूंढ न पाये। वेदना की स्रोतस्विनी महादेवी के हृदय में अविरल प्रवाहित है। जिस प्रकार सिंधु की गहराई का पता लगाना मुश्किल है उसी प्रकार महादेवी के अन्तस्थल में वेदना की अतिशय गहनता है। वेदना रूपी दीपक के सतत् प्रकाशित रहने की वे कामना करती हैं– मधुर –मधुर मेरे दीपक जल/युग–युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल/प्रियतम का पथ आलोकित कर।

प्रेम की सच्ची कसौटी वेदना है,विरह है। यह विरह वेदना कबीर के काव्य में भी है। कबीर की विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम से मिलने को कितनी अधीर है– इस तन का दीवा करौं,बाती मेल्यूं जीव।/लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखौ पीव।।

यही विरह मीरा के काव्य में सर्वात्मभाव से समाहित होकर उन्हें प्रियतम का दीवाना बना देती है–' हे री मैं तो प्रेम दीवाणी मेरो दरद न जाणे कोय।' प्रसाद के काव्य में यह असीम वेदना आंसू बनकर प्रवाहित है– जो घनीभूत पीड़ा थी,मस्तक में स्मृति सी छाई।/दुर्दिन में आंसू बनकर,यह आज बरसने आयी।।

महादेवी अपनी व्यग्र वेदना को दुःख की व्यापक बदली के रूप में व्यक्त करती है,उनकी कविताओं से यह भी बोध होता है कि महादेवी को अमरत्व से ज्यादा नश्वरता से प्रेम है– मैं नीर भरी दुःख की बदली/..... /विस्तृत नभ का कोई कोना/मेरा न कभी अपना होना/परिचय इतना इतिहास यही/उमड़ी कल थी मिट आज चली।।

महादेवी ने वेदना को हृदय के अंतराल में बसा लिया था और इस अंतराल में ही उन्हें अपने अगोचर प्रियतम के दर्शन होते हैं।महादेवी को कभी भी मिलन की आस नहीं रही है बल्कि विरह रूपी प्रेम को ही अपने जीवन में रचा बसा लिया है उसे अपनी काव्य वाणी द्वारा अमरता प्रदान की है। उनकी वेदना अपनी सहज विवृत्ति में विश्व वेदना सी बन गयी है। महादेवी के काव्य में चिर स्थायी वेदना को देखकर पंत जी का कथन है–'महादेवी जी के काव्य का सर्वप्रमुख तत्त्व वेदना,वेदना का आनंद,वेदना का सौंदर्य, वेदना के लिए आत्मसमर्पण है वह तो वेदना के साम्राज्य की एक क्षत्र साम्राज्ञी है और कोई सुख उन्हें आत्म–विस्मृतियां, आत्म तन्मय होने को नहीं चाहिए। सुख तो क्षणजीवी है,वेदना ही चिरस्थायी, चिरव्यापी एवं चिर स्पृहरणीय है।'

महादेवी काव्य की परिधि वेदना के पश्चात करूणा की है। वे वेदना और करुणा दोनों की समीपता और सानिध्य चाहती हैं उनका कहना है हमारे असंख्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक नहीं पहुँचा सके,किंतु हमारा एक बूंद आंसू भी जीवन को अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर जाता।मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है,परन्तु दुख को सबमें बांटकर। विश्व जीवन में अपने जीवन को,विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार की जलबिंदु समुद्र में मिल जाता है,कवि का मोक्ष है। 5

महादेवी का हृदय असीम करुणा से ओत प्रोत है यही करुणा उन्हें दूसरों के दुख से द्रवीभूत करती है। लोक कल्याण की भावना से अभिप्रेत उनका सम्पूर्ण जीवन दूसरों के दुख को दूर कर उन्हें शांति प्रदान करने के लिए संकल्पित है। महादेवी का हृदय न केवल मानवीय दुख से बल्कि पशु –पक्षियों के दुख की कल्पना मात्र से द्रवित,संवेदित हो जाया करती उनके हृदय में करुणा का पारावार अविरल गति से उमड़ता रहता है।उन्हें यह करुणा सहज रूप में उपलब्ध हुई है उनका कहना है– बिन मांगे तुमनें दे डाला,करुणा का पारावार मुझे। चिर सुख –दुःख के दो पार मुझे, क्यों अश्रु न हो श्रृंगार मुझे।।

वेदना, करुणा महादेवी की कविता के बीज शब्द हैं।महादेवी अपने साहित्य संसार में जीवनपर्यंत पीड़ा,करुणा को तलाशती रहीं– विरह का जलजात जीवन ,विरह का जलजात/वेदना में जन्म,करुणा में मिला आवास।।

डॉ कुमार विकल का कहना है कि वेदना महादेवी के काव्य का अर्थ है और करुणा उसकी इति।अतः करुणा ही इनके दुःखवाद का मेरुदंड है तथा इनकी वेदना का चरम रूप भी।[6] महादेवी के काव्य की एक बड़ी विशिष्टता है कि वह दुःख का पर्यावसान नहीं चाहती।इस कारण वह पीड़ा में प्रियतम और प्रियतम में पीड़ा को ढूंढ़ती हैं– पर शेष नहीं होगी यह ,मेरे प्राणों की पीड़ा।/तुमकों पीड़ा में ढूंढा ,तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।।

महादेवी का दुखवाद किसी काम–कुंठा की प्रतिक्रिया न होकर वह एक दर्शन एवं जीवन दर्शन की पद्धति के रूप में है। नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा में महादेवी का जीवन दर्शन, वेदना, करुणा, आध्यात्मिक साधना एवं भव्य कल्पना का का उत्कृष्ट रूप दिखलायी पड़ता है। महादेवी के काव्य में रहस्यानुभूति की व्यापक व्यंजना हुई है। रहस्यानुभूति के कारण ही उनके काव्य में जिज्ञासा, कौतूहल, विस्मय, अद्वैत भावना, प्रणयानुभूति, विरह की तीव्रता देखी जा सकती है। महादेवी ने रहस्यात्मक संकेतों के द्वारा अव्यक्त, अगोचर चेतन सत्ता का चित्रण किया है– अवनि अम्बर की रूपहली सीप में/तरल मोती से जलधि जब कांपता /तैरते घन मृदुल हिम में पुंज से/ज्योत्सना के रजत पारावार में/सुरभि वन जो थपकियां देता मुझे/नींद में उच्छ्वास सा वह कौन है ?

साधना में रत महादेवी जब उच्च स्थिति में पहुँच जाती हैं तब उन्हें अपने हृदय में ही उस परम तत्व के अस्तित्व का बोध होता है और यहीं पर द्वैत अद्वैत में सामंजस्य स्थापित होता है– क्या पूजन क्या अर्चन रे !/उस असीम का सुंदर मंदिर,मेरा लघुतम जीवन रे,/मेरी श्वासें करती रहती,नित प्रिय का अभिनंदन रे।।

महादेवी की प्रकृति परक रचनाओं में मानवीय भावनाओं के आरोपण के साथ दार्शनिक विचारों, आध्यात्मिक अनुभूतियों, प्राकृतिक सौन्दर्यानुभूति का चित्रण मिलता है,उषाकालीन प्रकृति सौंदर्य का चित्रण करती हुई कहती हैं– रूपसि तेरा घन केश –पाश/श्यामल–श्यामल कोमल कोमल/लहराता सुरभित केश –पाश।

प्रभात वर्णन के पश्चात कवयित्री की सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति दृष्टि वसंत रजनी कविता में दिखलायी पड़ती है। रजनी के सौंदर्य का निरूपण अभिसारिका नायिका के रूप में प्राकृतिक उपकरणों के द्वारा करती हैं– धीरे–धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी/तारकमय नव वेणी बंधन/शीश–फूल कर शशि का नूतन/रश्मि वलय सित घन अवगुंठन/मुक्ताहल अभिराम बिछा दे/चितवन से अपनी/पुलकती आ वसंत रजनी।

प्रकृति मानव के सुख दुख की सहचरिणी हैं इसकारण उनकी प्रकृति मानवीय पीड़ा को देखकर आंसू बहाती है तो दूसरी ओर मानव के हर्ष –उल्लास से प्रमुदित भी होती है– आंसू बन –बन तारक आते,सुमन हृदय में सेज बिछाते/...../विधु की चांदी की थाली,मादक मकरंद भरी सी/जिसमें उजियारी रातें ,लुटती घुलती मिसरी सी।।

महादेवी का संवेदनशील हृदय न केवल व्यक्तिगत सुख–दुख तक सीमित है बल्कि समष्टिगत है। समाज के शोषित, पीड़ित, जनसमुदाय की दयनीयता उनकी करुणा में समाहित है।विश्व के दुख, चीत्कार से उनका हृदय संवेदित है– कह दे माँ क्या अब देखूं/देखूं खिलती कलियां या प्यासे सूखे अधरों को/तेरी चिर यौवन सुषमा या जर्जर जीवन देखूं/देखूं हिम हीरक हँसते हिलते नील कमलों पर/यह मुरझायी पलकों से झरते आंसू कण देखूं।।

डॉ. इंद्रनाथ मदान का कहना है–'महादेवी के काव्य में सामाजिक बंधन से मुक्ति की आकांक्षा का स्वरूप प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होने के कारण रहस्यात्मक है यदि उसके प्रतीक विधान का सूक्ष्म विश्लेषण और इन प्रतीकों का विवेचन तत्कालीन सामाजिक परिवेश से किया जाए तो महादेवी के रहस्यवाद का लौकिक स्वरूप तथा वेदनावाद का सामाजिक पक्ष स्पष्ट हो सकता है,जो उनके काव्य के सही मूल्यांकन के लिए वांछित एवं अपेक्षित है। महादेवी की काव्यात्मक संवेदना में वेदना,करुणा,विरह के साथ सामाजिक

यथार्थता के भी दर्शन होते हैं।उनकी कविताएं अकर्मण्यता और आलस्य को त्याग कर नवजीवन, नवनिर्माण की बात करती हैं,मानव जाति को जागरण का संदेश देती हैं–

चिर सजग आंखे उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कंप हो ले,
या प्रलय के आंसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले ;
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत–शिखाओं में निठुर तूफान बोले
पर तुझे है नाश पथ पर चिन्ह अपने छोड़ आना।
जाग तुझको दूर जाना !

छायावादी युग को राष्ट्रीय जागरण काल कहा जाता है। इस युग के कवियों ने राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक चेतना व देशभक्ति के गीत गाए। प्रसाद के समूचे साहित्य में राष्ट्रीयता निहित है महादेवी का काव्य भी इससे अछूता नहीं है उनकी राष्ट्रीय जागरण की चेतना 'प्रथम आयाम' कविता में देख सकते हैं–

हमने कारागार बनाया
बेड़ी–हथकड़ियों के गहने हमने हंस– हंस के पहने
काली फाँसी की डोरी को
हमने तो जयमाल बनाया।।

महादेवी के काव्य में अपने युग की समस्त चेतना और विशिष्टताएं विद्यमान हैं। गणपतिचंद्र गुप्त के शब्दों में–महादेवी का काव्य केवल काव्य के रूप में नही सत्य के बोध, दर्शन की अभिव्यक्ति, भावना के औदात्य, जीवन के सौंदर्य एवं विश्व के कल्याण की दृष्टि से भी महान है।

संदर्भ–सूची :–

1. प्रतिनिधि आधुनिक कवि– संपादक, डॉ चंद्र त्रिखा, प्रकाशक–हरियाणा साहित्य अकादमी,पंचकूला, पृ.सं–111।
2. वहीं से।
3. महादेवी–संपादक, इंद्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं–63।
4. महादेवी नया मूल्यांकन–गणपति चंद्र गुप्त, लोकभारतीय प्रकाशन,पृ. सं. –218।
5. महादेवी, संपादक, इंद्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन पृ.सं.–61–62।
6. प्रतिनिधि आधुनिक कवि, संपादक– डॉ चंद्र त्रिखा, प्रकाशक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, पृ. सं.–116।

आतंकवाद के संदर्भ में रचनाकार का दायित्व-बोध

डॉ. मंजुनाथ एन. अंबिग*

यदि गौर से देखा जाए तो साहित्य का उद्‌भव सामाजिक जीवन के बीच ही होता है और इसी कारण इन दोनों का घनिष्ठ एवं अनिवार्य संबंध भी हैं। साहित्य तथा सामाजिक जीवन एक–दूसरे को प्रभावित तथा अनुकूलित करते हैं। इसमें कोई हैरत नहीं कि साहित्य और सामाजिक जीवन को इस सापेक्षता तथा उनके पारस्परिक संबंधों को इस अहमियत को लेकर विशेष विवाद कभी नहीं उठा या उठाया गया। यह ही है कि जो रचनाकार सामाजिक जीवन को गहराइयों में जितना ही अधिक उतर सकने की क्षमता रखता है, उसकी रचना के औज़ार उतने ही तीक्ष्ण और मारक होते हैं तथा उसको रचना उतनी सी अधिक जीवंत होती हे। रचनाकार यदि एक स्तर पर समाज से प्रभावित होता है, तो दूसरे स्तर पर वह समाज को भी प्रभावित करता है, उसे एक नया रूप देता है। यहाँ तक कि रचनाकार का इन्द्रिय–बोध, भाव, कल्पना, विचार, भावना, बुद्धि जैसी शक्तियाँ किन्हीं–न–किन्हीं अंशों में सामाजिक जीवन को उपज़ हैं और उससे प्रेरित तथा संचालित होती हैं अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हुए भी साहित्यकार को भावनाओं का संसार निरंतर बाह्य जगत को घटनाओं से प्रतिध्वनित और झंकृत होता है।

यूँ तो साहित्यकार हर युग में अन्याय, अत्याचार, शोषण, अमानवीय कृत्यों, संकटकालीन एवं युद्ध स्थितियों के विरुद्ध अपना क्रान्तिकारी तथा विद्रोही स्वर बुलंद करता रहा है। लेकिन गत कुछ दशकों से ग्लोबव्यापी आतंकवाद, जटिल सामाजिक परिस्थितियों, विसंगतियों, विद्रूपताओं, कुव्यवस्था एवं स्तरहीन राजनीति के माहौल में साहित्यकार की क्रान्तिकारी, जुझारू और विद्रोही अन्तःशक्ति को पहचानने तथा इसे क्रियान्वित करने को जितनी आवश्यकता है, अपनी अपराजेय अन्दरूनी शक्ति के बल पर साहित्य मनुष्य को आज़ादी और सांस्कृतिक मुक्ति का परिचायक बना। निर्भीक साहित्यिक कृतियों से प्रत्येक राजनीतिक नागरिक भयभीत होता रहा है और होता भी है, चाहे वह सत्ता के भीतर हो या बाहर। एक सच्चे एवं निडर साहित्यकार में समझौतों, समन्वयों, यथास्थितियों, सहज एवं सुरक्षित मार्गों के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती। भयानक खतरों को उठाए बिना वह अभिव्यक्ति के खतरे को भी नहीं उठा सकता है। भयंकर हिंसा, दहशतावादी गतिविधियों, राजनीतिक चालों एवं षड्यंत्रों के विरुद्ध यदि कोई एक वर्ग दृढ़ संकल्प–शक्ति का प्रदर्शन कर सकता है तो वह, निस्संदेह, रचनाकारों का समूह ही है।

इतिहास गवाह है कि भारत के संदर्भ में आतंकवाद के विभिन्न रूपों एवं लक्षणों को यात्रा के साथ यहाँ के साहित्यकार को दायित्व चेतना को साहसपूर्ण खरी अभिव्यक्ति भी बराबर गतिमान रही है, भले ही उसने व्यंग्यात्मक, विद्रोही, क्रान्तिकारी, आक्रोशमयी, अस्वीकृतिपरक एवं निषेधमूलक मनोमुद्राओं को अख्तियार किया है। तवारीख़ के एक सुदूर पन्ने से मालूम पड़ता है कि स्वतंत्रता पूर्व भारत में ठगों (लुटेरों) का एक दल माँ काली को प्रसन्न करने के लिए राहगीरों को ज़बरन पकड़कर, उनकी बलि चढ़ाकर लोगों में भयानक आतंक फैलाया करते थे। बट्रैन्ड रसेल ने अपने शोधपरक निबंधों (अनपापुलर ऐसेज़' में कई स्थानों पर इन आतंकमयी घटनाओं के संदर्भ उकेरे हैं। सन् 998 से 1030 के बीच भी आतंकवाद के लक्षण मिलते हैं, जब महमूद ग़ज़नवी की शासन सत्ता उत्कर्ष पर थी। गज़नी के इस बादशाह ने अपने शासन काल में भारत पर 17 बारह हमले किए। यह जानना रुचिकर लगेगा कि उसके पास धर्मयोद्धाओं को एक अलग फौज भी थी, जिसका मकसद लूटमार करना, लोगों को आतंकित करना तथा इस्लाम का प्रसार करना था। मनोवैज्ञानिक कोण से देखा जाए तो महमूद गज़नवी और उसके धर्मयोद्धाओं में आतंकवादी तत्व मौजूद था। ताज्जुब नहीं कि सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण के समय उसका किसी ने विरोध तक नहीं किया था।

उसके बाद मुहम्मद गौरी ने भी आतंकवादी शासन जारी रखा। उसका उद्‌देश्य भी लोगों में दहशत फैलाना तथा उत्तर भारत के समृद्ध नगरों में लूटपाट करना था। ये लुटेरे अपनी योजनाबद्ध चालों से कमज़ोर जगहों पर अपना निशाना दाग़ते थे, जिसके सूत्र आधुनिक आतंकवादियों को रणनीतियों में भी पाए

*** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नई।**

जाते हैं। हमें नहीं लगता कि महमूद गज़नवी और मुहम्मद गौरी को आतंकवादियों के विरुद्ध तत्कालीन किसी भारतीय रचनाकार ने कोई मारक चुनौती दी हो। विरगाथा काल एवं रीतिकाल के कवि तो अपने आश्रयदाताओं के यशोगान, के कटघरे से बाहर तक नहीं निकले। इब्राहिम लोदी और बाबर को आतंकवादी गतिविधियों के खिलाफ कबीर और गुरु नानक की संघर्ष तथा समाज सुधार चेतना अवश्य अपना क्रान्तिकारी रुख अपनाती है। धर्म परिवर्तन के नाम पर औरंगज़ेब के अत्याचार, अन्याय एवं दहशत के विरुद्ध लिखे गए गुरु गोविन्द सिंह के 'जफरनामा' (फारसी में लिखा गया लंबा पत्र) को पढ़कर बादशाह औरंगज़ेब को रूह काँप उठी थी।

ब्रिटिश शासन काल में भी अपने ढंग का आतंक छाया रहा, जिसके प्रमाण हमें 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, 1905 में बंगाल विभाजन के समय तथा 14 अप्रैल, 1919 को जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड और ऐसी ही अन्य कई दर्दनाक एवं खौफभरी घटनाओं से स्वतः मिल जाते हैं। भारत–पाक विभाजन तो मानव इतिहास में आतंकमयी रक्तरंजित इतिहास है। ब्रिटिशकालीन शासन को दहशतवादी गतिविधियों एवं अमानवीय कृत्यों के विरुद्ध कई रचनाकारों ने अपनी लेखकीय दायित्व को बखूबी निभाया। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता, व्यंग्य, आक्रोश एवं क्रान्ति के स्वरों को बहुलता के बावजूद, ये रचनाएँ अंग्रेज़ी को धर्रा देती थी। इस संदर्भ में प्रहलाद पांडेय शशि को 'तूफान', अभिराम शर्मा को मुक्त संगीत', रसिक को 'खून के लीटे', लक्ष्मी चन्द्र को भरत माता को पुकार', द्वारका प्रसाद की 'असहोय फाग', पाण्डेय हीरालाल व्यग्र की 'व्यग्र बम गोले', 'चकोर को बिजली', प्रेमचन्द की 'सोज़े वतन', तथा इन जैसे कई अन्य रचनाकारों ने भी अंग्रेज़ी शासक को दमनकारी नीतियों, हिंसात्मक कारवाइयों एवं अत्याचार के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाते हुए लोगों को सुप्त चेतना को जाग्रत किया। निराला, मुक्तिबोध, धूमिल और प्रगतिशील धारा के अन्य कई रचनाकार अपने सामाजिक एवं साहित्यिक सरोकारों के प्रति सजग रहे।

भारतीय परिदृश्य को मानिंद, इस स्थल पर आतंकवाद के वैश्विक फैलाव एवं प्रभाव को जानना भी प्रासंगिक होगा। प्रमाण साक्षी हैं कि 19वीं शताब्दी के आते ही आतंकवाद राजनीतिक हत्या के रूप में मुख्य ग्लोबव्यापी विषय एवं घटना बन गया। इस काल के आतंकवादियों में अल्प संख्या में अराजकतावादी ही थे, जिनको स्वतंत्र कार्यवाइयाँ थीं। उन्होंने संबंधित समूहों को सलाह एवं सहयोग के बिना 1981 से 1912 तक 11 शासकों की हत्या को थी। इनमें अमेरिका के दो राष्ट्रपति (जेम्स गारफील्ड और विरियम मेकीनले), फांस का राष्ट्रपति सादी कारनोट और, :स का ज़ार एलेग्ज़ेन्डर द्वितीय जैसे दिग्गज–शासक भी शामिल थे। यह कहना लगभग सही है कि 20वीं सदी के महायुद्धों, शीतयुद्धों, आतंकवादी गतिविधियों एवं 21वीं सदी के आरंभिक दशक तक विकसित आतंकवाद से जितनी भारी संख्या में नरसंहार हुआ है, उसका कुल योग पूर्व की शेष शताब्दियों के योग से कहीं ज़्यादा है। टॉमस मान और ब्रेख्त जैसे लेखकों को भले ही तत्कालीन व्यवस्था को चौखटों से बचकर दूसरे देशों में शरण लेनी पड़ी, लेकिन उनको रचनाएँ आतंकवाद और शासन व्यवस्था को बराबर चुनौती देती रहीं सार्त्र ने भी बहुत पहले कह दिया था, "अब समय आ गया है कि ऐसी पद्धतियों के विरुद्ध क्रान्तिकारी हिंसा का प्रयोग किया जाए जो हिंसा पर प्रतिष्ठित हैं।" सवाल खड़ा है कि हिंसक के प्रति हिंसा से विरत रहना क्या सह–अपराधी होना नहीं है ? सवाल यह भी जवाब माँगता है कि आततायी के विरुद्ध उत्पीड़ितों को हिंसा का विरोध करना क्या विद्रोही चुनौती को कमज़ोर बनाना नहीं है ?

आज भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व स्तर पर आतंकवाद मानव–जाति का शत्रु बनकर उभरा है। आतंकवादी समूहों की बुद्धि का लक्ष्य व्यापक विनाश और मनुष्यता को बर्बाद करना है। यही कारण है कि आज आतंकवाद विश्व भर में फैलकर एक अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग बन गया है। हाल ही के वर्षों में भारत तथा विश्व के अन्य देशों में हुए बम विस्फोटों एवं प्रायोजित आतंकवादी हमलों (9/11 न्यूयार्क और 26/11 मुंबई) ने दुनिया को नींद से जगा दिया है। अतःमानवीय जीवन को आतंक से भयभीत करने और मनुष्य से उसका व्यक्तित्व छीनकर उसे कुरूप एवं असहाय कर देने में जो अमानवीय कृत्य हो रहे हैं, उनके प्रति हर बुद्धिजीवी तथा साहित्यकार का चिंतन होना लाज़िमी है। एक संवेदनशील एवं मनुष्यता के बुनियादी मूल्यों के प्रति सजग और निष्ठावान साहित्यकार का दायित्व इस संबंध में और भी बढ़ जाता है।

यहाँ फिर एक झकझोरने वाला प्रश्न उठता है कि मानववादी विचारकों और मसीहाओं की एक सुदीर्घ और शानदार परंपरा के बावजूद दुनिया से आदमी की यातना, हिंसा, हत्याएँ, जुल्म और आततायियाँ क्यों पूरी तरह निःशेष नहीं हो सकी हैं और क्यों आज मनुष्य अपने स्वतंत्र अस्तित्व एवं सुरक्षा भाव के लिए पहले से अधिक बेचैन है? इस प्रश्न के बारे में बिलकुल साफ दृष्टिकोण यह है कि आदमी को यातना एवं हिंसा से मुक्त करने के लिए, उसको आदमीयत को बुनियादी अर्थवत्ता देने के लिए, एक बेहतर मानवीय दुनिया के लिए छोड़ी गई उसकी लड़ाई को तर्कसंगत परिणामों तक पहुँचाने के लिए आज तक जो प्रयास हुए, उनमें से अधिकांश या तो मात्र विचारों अथवा नैतिक सदिच्छाओं तक ही सीमित रहे या फिर वैयक्तिक स्तर पर किए गए महान बिलदानों में ही ऐतिहासिक अध्याय बन कर रह गए। बड़े से बड़े सदाशयी और क्रान्तिकारी विचार महज विचार बनकर ही रह गए, एक जीवित और जाग्रत कर्म के रूप में अपने को चरितार्थ नहीं कर सके।

यह सच्चाई भी गौरतलब है कि इधर के कुछ रचनाकार स्वयं ही निराश एवं अनास्थाओं के कुहासे में भटकते दिखाई देते हैं। ऐसा होना उनको बौद्धिकता, सृजनात्मकता, लेखकीय ऊर्जा और परिवेशगत सचेतना को पराजय है। उनकी रचनाएँ भी मात्र प्रचार एवं अरण्य क्रन्दन बनकर रह जाती है, क्योंकि राजनीति के अनुगमन का अर्थ है साहित्य की विशिष्ट मर्यादा को खो देना। यह चौकाने वाला तथ्य हो सकता हे कि इधर का श्रेष्ठ साहित्य को दस प्रतिशत से अधिक नहीं होता, नब्बे प्रतिशत साहित्य नाम से, सिफारिश से और निहित हितों से छपता तथा बिकता भले ही हो, वह साहित्य होता नहीं है। जो साहित्यकार या लेखक श्रेष्ठ साहित्य को मर्यादा से परिचित हैं, वे अपनी रचनाओं में समसामयिक समस्याओं और सामाजिक तत्वों–तथ्यों का समावेश करते हैं। आतंकभरी स्थितियों से भी वे टकराते–जूझते हैं। यही बिन्दु उनके साहित्यिक दायित्व को साक्ष्यांकत करता है।

एक अन्य साहित्यिक यथार्थ यह भी है कि 1960 के बाद कई रचनाकारों ने महसूस किया है कि सामाजिक दायित्व एवं लेखकीय सरोकार को भावना निरर्थक है, बेमानी है और बेमतलब है। कदाचित विघटन और अराजकता को देखकर ही कैलाश वाजपेयी ने कहा था, "सिल को तरह गिरी है स्वतंत्रता, पिचक गया है पूरा देश।" वर्तमान समाज व्यवस्था एवं आतंकमयी परिवेश के प्रति एक वर्ग के रचनाकारों के मन में किसी प्रकार का प्रतिक्रियात्मक स्वर पैदा नहीं होता है। वे समझते हैं कि आज को विसंगत व्यवस्था में किन्हीं रंगीन कल्पनाओं के सहारे नहीं किया जा सकता। विजय मोहन सिंह, रघुवीर सहाय और धूमिल बहुत पहले ही देश की राजनीतिक स्थितियों, विसंगतियों, विद्रूपताओं और विघटनों पर तीखे व्यंग्य कर चुके हैं। चन्द्रकान्त देवताले तो यहाँ तक कह देते हैं, "एक अजीब विसंगति और अराजकता के परिवेश में झूठी कविता, नकली मानवता और भ्रष्ट नैतिकता बेनकाब हो गई है।" श्याम परमार, सौमित्र मोहन, नरेन्द्र धीर और जगदीश चतुर्वेदी जैसे जिम्मेदार कवियों का दृष्टिबोध, विसंगति बोध से आगे बढ़ता ही नहीं है। राजीव सक्सेना, श्रीराम शुक्ल, प्रयाग नारायण त्रिपाठी, सतीश जमाली, मोना गुलाटी आदि को कविताओं में शून्यता, निराशा, अंधेरा अनास्था बोध अधिक व्यक्त हुआ है। जबकि भारतीय एवं वैश्विक आतंकमयी परिदृश्य को चुनौतियाँ सामने खड़ी हैं। कुछ न कर सकने को 'विवशता' और इस वर्तमान परिवेश से (अलग' होते जाने की प्रक्रिया में कोई भी रचनाकार रचना नहीं करता, मात्र उद्घाटन ही करता है। ऐसे रचनाकार साहित्य के अंदर परमाणु युग नहीं ला सकते।

लेकिन यह भी सत्य तथ्य है कि हिन्दी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगला, असमिया एवं द्राविड़ भाषाओं के रचनाकारों ने वर्तमान समाज व्यवस्था, राजनीतिक साजिशों एवं आतंकवादी चुनौतियों के विरुद्ध अपनी कहानियों, उपन्यासों एवं विशेषकर कविताओं में तीखे स्वर व्यंजित किए हैं। कई काव्य रचनाएँ तो अमानवीयता के विरुद्ध संघर्षरत जनता के हाथों में एक नए और तेज़ हथियार को तरह हैं। कुमार विकल कविता को अपने समय और समाज के पीड़ित मनुष्य के प्रति नैतिक और मानवीय ज़िम्मेदारी से जोड़कर देखते हैं। उन्हें लोगों की दहशतभरी जिंदगी, मनुष्य विरोधी स्थितियों और उसकी यातनाओं को चिता है, तो मनुष्य के दुःख–दर्द से गहरी सहानुभूति भी है। उनके "निरुपमा दत्त मैं बहुत उदास हूँ संग्रह को अनेक कविताओं में अस्सी और नब्बे के दशकों में पंजाब में फैले आतंक और दहशत के घने अंधेरे के विभिन्न रूपों

का निर्भीक चित्रण है। यह एक ऐसा खाड़रूवाद (आतंकवाद) का लीला लेनेवाला समय था, जिसमें सामाजिक जीवन ठहर गया था। कई संपादकों एवं शिक्षाविदों को हत्या को गई और कई धमकियों को दहशत से मुरझाए पड़े रहे। लेकिन कुमार विकल का आतंकवाद के विरुद्ध चेतावनी भरा मारक स्वर बुलंद होता रहा– 'यह जो सड़क पर खून बह रहा है/इसे सूँघकर तो देखो/और पहचानने की कोशिश करो/यह हिन्दू का है या मुसलमान का/किसी सिख का या ईसाई का /किसी बहन का या भाई का। (मैनेजर पाण्डेय (सं), 'संपूर्ण कविताएँ' (कविता–संग्रह), 'पहचान', पृ.184)

कुमार विकल का मानना है कि मनुष्य अपनी संभावनाओं एवं अन्तःशक्ति को जाग्रत करके ही निज हित तथा देश हित के लिए सार्थक लड़ाई लड़ सकता है। सामाजिक व्यवस्था एवं परिवेश चाहे कितना भयावह तथा कठोर हो, निरंतर जागरूक रहने, जूझने और संघर्ष को राह पर चलने से ही मुक्ति संभव है– 'जनता एक बरगद है/जिसको घनी छाँह में /सुरक्षा–बोध होता है /जनता एक जंगल है/ जिसमें कोई 'प्रथम पुरुष'/क्रान्ति बीज बोता है /जनता एक बहुमुखी तेज़ हथियार है /जो अकेली लड़ाइयों को आपस में जोड़ता है /दुश्मन के व्यूह चक्रों को तोड़ता है।'/(मैनेजर पाण्डेय (सं.) (एक छोटी सी लड़ाई' (काव्य संग्रह), 'मिथक', पृ. 26–27) सुरजीत रामपुरी को कविता का सरोकार समकालीन पंजाब संकट के साथ है। उनको कविताओं में जीवन और समाज के नव–निर्माण, उच्च सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों को रक्षा करने को अद्‌भुत शक्ति छिपी है। वे अपने दायित्व का निर्वाह सच्चाई एवं सजगता से करते हैं– 'वृद्धों का होश किधर जा रहा है ?/युवाओं का जोश किधर जा रहा है ?/दुश्मनों को न पहचान/रो रहा है वर्तमान'/(सुरजीत पात्र (सं.), 'सदी की शामें' (काव्य संग्रह), 'रो मेरे पंजाब', पृ.182)

मौजूदा परिवेश के प्रति सजग और कटिबद्ध संतोख सिंह धीर को कविता युग चेतना को आन्दोलित करके मानवीय तत्वों को जीवंत तथा गतिशील बनाती है। वे अपनी अभिव्यक्ति और गरज को समाज की और पाठक की गरज बनाते हैं। वे सामाजिक चेतना से संपृक्त होकर उस समय और स्थिति की बात करते हैं, जिसमें मनुष्य साँस ले रहा है– ^बहुत गलत किया हमने/जो ज़ार को मारा /क्योंकि फिर स्वयं हमें /ज़ार बनना पड़ गया' /(सुरजीत पात्र (सं.), सदी की शामेंठ (काव्य–संग्रह), 'बहुत गलत किया हमने' पृ. 145) संजीव झांजी ने गत दशक के दौरान घटित लगभग सभी घटनाओं को अपनी काव्य सोच में जगह दी है। तकरीबन हर विषय को उन्होंने छुआ है। पंजाब में आतंकवाद के समय घटित त्रासदी का उलाहना कवि ने खुदा को पैने स्वर में दिया है– 'रब्बा यदि तू है तो क्या तू अंधा है ?/जो तू देखता नहीं होते कल्लेआम को, /यहाँ तड़प रही इंसानियत की लाश को, /बढ़ रहे हैवानों को और मर रहे इंसानों को,/क्या यह सब कुछ तुम्हें दिखता नहीं?/बात तो सही एक बार ?'/('रब्ब कातिल है' (काव्य–संग्रह), 'रब्ब कातिल है', पृ. 55) इसी संग्रह को एक अन्य कविता अमन वाली गली' सुरक्षा–बोध एवं सामाजिक चेतना को विद्रोही स्वर में अभिव्यक्त करती है– 'बन जा तू अमन वाली मंजिल का राही,/छोड़ दे तू करनी पंजाब को तबाही /लाहू को नदियाँ तू जाता है बहाई /अब ला कर निर्दोषों के खून पर मनाही /अच्छा भला बसता था हमारा यह पंजाब /पता नहीं किसने आ नज़र गंदी लगाई /मारकर निहत्थे और बेकसूर लोगों को, /तूने धरती रंगी खून से, शर्मा न आई ?/बता तुझे क्या मिलेगा कर अपनी ही तबाही'/('रब्ब कातिल है' (काव्य संग्रह), 'अमन वाली गली', पृ. 57)

अमेरिका में रहते हुए हरभजन सिंह एक ऐसा प्रवासी कवि है, जो अपनी धरती को कभी नहीं भूलता। उसके बचपन एवं जवानी के अनुभव हमेशा उसके अहसासों में मौजूद रहते हैं और वह इन भावों का प्रकटीकरण बड़ी सहदयता और स्वाभाविकता से करता है। उनको कविता जीवित अहसासों को कविता है। सीधा राह' कविता में कवि आतंकवादियों को नसीहत देता है– 'क्या लेना बन कर आतंकवादी/ना कर लोगों को बरबादी/छोड़ खेलना साथ बंदूकों के/दो कलमें हाथ मलूकों के/डाल खतरे में न आज़ादी/क्या लेना बन कर आतंकवादी'। ('रंगीन महफिल' (काव्य संग्रह), 'सीधा राह', पृ.13)

गंगा प्रसाद विमल की कविता मनुष्य की पक्षधरता को अपना लक्ष्य निर्धारित करती है।एक सजग कवि के रूप में वे उस ताप, दर्द एवं हिंसात्मक कृत्यों को नहीं मानते जिनसे पूरी मानवता प्रताड़ित और त्रस्त–ग्रस्त है। उनकी कई कविताएँ परिवेश को भयावहता और मनुष्य के भीतरी डर को अर्थ संदर्भ देती

हैं। वे बाहर के खौफ और अन्दर के सन्नाटे के प्रति अति जागरूक हैं– 'हत्यारों में केदल/वे ही नहीं शामिल/जिनके साधन विफल हुए थे। /अखबार/बनिये/अध्यापक/कलाकार/ये सब शामिल थे/ इसलिए कि ये अपनी–अपनी /चिन्ताओं में/अपने निर्माण में रत थे। /इन्हीं के भविष्य से/कितने ही अतीत/और वर्तमान टूटे थे। ('कुछ तो है' (कविता–संग्रह), 'भविष्य के लोगो', पृ. 63–64)

समकालीन कवयित्रियों में कात्यायनी को कविता हमारे समय को त्रासदियों, विडंबनाओं और अंधेरे से निरंतर मुठभेड़ करती हैं। यथास्थिति को निर्मम आलोचना और प्रतिगामी शक्तियों का जिद्दी प्रतिरोध उनको कविता में सर्वव्यापी है। बर्बरता के विरुद्ध प्रतिरोध को चीख हे, उनको कविताओं में उनकी कविता लोगों को लहू के सुराग देती है और हत्यारों को सक्रिय विवेक से शिनाख्त करती है– 'मौत को दया पर/जीने से/बेहतर है/ज़िन्दा रहने को ख्वाहिश /के हाथों मारा जाना'/('राख–अंधेरे को बारिश में' (काव्य–संग्रह), 'बेहतर है...' पृ. 42) वे समय के सन्नाटे और कविता के संकट से भी भलीभाँति परिचित हैं। बहिर्जगत और अन्तर्जगत में मानवीय सार तत्व को हिफ़ाजत के लिए वे वर्तमान को बड़ा कठिन एवं जटिल समय मानती हैं– 'जहाँ /निशान थे /दीवारों पर गोलियों के /जीवन था। /हत्या जहाँ हुई थी /वहाँ था /सिर्फ सन्नाटा।/काफी कुछ /उपजा करता है /सन्नाटे से'/'फुटपाथ पर कुर्सी' (काव्य–संग्रह), 'शिनाख्त', पृ.67) इसे सुखद ही कहा जाएगा कि आज को हिन्दी कविता जीवन को वास्तविक स्थितियों के केन्द्र में पूरी तरह से आ गई है, पूर्व का गतिरोध टूटा है। इस संदर्भ में हरनाम शर्मा को कविता मानवीय संकट को ओर संकेत करती हुई आक्रोश की मुद्रा में शस्त्रधर्मी आचरण को अपनाती है। कवि आधुनिक परिवेश में कविता को हथियार को तरह इस्तेमाल करता है– 'व्यवस्था की जब, कविता से ठनती है /तब कविता हथियार बन तनती है /इसकी सभी मात्राएँ झुकती हैं /न फैलती पसरती हैं, बल्कि /सिर चढ़कर तनती हैं।' ('हाँ मैंने ही बाँग दी थी' (काव्य–संग्रह), 'कविता', पृ.18)

कवि चन्द्रकान्त देवताले को सत्ताएँ, संस्थान और संगठन सभी अपाहिज़ लगते है। महिमामय माफियाओं को पहचानना भी कोई मुश्किल बात नहीं है। सब कुछ दिन–दहाड़े, रात–अंधेरे उजागर है। कवि की चिंता है कि असुरक्षा एवं अन्याय के परिवेश में अपने भीतर की संपदा को बचाना लाज़िमी है– 'हम शपथ लेते हैं /हम खून को अंतिम बूँद तक /ज़िन्दा रहेंगे ईमान को तरह /बशर्ते हिम मानव के पटचिह्नों को तरह /दर्शन हो जाएँ ईमान के/आब इक्कोसवीं सदी में घुस जाने के बाद /हम सब कुछ को परदे पर चमकते हुए /दिखाने की शपथ लेते हैं।' ('युवाओं द्वारा शपथ' (कविता) वागर्थ, अक्टूबर 2008, पृ. 24)

कवयित्री कुसुम जैन हिंसा की बोली, इसकी ज्यामिति, इसके इतिहास और भूगोल से अच्छी तरह वाकिफ हैं। हिंसा को हेय मानती हुई, वे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध शांति को स्थापना के लिए कामना करती हैं– 'हिंसा की भाषा /बड़ी सख्त /बड़ी भारी /और ऐंठी हुई होती है /मृत शरीरों को तरह /फिर भी /कोई इसे न दफ़नाता है /न जलाता है।' ('हिंसा' (कविता), वागर्थ, दिसंबर, 2008, पृ.103)

श्याम किशोर सिंह को गवाही के मुताबिक कामा अस्पताल, मुंबई में 26 नवंबर 2008 की आतंकी आक्रमण को रात जन्म लेते शिशु को पुनः गर्भ में धकेल देना पड़ा था। कवि रात्रि के उस समय को नवजात शिशु के भूमिष्ठ होने का उचित समय नहीं मानता, क्योंकि– 'अभी हम आतंको ठिकानों को जगा रहे हैं /दुश्मनों को लजा रहे हैं /अभी हमारी अमेरिका से कानाफूसी चल रही है /कौन जाने कहाँ किसकी दाल गल रही है /आने वाली नस्ल /अभी तो वापस जाओ।'('वापस जाओ' (कविता) वागर्थ, मार्च, 2009, पृ. 87) इसी त्रासद संदर्भ में दिनकर और निराला की तर्ज़ पर कवि प्रसून जोशी भी अपने क्रान्तिकारी और औजस्वी स्वर में लोगों में जागृति को चिंगारी पैदा करता है और उन्हें आतंकवाद का मुकाबला पूरी ताकत और ऊर्जा से करने का आह्वान करता है– 'नहीं आने दूँगा ज़िन्दगी को आसानी से पटरी पर /उतरने दूँगा उसे कीचड़ में, टेढे–मेढ़े रास्तों पे /नहीं सूखने दूँगा दीवारों पर लगा खून/हल्का नहीं पड़ने दूँगा उसे इतना लाचार /इस बार नहीं बनने दूँगा उसका रंग/कि पान की पीक और खून का फर्क ही खत्म हो जाए /इस बार नहीं /इस बार घावों को देखना है /गौर से /थोड़े लंबे वक्त तक /कुछ फासले और उसके बाद हौसले /कहीं तो शुरुआत करनी होगी, /इस बार यही तय किया है।' ('हिन्दुस्तानी ज़बान', (संपादकीय), जनवरी–मार्च, 2009, पृ. 3)

ओड़िया कवि विष्णु महापात्र को गहरा दुःख है कि अनंत क्रूरताओं ने अपने धंधे और मुनाफे के लिए धरती को पीठ रक्त छलछलाती खरोचों एवं उबलते जख्मों से भर दी है। कवि को 'न्याय' कविता में इन्हीं जख्मों को भरने और शांति को वापसी को विशिष्ट पुकार है– 'दिन बीतते जाते हैं/लेकिन कम नहीं होता वक्त का जुल्म /विस्तृत होता है विश्व /फैलती चली जाती है आकाश गंगा, /लेकिन क्रूरता का कोई इलाज़ नहीं।('न्याय' (कविता, वागर्थ, दिसंबर, 2008, पृ.107) इसमें दो राय नहीं कि आज को कविता अमानवीयता के विरुद्ध अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करने के साथ–साथ मानवीय मूल्यों का पक्ष भी उतनी ही गंभीरता से वहन करती है जितनी शक्ति से शक्तियों के प्रति संघर्ष करने का संकल्प विद्यमान है। राजेश जोशी सामाजिक जटिलताओं के प्रति पूर्णतया सजग हैं– 'सारे बहस–मुबाहिसों के बावजूद इतना तो तय है /बनिस्पत हिंसा के एक सादा सरल जीवन /ज़्यादा काम आता है लोगों के /हत्यारों का शोर इसलिए ज़्यादा है कि /वे ज़्यादा संगठित हैं /दूब कम शोर मचाती है वृक्षों से /विनम्रता कोई कायरता नहीं।'(कर्मन्द्र शिशिर (सं.), 'समय को आवाज़' (काव्य–संकलन), 'कुछ पुरानी चीज़ों के पक्ष में', पृ.111)

ऋतुराज की कविता भी आतंकमयी परिदृश्य को अनदेखी नहीं करती है। कवि को अहसास है कि अपने समय के भयानक वैचारिक टकराव से अलग रह कर या मानव नियति के प्रति बेरुखी रखकर कोई भी कविता सार्थक नहीं हो सकती– 'बंदूक उनके हाथ में है/जैसे कि आदमी को लाश को/गोलियों से जीवित करने चल दिए हों/खून का अटूट फूटता परनाला/गवाह है कि आदमी को आदमी ने/मार डाला'। (कर्मन्द्र शिशिर (सं.) 'समय को आवाज़' (काव्य–संकलन), 'सिर्फ बचाव में', पृ.120)

निस्संदेह, आज का रचनाकार जीवन एवं समाज के प्रति एक स्वस्थ सृजनात्मकता और नई संभावनाओं को लेकर आगे बढ़ा है। उसने सोए हुए राष्ट्र में सुरक्षा–बोध को जगाकर एवं युग चेतना को आन्दोलित करके मानवीय तत्वों को जीवंत व गतिशील बनाया है। लेकिन भारत अभी पुण्य भूमि नहीं बना है। अन्दरूनी और बाहरी दहशतवादी गतिविधियों, परिवेशगत विसंगतियों, व्यवस्थागत विडंबनाओं, अराजक व तनावपूर्ण दबावों, अमानवीय कृत्यों और टुच्ची राजनीतिक साजिशों को अभी विराम नहीं मिला है। पोखर को सतह सूखी दिखाई देने पर भी तल में तरलता बनी रहती है। रचनाकार के लिए वर्तमान–परिदृश्य, परिवेश और व्यवस्थागत अंकगणित के विभ्रम और यथार्थ को गहराई से समझना, परखना व पहचानना बेहद ज़रूरी है। फिर इस सच्चाई को भी नज़र अंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए कि आतंकवाद अब शासकोय तनाशाही को बहसों से निकलकर सामाजिक स्थितियों, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय तथा राजनीतिक माँगों के दायरे की बहसों में पहुँच चुका है।

आश्चर्य नहीं कि 21वीं सदी के आते ही आतंकवाद को परिभाषा एक व्यापक रूप ले चुकी है, यद्यपि 1936 से लेकर 1981 तक आतंकवाद को 109 परिभाषाएँ तथा गत 28 वर्षों में आतंकवाद को अन्याय अवधारणाएँ कोशगत, विश्वकोशगत तथा विधि अर्थों को परिक्रमा ही करती रही हैं और अभी तक एक भी मानक परिभाषा सामने नहीं आई है। केवल ब्रूस हफमैन आतंकवाद को 'हिंसा के ज़रिए जानबूझ कर भय पैदा करना अथवा राजनीतिक परिवर्तन के उद्देश्य से हिंसा को धमकी देना" के रूप में परिभाषित कर लोगों को संतुष्ट करते हैं। (इन्साइड टेररिज्म', इंडिगो, लंदन, 1999, पृ. 43) अब तो आतंकवाद के, साइबर–आतंकवाद, बायो–आतंकवाद, नारको–आतंकवाद, इको–आतंकवाद, सुसाइड बोमिंग और इससे भी बढ़कर न्यूक्लीयर–आतंकवाद जैसे दहशतवाद के नए रूपों की चुनौती हमारे सामने है। वैसे इतिहास के हर युग में आतंकवाद को हमने झेला है। फिर भी इससे प्रभावी ढंग से निपटने को कला सीखनी है। किसी अद्भुत कलाकृति को देखकर अथवा साहित्यिक रचना को पढ़कर निर्दयी हृदय पिघला है, ऐसी मिसालें भी विश्व इतिहास में ज़िन्दा है। आज के रचनाकारों को ऐतिहासिक सत्य और साहित्यिक सत्य का समन्वय करके नए कागज़ पर नई लड़ाई को नई योजना बनानी चाहिए एवं नए ढंग से इसे क्रियान्वित करना चाहिए।

★

सिद्दलिंगय्या : क्रांतिकारिता से सांस्कृतिक इयत्ता तक

डॉ सर्वेश मौर्य*

कोरोना महामारी से लगातार जूझ रहे देश में कर्नाटक से जून में एक बुरी खबर आयी।[1] कन्नड़ साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर प्रोफ़ेसर सिद्दलिंगय्या जी अब हमारे बीच नहीं रहे. वे सातवें दशक में पूरी दुनिया में आयी क्रांतिकारी विचारों वाली उग्र युवा पीढ़ी के साथ साहित्य में आए क्रांतिधर्मा जनसाहित्यकार थे। वे कन्नड़ साहित्य के मोस्ट सेलिब्रेटेड साहित्यकार थे। उनका जन्म 1953 में मंचनबेले, मागडी तालुक, कर्नाटक में हुआ था। शुरुआती जीवन यहीं मंचनबेले, मागडी में बीता था; जिसकी मार्मिक छवि हमें उनकी आरंभिक रचनाओं में मिलती है। बाद का जीवन बेंगलुरु सिटी के सबसे नटोरिअस स्लम श्रीरामपुरा में बीता। यह स्लम तब दलित घेटो के रूप में जाना जाता था। चोरी–चकारी करने वाले, चाकू–छुरी चलाने वाले, कच्ची–पक्की शराब बेचने पीने वाले लोगों से यह स्लम भरा हुआ था। यहाँ रहने और जीने वालों से अच्छे व्यवहार की उम्मीद करना बेमानी था। ऐसे ही स्लम में उनके माता–पिता ने बेहद कठिन परिस्थितियों में अपने बच्चों को पाला–पोसा। एक दड़बेनुमा कमरे में छः सात भाई बहनों के साथ सिद्दलिंगय्या का जीवन शुरू हुआ। उनके पिता पास की ही कॉटन टैक्सटाइल मिल में दिहाड़ी मजदूर थे और मां आस–पास के मिडिल क्लास घरों में डॉमेस्टिक हेल्प का काम किया करती थी। इसी परिवेश में उन्होंने अपनी आरंभिक रचनाएँ लिखी। वे स्वयं बताते हैं कि उनकी आरंभिक रचनाएं श्रीरामपुरा की ग्रेव्यार्ड में बैठकर लिखी गयीं। इस स्लम के पास यही एक जगह थी जो उन्हें साहित्यिक एकाकीपन देती थी; जो उनकी रचनात्मकता के लिए संभवत बेहद जरूरी था।[2]

आगे चलकर वे कर्नाटक राज्य की प्रमुख दलित आवाज़ बने। कर्नाटक कर्मचारियों और छात्रों ने मिलकर 1974 में दलित संघर्ष समिति (डीएसएस), जो आगे चलकर कर्नाटका दलित संघर्ष समिति के रूप में जानी गयी, बनाई। इसका उद्देश्य दलित उत्पीड़न और सामाजिक बुराईयों के प्रतिकार के साथ भूमिहीन दलितों को ज़मीन दिलाना, दलित स्त्रियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार के खिलाफ बोलना और सोये हुए दलित समाज के स्वाभिमान को जागृत करना था। सिद्धलिंगय्या, बसप्पा कृष्णप्पा और केनकेरे बैलाप्पा सिद्धय्या इसके आरंभकर्ता और संस्थापक थे। 1974 में ही कन्नड़ साहित्य में प्रसिद्ध बंडाया आंदोलन की शुरुआत हुई। यह कन्नड़ साहित्य में एक प्रगतिशील विद्रोही साहित्यिक आंदोलन था। इसकी शुरुआत डी। आर. नागराज और शूद्र श्रीनिवास द्वारा हुई थी। इसका उद्देश्य सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध साहित्य को बढ़ावा देना और कविता को सामाजिक व आर्थिक अन्याय के खिलाफ एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करना था। इस आन्दोलन का नारा ही था– लोगों के दर्द को आवाज देने वाले प्यारे दोस्त! कविता को तलवार बनने दो! (खडगवागली काव्य! जनरा नौविगे मिडिवा प्राणमित्रा)।[3] डी.आर. नागराज द्वारा गढ़े गए इस नारे ने साहित्य की दशा और दिशा ही बदल दी। इस साहित्यधारा के साथ बहुत सारे साहित्यकार सामने आए। सिद्धलिंगैया, चंद्रशेखर पाटिल, चेन्ना वलीकर, कालेगौड़ा नागवार, पूर्णचंद्र तेजस्वी, एच.एस. शिवप्रकाश, बी.टी. ललिता नाइक, कु. वीरभद्रप्पा, बारगुरु रामचंद्रप्पा, प्रह्लाद बेतागेरी, अल्लामा प्रभु बेट्टादुर, गीता नागभूषण, के.एस. भगवान, शांतरासा, मल्लिका घंटा, शशिकला वीरैया स्वामी, बंजागेरे जयप्रकाश, गंगाधर मुदलियार, गुड़ीहल्ली नागराज, रमजान दरगा, (स्वर्गीय) हिरेमठ, सुकन्या मारुति, के. शरीफा, बानो मुस्ताक, डॉ अनुपमा, नेमीचंद्र, की.राम। नागराज, डॉ. राजशेखर हटगुंडी, एल. हनुमंतैया, बोलबंदेप्पा, (दिवंगत) लिंगन्ना सत्यमपेट, सत्यानंद पैत्रोट, बसवराज सबराद, सरजू काटकर, आनंद जुंजरवाड़, जाम्बन्ना अमरचिन्ता, गविसिद्ध बेल्लारी, सूर्यकांत गुणकीमठ, कामराज, एल.एन. मुकुंदराज, एच.एल. पुष्पा, आर.जी. हल्ली नागराज और सतीश कुलकर्णी आदि वे प्रमुख कन्नड़ लेखक हैं जिन्होंने इस आंदोलन के साथ अपनी पहचान बनाई।[4] इसी आन्दोलन का विस्तार करते हुए सिद्दलिंगय्या आदि ने दलित–बंडाया आंदोलन की शुरुआत की। दलित–बंडाया आंदोलन के साहित्यकारों का कहना था– अपने भोजन को पचाने के लिए एंटासिड का सेवन करने वाले, बहुमंजिला इमारतों में रहने वाले, केवल कार और हवाई जहाज में यात्रा करने वाले तृप्त और पिलपिले लोगों द्वारा निर्मित साहित्य में हमारे लिए कोई आकर्षण नहीं है।

***क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, एनसीईआरटी, मानसगंगोत्री, मैसूर 570006।**

ऐसे लोगों के लिए साहित्य एक सौंदर्य विलासिता है, जिसे समय को नष्ट करने के लिए लिखा गया है। ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले पांच प्रतिशत टाटा–बिड़ला के लिए विरोध का साहित्य नहीं लिखा गया है। आज हमारा जुड़ाव भूखों, असहायों, होटलों के बाहर कूड़ेदानों में से खाने वालों, रेलवे स्टेशनों, बस स्टैंडों में रहने वाले बेघरों, भोजन और कपड़ों की चोरी करने वालों और बिना इतिहास के मरने वालों से है। सौंदर्यशास्त्र हमारे लिए प्राथमिक नहीं है। जब हमारी 60 प्रतिशत से अधिक आबादी गरीबी रेखा से नीचे रहती है, खेतों और कारखानों में अपना खून बहाती है और अज्ञानता में सड़ती है; जो कोई भी कहता है कि वह सौंदर्य सुख के लिए, या साहित्यिक मूल्यों के लिए लिखता है, उसे गैरजिम्मेदार ही कहा जा सकता है।[5] यह वह दौर था जब पूरी दुनिया में एक आक्रोशित पीढ़ी का उभार देखने को मिला। इसी दौर में अफ्रीकन–अमेरिकन साहित्यधारा में ब्लैक पैंथर मूवमेंट की शुरुआत हुई।[6] जिसकी प्रेरणा से भारत में दलित पैंथर मूवमेंट की शुरुआत हुई।[7] कर्नाटक में यही प्रभाव दलित बंडाया मूवमेंट के रूप में देखने को मिला । यह आश्चर्यजनक नहीं की उस दौर की यह आग उगलने वाली पीढ़ी आगे चलकर सभी जगहों पर इतनी नरम हो गई कि सत्ता व प्रतिक्रियावादियों के साथ चली गयी। चाहे वह नामदेव ढसाल हों या सिद्धलिंगय्या सभी के बारे में यही आरोप लगा। ऐसा क्या हुआ कि इतनी उर्जा ऊष्मा तेज ताप ज्वाला से भरी पीढ़ी समझौतावादी हो गयी? इसे हम चाहे वैचारिक विचलन कहें या मध्यवर्गीय अवसरवाद लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह सब एक फेनोमेना की तरह हुआ। लगभग सबकी एक ही गति हुई। इसके लिए अलग–अलग तर्क दिए जा सकते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि शुरुआत के दिनों में जो आक्रोश था वह इसलिए ठंडा पड़ गया कि दलित लेखकों का एक्सपोजर बढ़ा उनकी रीडरशिप डाइवर्स हुई इसलिए उन्हें अपनी रचनाओं में एक बैलेंसड एप्रोच अपनाना पड़ा। यह भी कि ये दलित साहित्यकार जिस पृष्ठभूमि से आए थे उसका असर शुरुआती दिनों में रहा आगे चलकर जब वे भी मिडिल क्लास का हिस्सा बन गये तो संभवतः मुख्यधारा के साहित्यकारों वाली बीमारी के शिकार हो गये।

यही बात सिद्दलिंगय्या की राइटिंग में भी दिखाई देती है। शुरुआती दिनों में होले मादिगर हाडु 1975 नाम से अपने पहले कविता संग्रह के साथ ही वे कन्नड़ साहित्य की दुनिया में दलितों की क्रांतिकारी आवाज के रूप में सामने आये। उनकी कुछ कविताएँ और गीत इक्रला–ओडिरला निन्ने दिन नन्ना जाना, 'यारिगे बंतु येल्लिगे बंतु नलवत्तेलारा स्वातंत्र' आदि क्लासिक हो गए। लेकिन बाद की रचनाओं होलेमादिगरा हाडु (होलेय और मादिगा के गीत,1975), साविरारु नादिगलु (हजारों नदियाँ, 1979), कप्पू काडिना हाडु (द सॉन्ग ऑफ द ब्लैक फॉरेस्ट,1982), आय्द कवितेगलु (चयनित कविताएँ, 1997), मेरवणिगे (जुलूस, 2000), नन्ना जनगलु मत्तु इतरा कवितेगलु (मेरे लोग और अन्य कविताएँ, 2005), कुदिवा नीलिया कडलु (2017), ऊरु सागरवागी (2018) में उनका स्वर बदल गया। यही उनकी गद्य रचनाओं के साथ भी हुआ हैं। उनके अब तक तीन नाटक उपलब्ध हैं–पंचम (1980), एकलव्य (1983) और नेलसमा तथा अवतारगलु (1981), हक्किनोटा (1991) ग्रामदेवतेगलु, जनसंस्कृति और आ मुख ए मुखः आदि कुछ आलोचना और निबंध पुस्तकें इसका प्रमाण हैं।[8] उनका आरंभिक क्रांतिकारी गीत 'यारिगे बंतु येल्लिगे बंतु नलवत्तेलरा स्वातंत्र' बेहद प्रसिद्धि हुआ। यह गीत सवाल करता है कि 1947में मिली भारत की स्वतंत्रता के वास्तविक लाभार्थी कौन हैं? – गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं– यह टाटा और बिड़ला की जेबों में आयी/ यह उनके मुँह में आयी/ जो लोगों को खा जाती है/ यह करोड़पतियों के कमरों में आयी/ '47' की आज़ादी, '47' की आज़ादी/ गरीबों के घरों में नहीं आयी/यह प्रकाश की किरण भी नहीं लायी/इससे दुख का सागर कम नहीं हुआ/ इसने समानता के फूल नहीं खिलाए।[9]

हाल के दिनों में एक बातचीत में सिद्दलिंगय्या ने अपने इस प्रसिद्ध गीत के बारे में कहा था– चालीस साल पहले की तुलना में आज इसकी पंक्तियाँ ज्यादा प्रासंगिक हैं, आर्थिक असमानताएँ बढ़ी हैं, गरीब दयनीय रूप में रहने को बाध्य हैं, किसान आत्महत्या कर रहे हैं, उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण लोगों के दुश्मन हैं। लेकिन इससे सबसे ज्यादा नुकसान दलितों का हो रहा है। निजीकरण के चलते उनकी दशा बदतर है, हमें अभी भी यह सवाल पूछने की जरूरत है–1947 की आजादी किसके लिए और कहां आयी? इसी तरह की उनकी एक अन्य कविता– द सॉन्ग; इसी तरह के आक्रोश को व्यक्त करती है– मारो सालों को, उजाड़ दो इनको/इन सालों की खाल खींच लो जिंदा/यही वे कहते हैं हमारे बारे में/ जो कहते रहते हैं एक ईश्वर है/ हालाँकि उस एक के लिए बनाए हैं इन्होने मंदिर अनेक/वे कहते हैं हम सब उस की संताने हैं/ लेकिन वे जब भी हमें देखते हैं/ कूदते हैं, बिदकते हैं जैसे देख लिया हो उन्होंने साँप/ धिक्कार है! वे प्रवेश नहीं देते

होटलों में/ घरों में, नहीं देते पानी/ जबकि वह कुत्ता जो हमारा गू खाता है/ उनके कमरों में सहर्ष जाता है। (अंग्रेजी अनुवाद सुमितिन्द्रा नाडिग और हिंदी अनुवाद सर्वेश मौर्य द्वारा)।[10]

सिद्दलिंगय्या की आत्मकथा– ऊरु केरी का पहला भाग 1997 में प्रकाशित हुआ। इसके अब तक तीन भाग आ चुके हैं। इसके अन्य भाग क्रमशः ऊरु केरी–2 2006 और ऊरु केरी–3 2014 में प्रकाशित हुए। 2003 में इसे प्रतिष्ठित संस्था साहित्य अकादमी ने भी छापा है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी ए वर्ड विद यू वर्ल्ड नाम से प्रकाशित है। इसका हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध है। जिसका अनुवाद गांव–गली नाम से कन्नड़ और हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ प्रो. टी.वी. कट्टीमनी ने किया है। हिंदी संस्करण वाली आत्मकथा में सिद्दलिंगय्या ने आरंभिक जीवन से लेकर कॉलेज के जीवन–संघर्ष को दर्ज किया है। इस आत्मकथा में अय्यनोरू के खेत, चतुर मामा, गोपाल स्वामी छात्रावास, मिल मजदूर और विचारवादी परिषद नाम से अध्याय हैं। आत्मकथा के प्रथम अध्याय– अय्यनोरू के खेत में वे बताते हैं; गांवों में जमीदारों और ऊंची जाति के लोगों का बोलबाला था और इन्हीं ऊंची जाति के भूस्वामियों के यहां दलित गुलामी और बंधुआ मजदूरी करते थे गांव में जातिवाद और अस्पृश्यता अपने विकृत रूप में थे। उत्तर भारत की तरह ही दक्षिण भारत के कर्नाटक के गांवों में भी दलितों के घर गांव के किनारे अंतिम छोर पर थे। दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार होता था। पानी जैसी बुनियादी चीजों के लिए भी ख़तरनाक अलगाव थे। एक बेहद मार्मिक और दिल दहला देने वाला प्रसंग इसी अध्याय में है। वे लिखते हैं– एक बार जब हम अपने माता–पिता को आवाज लगाने के लिए दीवार पर उकडू बैठे थे तो हमने एक आश्चर्यजनक घटना देखी। दो लोग अपने कंधों पर हल का जुआ उठाए अय्यनोरू के खेत जोत रहे थे और एक अन्य आदमी उनके पीछे चलता हुआ उन्हें हांक रहा था। दो लोगों को बैलों की तरह हल खींचते और तीसरे को उन्हें धमकाते–हाँकते देखना बड़ा अजीब लग रहा था।[11] आगे चलकर वे ये खुलासा करते हैं उनमें एक बैल की जगह उनके पिता जुते थे। वे बताते हैं वे बड़े कठिन दिन थे। दिन–रात हाड़–तोड़ मेहनत करने के बाद भी भरपेट भोजन नहीं मिलता था। कई बार भूस्वामियों की गुलामी करते हुए जो जूठन मिलती थी; उससे ही गुजारा करना पड़ता था। अपनी इस आत्मकथा में अगले अध्यायों में वे नकली उदारवादियों की असलियत, समाज में व्याप्त अंधविश्वास, धार्मिक पाखंड, अस्पृश्यता स्त्री जीवन आदि की कई परतें खोलते हैं। यह आत्मकथा अपनी पूर्णता में सत्ता–व्यवस्था का विरोध करती है।[12] जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि अपनी बाद की रचनाओं में उनका स्वर काफी बदल गया। वे सिर्फ नर्म ही नहीं हुए बल्कि ईश्वर वगैरह की बातें करने लगे अवतारागलू इसका उदाहरण है। इस रचना में दलित देवी बेहद गुस्से के साथ धर्मस्थला के मंजूनाथा (ऊँची जाति के मान्य देवता) को पत्र लिखती है कि उसे लंबे समय से उपेक्षित किया गया है। उसके लिए मंदिर बनाने का कोई मतलब नहीं है क्योंकि उसके गरीब भक्तों के पास भी छत नहीं है। कुल मिलाकर दलितों की ओर से देवी देवताओं से जिस किस्म की बातचीत की गई है वह एक किस्म की धार्मिक सांस्कृतिक लाइन है; जिसे कुछ लोग ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना के विरोध के रूप में भी व्याख्यायित कर सकते हैं; हालांकि यह अंबेडकराइट पॉलिटिक्स से एकदम अलग लाइन है। इस संदर्भ में यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि दलित राइटर्स के यहां इस तरह के जो सांस्कृतिक स्ट्रगल दिखाई देते हैं उसका रूट भी डॉ. अंबेडकर के यहां है। शायद इसीलिए पूर्ववर्ती और परवर्ती अंबेडकर में लोग अपने मतलब का चुनाव कर लेते हैं।

अपनी बदली हुई मनोदशा के बारे में बेहद ईमानदारी से सिद्दलिंगय्या ने बताया है– शुरुआती दिनों की रचनाओं में जो ऊर्जा आक्रोश और संघर्ष दिखाई देता है वह उस दौर के लोगों के संघर्ष से प्रेरित है, उसका आधार वही है। मैं इस मनोदशा में काफी दिनों तक लेखन करता रहा लेकिन आने वाले समय में मुझे इस तरह की नारेबाजी की बोरियत हुई; जो मुझे मार रही थी। तब मेरे भीतर बहुत सारे संदेह पैदा हुए। यह सवाल मन में आया कि जीवन सिर्फ मनुष्य तक सीमित नहीं है; एक छोटे पौधे, छोटी नदी, हवा, तितलियां और पंछी भी जीवन रखते हैं उन्हें भी जीने का हक है; केवल पुजारी ही नहीं देवता भी अपने सर्वाइवल के लिए संघर्ष कर रहे हैं।[13] इंडियन सोशल साइंसेज की जाति अध्ययन की धारा मुख्यतः दो फिलोसॉफिकल स्कूल मानती रही है– पहला स्कूल इंटीग्रेशनिस्ट लोगों का है जो यह मानते हैं कि दलित लोग ऑर्गेनिकली हिंदू सोसायटी के साथ जुड़े हुए हैं और उन्हीं के साथ उनके अस्तित्व को देखा परखा जांचा जाना चाहिए। दूसरा स्कूल इस्क्लूसिविस्ट्स का है जिनका मानना है कि दलित लोगों की अपनी सांस्कृतिक इयत्ता है। इसके साथ एक तीसरा इमर्जिंग स्कूल भी है जो दलित कल्चर को इन दोनों का द्वंदात्मक मिक्सचर मानता है। हालांकि इसका

बेहद कम प्रभाव दलित आंदोलन पर पड़ा है लेकिन इधर इसकी बातें भी होने लगी हैं। ऐसा जान पड़ता है अपने परवर्ती लेखन में सिद्दलिंगय्या इसी धारणा के समर्थक बन गए थे।[14]

जो भी है वे एक बड़े साहित्यकार थे। उन्हें 2019 में कर्नाटक सरकार द्वारा कन्नड़ में सर्वोच्च साहित्यिक पम्पा पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 2018 में बीबीएमपी द्वारा नृपतुंगा पुरस्कार, 2007 में हम्पी विश्वविद्यालय द्वारा नाडोजा पुरस्कार, 1986 में कर्नाटक सरकार द्वारा कर्नाटक राज्योत्सव पुरस्कार तथा 1998–99 में कर्नाटक राज्य फिल्म पुरस्कार (सर्वश्रेष्ठ गीतकार) फिल्म 'प्रतिभटने' के गीत हसीविनिंदा सत्तोरू के लिए दिया गया। उन्होंने फरवरी 2015 में हासन जिले के श्रवणबेलगोला में आयोजित 81वें अखिल भारत कन्नड़ साहित्य सम्मेलन में अध्यक्ष की भूमिका निभायी। यह उल्लेखनीय है कि इस भूमिका में चुने जाने वाले वे पहले दलित लेखक थे। बातो को कहने का उनका अपना ही स्टाइल था। सटायर और ह्यूमर का वे बेहद इस्तेमाल करते थे। इस मामले में वे अद्वितीय थे। हाल ही के दिनों में टीएनएम को दिए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था– हमें राजनीतिक स्वतंत्रता है। लेकिन सामाजिक और आर्थिक बंधन अर्थात जाति और वर्ग से मुक्ति के बिना यह राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक है। जब अम्बेडकर ने संविधान का मसौदा तैयार किया, तो उन्होंने संविधान सभा में कहा कि अगर आर्थिक और सामाजिक असमानता के सवालों को संबोधित नहीं किया गया, तो उत्पीड़ित लोग संसद की संस्था को नष्ट कर देंगेɜ आप देख रहे है, हमें अभी भी स्वतंत्रता नहीं है।[15] वे अपने समय के पर्याप्त पढ़े जाने वाले और पापुलर साहित्यकार रहे तथा बैंगलोर विश्वविद्यालय में कन्नड़ के प्रोफेसर रहे। मात्र 34 वर्ष की बेहद कम् उम्र में 1988 में, कर्नाटक विधान परिषद के सदस्य बने और दूसरी बार 2006 पुनः इस पद के लिए नामित हुए। उन्होंने स्लम से लेकर विधान परिषद् की यात्रा की। वैचारिक विचलन फिसलन के बाद भी उन्होंने दलित जनपक्षधरता कभी नहीं छोड़ी। उनका जाना दलित साहित्य ही नहीं कन्नड़ साहित्य के साथ भारतीय साहित्य की अपूरणीय क्षति है।

संदर्भ–सूची :–

1. विस्तार के लिए देखें– "Kannada poet Dr. Siddalingaiah died due to Covid". News 18. 11 June 2021. Retrieved 11 June 2021. https://timesofindia.indiatimes.com/life-style/books/features/kannada-dalit-poet-siddalingaiah-dies-due-to-covid/articleshow/83510535.cms
2. विस्तार के लिए देखें– From those Stubs Steel Nibs are Sprouting: New Dalit Writing from South India Vol II, Satyanarayana and Tharu Harper Collins India, New Delhi, 2013 pp. 151–155.
3. "Let Poetry Be a Sword!". Vajpeyi, Ananya ,1 January 2011, The Caravan. Archived from the original on 28 September 2015. Retrieved 27 September 2015.
4. विस्तार के लिए देखें– The Flaming Feet and Other Essays: The Dalit Movement in India. Nagaraj, D.R, Edited by Prithvi Datta Chandra Shobhi, Ranikhet: Permanent Black. 2011. vkSj From those Stubs Steel Nibs are Sprouting, Dossier 2: Kannada and Telugu, Satyanarayana, K & Tharu, Susie, New Delhi: HarperCollins India. 2013
5. विस्तार के लिए देखें– From those Stubs Steel Nibs are Sprouting, Dossier 2: Kannada and Telugu, Satyanarayana, K & Tharu, Susie, New Delhi: HarperCollins India.2013
6. विस्तार के लिए देखें– Encyclopaedia of Dalits in India, Volume 1. Rajawat, Mamta Anmol Publications. 2004. p. 325. और Dalits in modern India: vision and values. Michael, S. M, SAGE Publication. 2007. p. 173. और Political Theology: Text and Practice in a Dalit Panther Community, The Journal of Asian Studies 52 (20) Contursi, Janet A. 1993 p.320-339 और https://velivada.com/2020/07/13/the-dalit-panthers-and-the-black-panthers-brief-historical-backgrounds-of-two-revolutionary-movements/
7. विस्तार के लिए देखें– https://map.sahapedia.org/article/The-Bandaya%20Literary%20Movement:%20Ebbs%20and%20Tides%20%20Bandaya%20in%20Kannada%20means%20Rebel%20or%20Rebellion/10660 और A History of Kannada Literature. Rice, Edward P. Asian Educational Services, 1982.
8. Siddalingaiah (1954–2021) People's Poet and a Shy Revolutionary, Huliyar, Nataraj, EPW, Vol. 56, Issue No. 26-27, 26 Jun, 2021
9. देखें– https://roundtableindia.co.in/lit-blogs/?tag=siddalingaiah Siddalingaiah's Kannada poem translated by Sumatheendra Nadig, Source: A string of pearls, Edited by H.S. Shivaprakash and K.S. Radhakrishna.
10. देखें– https://roundtableindia.co.in/lit-blogs/?tag=siddalingaiah Siddalingaiah's Kannada poem translated by P Rama Murthy. Source: A string of pearls, Edited by H.S. Shivaprakash and K.S. Radhakrishna.
11. गांव–गली, लेखक.सिद्धलिंगय्या, अनुवादक–प्रो. टी.वी. कट्टीमनी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 23।
12. देखें वही, गांव–गली, लेखक–सिद्धलिंगय्या, अनुवादक– प्रो. टी.वी. कट्टीमनी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 23।
13. https://roundtableindia.co.in/index.php?option=com_content&view=article&id=3276:village-deities&catid=118:thought&Itemid=131
14. From Political Rage to Cultural Affirmation: Notes on the Kannada Dalit Poet-Activist Siddalingaiah, D.R. NAGARAJ India International Centre Quarterly Vol. 21, No. 4 (WINTER 1994), pp. 15-26 (12 pages)
15. https://www.thenewsminute.com/article/renowned-kannada-dalit-poet-and-activist-siddalingaiah-no-more-150516

भारतीय समाज एवं हिन्दी कहानियों में वृद्धों की स्थिति

सुप्रिया प्रसाद*

हमारा समाज आज से पहले पेड़ों, पत्थरों से लेकर जानवरों तक को पूजता था, आज अपने बुजुर्गों को दरकिनार कर रहा है। माता–पिता को देवता माननेवाले बेटे अब उन्हें ही बोझ समझने लगे हैं। बुजुर्गों पर होनेवाले अत्याचार के मामले बढ़ रहे हैं। एक वक्त था, जब माता–पिता को आदर्श मानते हुए उनका सम्मान किया जाता था। पूरे संसार में शायद भारत ही एक ऐसा देश है, जहां तीन पीढ़ियां सप्रेम एक ही घर में रहती थीं। आज पाश्चात्य सभ्यता के वशीभूत होकर देश के नौजवान माता–पिता के साथ कुछ पल बिताना भी आवश्यक नहीं समझते। इस तरह की सोच देश में मध्यम और निम्न परिवार में कम और पढ़े–लिखे, ज्ञानवान, धनवान और सभ्य समाज में ज्यादा देखने को मिल रही है। देश के ओल्ड एज होम्स में रिटायरमेंट के बाद का जीवन बिताने वालों की संख्या अधिक है। कुछ बुजुर्ग तो ऐसे हैं, जिन्हें घर में ही कैद कर दिया गया है। इन बुजुर्गों के संरक्षण के लिए देश में कानून भी बने हैं पर जानकारी के अभाव और बदनामी के डर से बुजुर्ग कानून का सहारा लेने से हिचकते हैं। कई मामलों में बुजुर्ग अपने बच्चों को इस कदर प्यार करते हैं कि उनकी प्रताड़ना भी खामोशी से सह लेते हैं। जो माता–पिता अपनी सन्तानों के आगमन की खुशी में मोहल्ले में मिठाइया बांटते फिरते थे और उनकी एक हँसी के बाद खुश हो जाया करते थे, वही औलाद माता–पिता की एक छोटी सी इच्छा की पूर्ति करने में आनाकानी कर रहे हैं। सन्तानें अपने माँ–बाप को बोझ समझने लगी हैं। माता–पिता के प्रति यह उदासीनता या नफरत की भावना दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही है। भले ही देश के युवाओं की सोच बदल गयी हो, लेकिन माता–पिता अब भी नहीं बदले हैं। हमें समाज में तेजी से फैल रहे इस चलन को समाप्त करने के लिए बहुत कुछ करने की जरूरत है।

'हेल्पेज इण्डिया' ने वृद्धों पर एक सर्वे किया जिसमें कई बातें सामने आयीं। 'वर्ल्ड एल्डर एब्यूज अवेयरनेस डे' के अवसर पर किये गये इस सर्वे से पता चलता है कि हमारे देश में भी बुजुर्गों के साथ बहुत ही अमानवीय व्यवहार होने लगा है। खुद बुजुर्गों ने ये शिकायतें की हैं कि उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जा रहा है और उनकी उपेक्षा की जा रही है। 19 शहरों के साढ़े चार हजार से अधिक बुजुर्गों पर जो सर्वे किया गया उसमें से 44 प्रतिशत बुजुर्गों का कहना था कि सार्वजनिक स्थानों पर उनके साथ सही व्यवहार नहीं किया जाता। बैंगलुरू, हैदराबाद, भुवनेश्वर, मुबई, और चेन्नई ऐसे शहर के रूप में हमारे सामने आये, जहाँ के सार्वजनिक स्थानों पर बुजुर्गों से बहुत बुरा व्यवहार किया जाता रहा है। सर्वे में शामिल बैंगलुरू के 70 प्रतिशत बुजुर्गों ने बताया कि अपने शहर में बुरे बर्ताव का सामना करना पड़ा है। यह आंकड़ा हैदराबाद में 60, गुवाहाटी में 59 और कोलकाता में 52 प्रतिशत है, जहाँ बुजुर्गों को दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा है। दिल्ली इस मामले में कुछ अलग दिखायी दी। यहाँ केवल 23 प्रतिशत बुजुर्गों ने अपने साथ दुर्व्यवहार की शिकायत की।

इसके अलावा इन बुजुर्गों को आर्थिक परेशानी, तिरस्कार, मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। सर्वे में शामिल 53 प्रतिशत बुजुर्गों को बस अड्डों, अस्पतालों, बसों, बिल आदि भरने के लिए लगायी गयी लाइनों में भी दुर्व्यवहार का शिकार होना पड़ा। दिल्ली के अस्पतालों में वहाँ के कर्मचारी बुरा बर्ताव करते हैं। ऐसा 26 प्रतिशत बुजुर्गों का कहना था। ऐसी ही स्थिति बैंगलुरू में 22 प्रतिशत बुजुर्गों के साथ होती है। यही नहीं जब बुजुर्ग लाइन में आगे रहते हैं तो लोग उनपर व्यंग्य बाण छोड़कर उन्हें अपमानित करते रहते हैं।

*** शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, बिहार।**

भारत में संयुक्त परिवार टूटने का सबसे बुरा प्रभाव बुजुर्गों पर ही पड़ा है। इस सर्वे में शामिल 64 प्रतिशत बुजुर्गों का मानना था कि बुढ़ापे के कारण सुस्त और मन्द पड़े रहने के कारण शायद लोग ठीक ढंग से बात नहीं करते। 'भारतीय समाज अपने बुजुर्गों के साथ कैसा व्यवहार करता है' नाम से सर्वेक्षण रिपोर्ट जारी करने के अवसर पर कहा गया कि भावनात्मक कमी को पूरा करने के लिए आज का युवा समय नहीं निकालते हैं। कुछ लोगों ने कहा कि परम्पराओं को त्यागने के कारण ही आज बुजुर्गों की यह हालत हो रही है। एक और बात यह सामने आयी कि बुजुर्गों के रहने के लिए भारत सबसे खराब जगहों में आता है, जबकि स्वीट्जरलैण्ड को बुजुर्गों के लिए सबसे अच्छी जगह मानी जाती है।

प्रेमचंद के समय में हमारे समाज में वृद्धों की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं थी। ग्रामीण समाज में वृद्धों की देखरेख में ध्यान तो दिया जाता था परन्तु कहीं कहीं उनकी इच्छाओं को जबरन दबाने के लिए बाध्य भी कर दिया जाता था। 'बूढ़ी काकी' कहानी में देखिए। काकी के घर तिलक का माहौल है, जिसमें काफी मेहमान आए हुए हैं और तरह–तरह के पकवान बनाये जा रहे हैं। मन ही मन काकी पकवानों को खाने की कल्पना इस प्रकार करती है–''पहले तरकारी से पूड़ियां खाऊंगी, फिर दही और शक्कर से, कचौरियां रायते के साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने, चाहे भला; मैं तो मांग–मांग कर खाऊंगी''।

प्रेमचंद की कहानी बूढ़ी काकी, बेटों वाली विधवा, माँ, आत्माराम, मंत्र, सुभागी, भीष्म साहनी की चीफ की दावत, खून का रिश्ता, सूर्यबाला की कहानी दादी का खजाना, शिवप्रसाद सिंह की कर्मनाशा की हार, मन्नू भण्डारी की कहानी अकेली जैसी अनेक कहानियां वृद्धावस्था के दयनीय मानसिकता एवं सामाजिक अवस्था को उजागर करती हैं। अभी वर्तमान सरकार ने वृद्धों से सम्बन्धित कई कानून और योजनाएं बनाई हैं, जिन्हें देखने पर लगता है कि सरकारी प्रयास तो होता है कि वृद्धों को अपने जीवन का अन्तकाल सुविधाजनक ढंग से बिताने का अवसर मिल सके परन्तु या तो कानून की उपेक्षा होती है या उनसे सम्बन्धित योजनाओं को लोग अधिक से अधिक वृद्धों तक पहुंचने ही नहीं देते। ''बुढ़ापे को एक नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता है–एक ऐसी दृष्टि से जिसमें संवेदना हो और वृद्धों के लिए आदर व सम्मान के लिए जगह हो। जहाँ एक तरह के नए जीवन के लिए व्यवस्था हो।''[1] जीव विज्ञान और नृवंशविज्ञान के संदर्भ में बूढ़े व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थितियों पर चर्चा करते हुए प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक समाजों में उनकी दशा का तुलनात्मक आकलन किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि आज ''एकल परिवार, शहरीकरण, कम आय और घरों की कमी–कुछ ऐसे कारण हैं जिन्हें लेकर इंग्लैण्ड, अमेरिका, जापान, जर्मनी, कनाडा जैसे देश भी जूझ रहे हैं। चूँकि जापान और जर्मनी में अब तक बूढ़े माता–पिता की अपनी संतान के साथ रहने की प्रथा है, इसलिए समस्या कुछ हद तक स्थिर है, परन्तु जहाँ युवक गाँव या नगर छोड़कर शहर जा रहे हैं, परिस्थिति गंभीर बनी हुई है। ऐसे गाँव और नगर बूढ़ों से भरे हुए हैं।''[2]

'वृद्धावस्था विमर्श' ''बुढ़ापे के भ्रम और सच की परतों को खोलते हुए शारीरिक, मानसिक क्रियाशीलता पर इस उम्र के असर का भी आकलन करने वाली पुस्तक है। इसके अलावा दैनिक जीवन के क्रियाकलाप किस प्रकार दैहिक शक्ति के क्षीण होने पर बदल जाते हैं इस पर भी दृष्टांतों की सहायता से प्रकाश डाला गया है और याद दिलाया गया है कि तिरस्कृत, अभावग्रस्त, निर्वासित और निराश्रित जैसा जीवन बिताता हुआ वह वृद्ध भी मनुष्य ही है। यहाँ यह परामर्श भी दिया गया है कि वृद्धावस्था में अपने को किसी उद्देश्य से संबन्धित रखने, किसी कार्य में व्यस्त रखने और एक ध्येय की ओर बढ़ते रहने की कामना से ही वृद्ध व्यक्ति का भविष्य प्रकाशमय हो सकता है। वरना वह किसी ऐसी बीमारी का शिकार हो सकता है जिससे उबर पाना कठिन हो सकता है और परिवार के लिए अत्यधिक चिंता का विषय हो सकता है।''[3]

वृद्ध विमर्श पर लिखी गई एक अन्य पुस्तक 'वृद्धावस्था की दस्तक' है जिसकी लेखिका सीमा दीक्षित ने वृद्धों की स्थिति पर विस्तृत नजर दौड़ाई है। पुस्तक में वृद्धावस्था के अहम् के कारण जन्म लेती समस्याओं पर गौर किया गया है। ''पिता पुत्र सम्बन्ध का इगो व्यक्ति को अत्यधिक व्यथित करता है और व्यथित होने से उसके सारे क्रिया कलाप, जो वह घर–परिवार एवं समाज के लिए करता है, वे सब बाधित

होते हैं या परिष्कृत नहीं होते.....''। प्रायः लोग पुत्रों की, पुत्रियों की बुराई करते सुने जाते हैं। समाज भी उनके साथ हां में हां मिलाता है और फिर पीछे–पीछे या प्रौढ़ों के मध्य बातचीत हो तो कहते पाये जाते हैं कि बूढ़ा बहुत खूसट है, खडूस है, घमंडी है, किसी लायक नहीं बचा, किन्तु ऐंठन नहीं जा सकती, अरे यह तो जवानी में ऐसा रहा है, अब तो हद करे है, आदि.... ।''[4]

सीमा दीक्षित की इस पुस्तक में वानप्रस्थ के व्यावहारिक पक्ष, एकाकीपन, बेटी और बहू के सम्बन्धों से उपजी परिस्थितियां, अपेक्षाकृत कमजोर माता–पिता की तेज तर्रार सन्तानें और थका हारा शरीर भी वृद्धावस्था में जीवन को काफी प्रभावित करते हुए दिखाया गया है। यह भी कि साठ साल से अधिक उम्र के बाद अकेला आदमी या औरत जब परिस्थितिजन्य प्यार में पड़ जाते हैं तब भी स्थितियां काफी विकट हो जाती हैं। वृद्धों के लिए सबसे कठिन मनःस्थिति वहां होती है, जहां संस्कारों में ज्यादा जकड़े होने के कारण वे ऐसे कदम उठाते हैं जिससे नयी पीढ़ी विद्रोही भूमिका में आ जाती है। हमारे संस्कार के साथ हमारी संस्कृति भी दो पीढ़ियों के बीच एक अन्तराल पैदा करने में अपनी भूमिका निभाती है। कुल मिलाकर यह बात सामने आती है कि तमाम परिस्थितियों के कारण अकेले पड़ चुके वृद्ध हार कर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगते हैं। ''एक कड़वी सचाई यह है कि हमारे बुजुर्ग जितना भूख, प्यास, बीमारी से नहीं मरते, उतना वे अकेलेपन से मर जाते हैं.... ।''[5]

इस विषय की एक और महत्वपूर्ण पुस्तक है, विमला लाल की ''वृद्धावस्था का सच''। लेखिका के अनुसार ''घर से बेघर होकर वृद्धाओं तक पहुंचने वाले बेबस वृद्धों के मजबूरी–भरे सफर की यह दास्तान कोई हवाई कयास नहीं, कोरी कल्पना या गप भी नहीं, बल्कि आज अपसंस्कृति के मारे अपाहिज होते हमारे समाज के कटु यथार्थ को झेलते, कराहते, नित–नित टूटते जीवनों की कड़वी दास्तान है।''

'वृद्धावस्था का सच' की लेखिका ने बड़े विस्तार से समाज में वृद्धों की गतिविधियों और उनकी समस्याओं पर चर्चा की है। पुस्तक में इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया है कि आखिर आज के वृद्धों के प्रति हमारा समाज या युवा पीढ़ी सोचती क्या है। आज क्यों हम उन लोगों को वृद्धाश्रम में भेजने पर बाध्य हो रहे हैं जिन्हें अपने घर की छत के नीचे ही सम्मान और सुविधाओं से आसान जीवन का मौका देना चाहिए था। एक ओर देखने का प्रयास है कि हमारी युवा पीढ़ी वृद्धों के प्रति कैसा विचार रखती है तो दूसरी ओर यह बात भी सामने लाने का प्रयास हुआ है कि क्या वृद्ध लोग अपनी हठधर्मिता के कारण ही स्वयं अपने लिए समस्या पैदा कर रहे हैं? आखिर वृद्धावस्था जीवन का कैसा पड़ाव है जहां वृद्धाश्रमों की जरूरत आ पड़ी और इन वृद्धाश्रमों का यथार्थ क्या है? क्या इन आश्रमों में आने से वृद्धों का जीवन एकदम आसान हो जाता है और उनकी सारी समस्यायएं समाप्त हो जाती हैं?

यही नहीं, विमला लाल की यह पुस्तक वृद्धावस्था के कुछ भावनात्मक पलों की ओर भी हमारा ध्यान ले जाती है। कोई भी व्यक्ति अपने घर के किसी वृद्ध को आश्रम में छोड़ने जब जाता है तब उसके मन में एक पल के लिए भी यह बात नहीं आती कि भविष्य में उसके साथ भी ऐसा ही हो सकता है। ''यह कैसी बिडम्बना थी कि एक वर्ष के भीतर ही वही बेटा स्वयं आश्रम में अपने दिवंगत पिता का स्थान लेने आ पहुंचा था! और ठीक उसी द्वार पर लगभग उसी मुद्रा में खड़ा था, जिसमें वह पहले अपने पिता को छोड़कर गया था!''[6] और जब यह स्थिति आती है तब आश्रम में खड़ा वृद्ध व्यक्ति अपने अतीत में लौटता है, ''काश! मैंने इस सचाई को उस समय अनुभव किया होता। पिताजी का दर्द समझने की कोशिश की होती। उनकी हताश और वीरान नजरों की भाषा पढ़ने का प्रयत्न किया होता और बंद कमरे में गूंजती उनकी घुटी–घुटी सिसकियों को सुना होता... ।''[7]

विमला लाल ने इस पुस्तक में वृद्धों की देखभाल पर समाज और सरकार की भूमिका को लेकर भी तरह–तरह के प्रश्न उठाकर हमें सोचने को मजबूर किया है। वे यह भी सुझाव देती हैं कि अगर वृद्धाश्रमों की जरूरत पड़ भी जाए तो ये वृद्धाश्रम कैसे होने चाहिए। लेखिका कहती है, ''उन्हें एक ऐसा सुविधानजक रहने का स्थान प्रदान किया जाए जहां पर वह घर की तरह ही शांति, सुकून और सुविधा से अपने जीवन

के अन्तिम वर्षों को जी सकें...।''[8] इससे भी आगे जाकर वह बताती हैं कि वृद्धाश्रमों के लिए भवन कैसा हो, उसके चारो तरफ का वातावरण कैसा हो, भवन के अन्दर उनके रहने, उनके खाने की कैसी व्यवस्था हो, उनके शौचालय कैसे हों, उनके मनोरंजन की कैसी व्यवस्था हो, उनके स्वास्थ्य की देखभाल किस तरह की जाए.....आदि आदि।

21वीं सदी की शुरुआत में आए भूमण्डलीकरण के दौर ने घर–घर में बाजार स्थापित कर दिया और लोगों की लालसाओं को बढ़ा दिया। लोग बाजार के चंगुल में इस कदर फंस गए कि अपने संस्कार एवं पारिवारिक उत्तरदायित्व को भूलने लगे। संयुक्त परिवार का अंत और एकल परिवार की वृद्धि ने समाज के वृद्ध वर्ग को झकझोर कर रख दिया। कई समस्याएं एक साथ उनके समक्ष उपस्थित हुईं, जैसे–पहले शहर या विदेश में यदि बच्चे रहते थे तो बुजुर्गों के लिए पैसा मुद्दा नहीं था, वक्त मुद्दा था। अब इस स्थिति में पैसा भी एक मुद्दा बन गया है। साथ ही उनकी सामाजिक सुरक्षा भी हासिए पर चली गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज में वृद्धों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। हिन्दी के कहानीकारों ने भी तत्कालीन समाज में वृद्धों की यथार्थ स्थिति पर अपनी दृष्टि बनाए रखी है।

संदर्भ–सूची :–

1. वृद्धावस्था विमर्श : चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, संस्करण–2016, पृष्ठ 20।
2. वही, पृष्ठ 50।
3. वही, पृष्ठ 81।
4. वृद्धावस्था की दस्तक–सीमा दीक्षित, समसामयिक बुक, नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ 59/60।
5. वही पृष्ठ 11।
6. वृद्धावस्था का सच, विमला लाल, प्रकाशक–कल्याणी शिक्षा परिषद, 2010, पृष्ठ संख्या 145।
7. वही, पृष्ठ 145।
8. वही पृष्ठ 171।

नाम का व्यक्तित्व पर प्रभाव : समाज-भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. सुजाता चतुर्वेदी*

अक्षर–समूह का सार्थक समायोजन जो सामाजिक सत्ता का भी द्योतक हो, 'नाम' के रूप में प्रचलित हो जाता है। नाम व्यक्ति के व्यक्तित्व के अतिरिक्त उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, उसका सामाजिक स्तर, क्षेत्रीयता, जातीयता आदि के विषय में भी जानकारी देता है। भाषा–भूगोल की दृष्टि से नाम भाषाई क्षेत्र और भौगोलिक क्षेत्र की जानकारी भी उपलब्ध कराता है। साथ ही, नाम रखने और पुकारने के पीछे सार्थकता का महत्व मानव मनोविज्ञान की ओर संकेत करता है। सहज, सुन्दर, कोमल, प्रभावपूर्ण और निश्चय ही सार्थक नाम व्यक्ति से मिले बिना ही उसकी एक छवि का निर्माण मनोवैज्ञानिक रूप से करता है। इस प्रकार व्यक्ति के जन्म के साथ जुड़े महत्त्वपूर्ण संस्कार 'नामकरण' का जीवन पर आद्यंत गहन प्रभाव पड़ता है। नाम व्यक्ति को समाज से जोड़ता है, उसकी सामाजिक इयत्ता सिद्ध करता है, उसे मनोवैज्ञानिक संबल देता है, उसकी भाषाई अस्मिता सुदृढ़ करता है। नाम का अर्थपूर्ण होना निश्चय ही व्यक्ति के व्यक्तित्व पर भी गहन प्रभाव छोड़ता है।

मनोविज्ञान द्वारा नाम को व्यक्तित्व का सूचक और सामाजिक समूह, परिवार, धार्मिक प्रवृत्तियों, कार्यक्षेत्र और अन्य सामाजिक प्रवृत्तियों का द्योतक माना गया है। सर्वप्रथम फ्रायड द्वारा स्थापित इस मान्यता पर आज तक शोध अध्ययन चल रहे हैं कि नाम व्यक्ति के व्यक्तित्व का केवल सूचक ही नहीं होता वरन् वह उसके व्यक्तित्व को बनाने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नाम व्यक्ति के साथ उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक लगातार जुड़ा रहता है। नाम व्यक्ति विशेष की ओर इंगित करने का साधन तो है ही, साथ ही नाम के माध्यम से सामाजिक समूह, पारिवारिक स्थिति व संबंध, धार्मिक विश्वास, व्यवसाय और अन्य वैयक्तिक जानकारी भी प्राप्त होती है। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने नाम के महत् प्रभाव को रेखांकित करते हुए कहा है कि नाम हमारे आत्म, हमारी चेतना का प्रतिबिम्ब है, हमारे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन है। ऑलपोर्ट और हेल्पर के अनुसार नाम हमारी अस्मिता के सूचक हैं, हमारी इयत्ता के वाहक हैं। मुरे ने नाम के प्रभाव को अन्यतम बताते हुए कहा है कि व्यक्ति के समूचे व्यक्तित्व का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग उसका नाम है। यह इसलिए क्योंकि व्यक्ति के नाम के आधार पर उसके विषय में एक सामान्य दृष्टिकोण अपना लिया जाता है। यह समाज के लोगों द्वारा तो किया ही जाता है, साथ ही स्वयं व्यक्ति अपने बारे में धारणा अपने नाम में निहित अर्थ और गुणों के आधार पर बना लेता है। उसका व्यवहार उसी धारणा से परिचालित होने लगता है और धीरे–धीरे फिर वह नामानुरूप व्यक्तित्व हो जाता है। व्यक्ति के पूरे जीवन में नाम की महत्ता इसलिए है क्योंकि उसके 'आत्म' के परिचायक तत्वों में नाम ही है जो सदैव जन्म से मृत्यु पर्यंत स्थिर बना रहता है। हमारा व्यक्तित्व, हमारी भाषा, हमारे वस्त्र, हमारा स्वभाव– सभी में परिवर्तन आता है– स्थिर है तो वह हमारा नाम ही है।

बहुधा नाम वही पसंद किए जाते हैं जो सामान्य तौर पर समाज में प्रयुक्त होते हैं। बच्चे अपने हमउम्र बच्चों के नामों से मिलते–जुलते नाम ही रखना चाहते हैं, इससे उन्हें उस आयु–वर्ग के समाज में अपनाए जाने का भाव मिलता है। आम तौर पर जो नाम रखे जाने की दृष्टि से बहुत पसंद नहीं किए जाते हैं, वे नाम उस श्रेणी में आते हैं जिन्हें या तो सही ढंग से उच्चरित न किया जाए या उनकी वर्तनी गलत लिखी जाए, या उसे बिगाड़ दिया जाए या फिर उससे मज़ाक उड़ाने का कोई शब्द बना दिया जाए। जिन नामों को दोनों लिंग में प्रयुक्त किया जाए (जो स्त्रीलिंग वाची और पुल्लिग वाची दोनों हों), ऐसे नामों को भी रखना बहुत पसंद नहीं किया जाता। बहुत बार देखा गया है कि अभिनय और लेखन के क्षेत्र से जुड़े लोग अपने नाम को परिवर्तित करके इस क्षेत्र में उतरते हैं, ताकि उस नाम से उनके व्यक्तित्व को 'ग्लैमर',

---

*एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर।

आकर्षण और सम्मान मिल सके। यहाँ ध्यातव्य है कि नाम बदलने मात्र से व्यक्ति को विश्वास है कि लोग उसके उसके व्यक्तित्व को उस छवि में आंकने लगेंगे जो उस नाम से लोगों के मानस में उभरती है। ऐसे असंख्य उदाहरण भारतीय साहित्य व अभिनय जगत में मिल जाएँगे, जैसे– गुलज़ार (वास्तविक नाम– संपूर्ण सिंह), राहुल सांकृत्यायन (केदार पाण्डेय), प्रेमचंद (धनपतराय श्रीवास्तव) इत्यादि। नाम यदि कुछ अलग हटकर और भिन्नता लिए हों तो वे व्यक्तित्व को निश्चय ही वैयक्तिक विशिष्टता प्रदान करते हैं। ऐसे नाम निश्चय ही सुनने वाले के मन में उस नाम के प्रति और नामधारी व्यक्तित्व के प्रति एक जिज्ञासा और कौतुहल का भाव उत्पन्न करते हैं। नाम की यह विशिष्ट भिन्नता उस नामधारी व्यक्ति को भी बचपन से अपने नाम के अर्थ के प्रति सचेत कर देती है। वह व्यक्ति उस नाम द्वारा इंगित गुणों को आत्मसात कर अपने व्यक्तित्व को उसी दिशा में अनायास निर्मित करने लगता है। साथ ही, नाम के साथ जुड़ीं उपाधियाँ भी नाम को वैशिष्ट्य प्रदान करती हैं क्योंकि वह नाम अन्य सामान्य नामों से अलग हटकर दिखाई देने लगता है।

नाम से जुड़ी धारणाएँ और मूल्य सामाजिक मानस में बहुत गहरे बैठ जाती हैं। लोग 'रावण' और 'विभीषण' नाम नहीं रखते, क्योंकि सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से इन नामों के साथ क्रमशः दुष्टता और विश्वासघात का भाव संपृक्त होता है। इस प्रकार नाम के साथ उसके अपने ऐतिहासिक, काल्पनिक (दन्तकथाओं और लोककथाओं में प्रचलित), धार्मिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों से प्रभावित मूल्य जुड़े रहते हैं और यही सामाजिक मानसिकता को आकार देते हैं व नामकरण को दिशा देते हैं। अतः नाम का समाज में महत्व अकथनीय है। यह संपर्क का सोपान तो है ही, साथ ही व्यक्तित्व का पूर्ण परिचायक भी बन जाता है। रूप व्यक्ति–सत्य है, नाम समाज–सत्य है। इस दृष्टि से समाज द्वारा स्वीकृत और प्रशंसित नाम व्यक्ति के व्यक्तित्व को भी सामाजिक स्वीकृति प्रदान करता है और एक आत्मविश्वासपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। बच्चे का नाम माता–पिता/ अभिभावक आदि ही रखते हैं। अतएव नाम उन्हीं की इच्छाओं, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं, प्रवृत्तियों, सांस्कृतिक परम्पराओं आदि का सूचक होता है। ये सभी तत्त्व जन्म के समय से ही बच्चे तक अनायास प्रेषित होने लगते हैं। समझने की आयु तक आते–आते बच्चे को उसके नाम का अर्थ और उससे जुड़ी सामाजिक अपेक्षाओं से परिचित करा दिया जाता है। इन्हीं अपेक्षाओं, प्रवृत्तियों आदि के अनुरूप बच्चे के व्यक्तित्व का निर्माण आरम्भ से ही अनायास होने लगता है। साथ ही सामाजिक स्वीकार्य की इच्छा भी नाम द्वारा इंगित गुणों की दिशा में व्यक्तित्व–निर्माण को अग्रसर करती है।

समाज में विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों का प्रभाव भी नाम पर साफ़ दिखाई देता है। धर्म/ संप्रदाय से सम्बद्ध नाम उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को एक ओर समाज के एक विशिष्ट धार्मिक या सांप्रदायिक वर्ग से जोड़ते हैं, तो दूसरी ओर वे उस व्यक्तित्व में उस धर्म/ संप्रदाय के विश्वासों के प्रति भी निरंतर आस्था और निकटता का भाव जागृत रखते हैं। इसी कारण देवी–देवताओं के नामों पर बहुत नामकरण किए जाते हैं। देवताओं के नामों के बहुसंख्य पर्यायों में प्रतीकात्मक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, जिनके कारण ये नाम हमारे सांस्कृतिक जीवन के अंग हो गए हैं। इन नामों में हमारे जीवन–मूल्य निहित हैं, जिनके बल पर जीवन की गंभीर व्याख्या की जा सकती है। जो नामधारी व्यक्ति इन नामों के सार्थक भाषाई अर्थ को आत्मसात कर लेते हैं, वे उससे जुड़े सांस्कृतिक अर्थ की गरिमा को को भी अपना कर अपने व्यक्तित्व को धीरे–धीरे नामानुरूप ढाल लेते हैं। यही नहीं, धार्मिक नामों द्वारा हमारे सांस्कृतिक, वैचारिक, कलात्मक, ऐतिहासिक और भाषिक विकास को भी समझा जा सकता है। इतिहास के प्राक्–रूप को समझने में ये नाम हमारी सहायता करते हैं तथा भाषिक विकास पर विचार करने के लिए भी ये उपयोगी स्रोत हैं।

साहित्यिक क्षेत्र में नाम और व्यक्तित्व का समागम बहुधा देखा जाता है। बहुत बार साहित्यिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए रचनाकार अपना दूसरा नाम या उपनाम रख लेते हैं, जिसका प्रयोग वे अपने लेखन में बहुलता से करते हैं। अधिकांशतः लेखक अपना वास्तविक नाम भी लिखकर आगे एक छोटा उपनाम प्रयुक्त करते हैं, यथा– सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि। कई बार एक से अधिक भाषा / बोली में लिखने वाले भाषा–परिवर्तन के साथ अपना नाम या उपनाम बदल लेते

हैं। वैद्यनाथ मिश्र ने हिंदी में 'नागार्जुन' और मैथिली में 'यात्री' नाम से सृजन किया। भारतेन्दु ने 'हरिश्चंद्र' नाम से हिंदी और 'रसा' नाम से उर्दू में लेखन किया। इस प्रकार के लेखन हेतु रखे गए 'उपनाम' भले ही वास्तविक नाम से भिन्न होते हैं, परन्तु उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के किसी–न–किसी आयाम, गुण, प्रवृत्ति या स्वभाव से अवश्य प्रेरित होते हैं।

इस प्रकार नामवाची शब्द अपने आप में भाषा और भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता का आगार होते हैं। नाम का अर्थ खोजने के लिए सामाजिक– सांस्कृतिक– भाषिक– भौगोलिक आदि सभी आयामों से होकर गुज़रना पड़ता है। परिचय और पहचान जानने के लिए नाम जानना आवश्यक है। यह परिचय नाम के सामाजिक अर्थ व संदर्भ से ही प्राप्त हो सकता है। भारतीय नाम अपने भीतर छिपी सांस्कृतिकता, सामाजिकता, कर्ण–मधुरता के कारण आज अत्यंत लोकप्रिय हैं। इनके माध्यम से हम अपनी भाषा, संस्कृति व सामाजिक व्यवस्था से नैकट्य स्थापित कर सकते हैं। नाम जब अर्थवान होता है, तब उसका महत्व बढ़ता है और जब उसमें सांस्कृतिकता की सुगंध मिल जाती है, तो वह सशक्त, प्रभावपूर्ण और शाश्वत हो जाता है।

नामकरण की दृष्टि से व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ मूलतः किसी भी भाषा से सम्बद्ध रहें, उनका व्यवहार सभी भाषा–भाषियों को करना पड़ता है। अतः नामों के उच्चारण में हमें अलग–अलग भाषाओं के उच्चारण का प्रभाव तत्काल प्राप्त हो जाता है। इन नामों के आधार पर सभी भाषा–भाषी जुड़ने का प्रयास भी करते हैं। यहाँ नाम को बदलने का प्रयास न होकर अपनी उच्चारण– सुविधा के अनुसार उसका व्यवहार करने की चेष्टा ही प्रमुख है। नाम चाहे व्यक्ति के हों या स्थान के, अपने–आप में सार्वभौमिक होते हैं। वे स्वयं में विशिष्ट और व्यक्तिपरक होते हैं। इन नामों की पहचान के लिए उनका इतिहास जानना आवश्यक हो जाता है और यदि हम नामों की भाषा पहचानते हैं तो इतिहास के साथ भूगोल और भाषाई आयाम से भी जुड़ते हैं। अतः नाम से हमें भाषा के क्षेत्र, उसकी भौगोलिक स्थिति, उसके इतिहास, उसकी संस्कृति का भाषाई तौर पर पता चलता है। इतिहास से सामाजिक व सांस्कृतिक संरचना का पता चलता है। इस प्रकार नाम हमारे व्यक्तित्व पर अपनी भाषाई संरचना द्वारा भी प्रभाव डालते हैं। नाम की भाषाई संरचना के विषय में सचेत होकर हम स्वयं को एक भाषा विशेष के समूह से जोड़ लेते हैं। यही नाम भाषा के बहाव के साथ–साथ हमें ले चलता है और उस यात्रा में हम अपना इतिहास, अपनी भौगोलिक स्थिति, अपनी सामाजिक इयत्ता और सांस्कृतिक अस्तित्व भी खोज निकालते हैं। इस सबका सीधा प्रभाव हमारे व्यक्तित्व के विकास और निर्माण पर पड़ता है।

ज्योतिषशास्त्र का प्रभाव न केवल हमारे जीवन वरन् हमारे व्यक्तित्व पर भी पड़ता है। भारतीय ज्योतिष में नामकरण बहुत महत्त्वपूर्ण संस्कार होता है। बालक के जन्म के साथ उसकी जन्मकुंडली का निर्माण जन्म के सही समय के ग्रह–नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार किया जाता है। उसी गणना में बालक की राशि सुनिश्चित की जाती है तथा अमुक राशि का द्योतन करने वाले अक्षरों में से किसी एक अक्षर से आरम्भ होने वाला नाम उस बालक को प्रदान किया जाता है। नामकरण के समय बहुत सोच–विचार, गणना, मनन के पश्चात् उचित नाम चुना जाता है। बालक के जन्म–नक्षत्रों और राशि के अक्षरों से मेल खाने वाला नाम निश्चय ही अपना प्रभाव उस बालक के व्यक्तित्व पर डालता है। नाम के अक्षर राशि के गुणों को द्योतित करते हैं और वे गुण स्वभावतः बालक में या तो होते ही हैं या फिर कालांतर में धीरे–धीरे विकसित होने लगते हैं। जन्मकुंडली में राशि और ग्रहों के स्वरूप के समन्वय से ही फलाफल का विचार किया जाता है। प्रत्येक राशि के अक्षर निश्चित होते हैं। इन्हीं अक्षरों के आधार पर राशि विशेष में जन्मे व्यक्ति का नामकरण क्या जाता है। वह नाम उस व्यक्ति का स्वभाव बहुत हद तक दर्शाता है। वह विशिष्ट अक्षरयुक्त नाम एक राशि विशेष से जुड़ा है और उस राशि का प्रभाव उस व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक अंग पर अनुभव किया जा सकता है। साथ ही, इन राशियों के स्वामियों के स्वभावानुसार भी व्यक्ति का जीवन संचालित होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय ज्योतिष की वैज्ञानिक गणना के अनुसार व्यक्ति का नाम बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यह नाम अपने भीतर नक्षत्रों–ग्रहों–राशियों की अपार क्षमता को समेटे व्यक्ति के व्यक्तित्व से जुड़कर उसके जीवन को परिभाषित करता है। राशि के समवेत प्रभाव को ध्यान में रखते हुए

उसी अक्षर से नाम रखा जाता है, जो उस राशि के लिए निर्धारित हो। तभी नाम के नित्य उच्चारण और प्रयोग द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व के गुणों को सबल किया जा सकता है। अतः नाम रखने की प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण है। सार्थक और राशि के अनुसार रखा गया नाम अपने गुणों और विशिष्टताओं को व्यक्ति के जीवन में फलित करके उसका जीवन–मार्ग उन्नत करता है।

वस्तुतः वाणी का काम जानकारी देना मात्र नहीं है। शब्द प्रवाह के साथ उनके प्रभावोत्पादक चेतन तत्व भी जुड़े रहते हैं और वे ध्वनि–कम्पनों के साथ घुले रहकर जहाँ भी टकराते हैं, वहाँ चेतनात्मक हलचल उत्पन्न करते हैं। शब्द को पदार्थ–विज्ञान की कसौटी पर भौतिक तरंग स्पंदन भर कहा जा सकता है, पर उसकी चेतना को प्रभावित करने वाली संवेदनात्मक क्षमता की भौतिक व्याख्या नहीं हो सकती। वह विशुद्ध भावनात्मक, संवेदनात्मक और आध्यात्मिक होती है और इन दृष्टियों से ही उसकी परख होनी चाहिए। इस प्रकार भौतिकशास्त्र में जो स्पंदन या तरंग मात्र है, उसका अर्थ संगीतशास्त्र में कुछ और तथा साहित्य, अध्यात्म व दर्शन में कुछ और है एवं भाषाशास्त्र में कुछ अलग ही अर्थ प्रतिपादित होता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने पदार्थ विज्ञान से कुछ आगे बढ़कर वाणी के वैचारिक प्रभाव की गरिमा को स्वीकार है। यही वैचारिक और संवेदनात्मक क्षमताएँ शब्द (नाम) के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व को अनायास ही प्रभावित करती हैं। नाम की पृष्ठभूमि में पूरा भाषाई और सामाजिक व्यवहार विद्यमान रहता है। इस प्रकार नाम और व्यक्तित्व का संबंध निश्चय ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ :–

1. 'उपनाम : एक अध्ययन', प्रथम खंड, डॉ. शिवनारायण खन्ना, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1978।
2. 'नामों का भाषाविज्ञान', डॉ. राजमल बोरा, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1992।
3. 'भारतीय ज्योतिष', नेमिचंद्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003।
4. 'भाषा', ब्लूमफील्ड, अनुवादक– विश्वनाथ प्रसाद, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1968।
5. 'भाषा और समाज', डॉ. रामविलास शर्मा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लि., नई दिल्ली, 1961।
6. 'हिंदी भाषा', डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहबाद, 1998।
7. 'हिंदी शब्दानुशासन', किशोरीदास वाजपेयी, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2023
8. 'शब्द ब्रह्म नाद ब्रह्म', ब्रह्मवर्चस (सं.), अखंड ज्योति संस्थान, मथुरा, 1998।
9. 'मोहन राकेश का कथासाहित्य (सर्वनामों का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन), डॉ. सुजाता चतुर्वेदी, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1998।
10. 'हिंदी भाषा की ध्वनि संरचना', डॉ. भोलानाथ तिवारी, साहित्य सहकार, दिल्ली, 1997।

'बनाना रिपब्लिक': दलित-चेतना के उत्थान की दस्तक

डॉ. गरिमा तिवारी*

शिवमूर्ति ग्रामीण संवेदना के कुशल चितेरे कहानीकार हैं। 'कुच्ची का कानून' संग्रह की उनकी लगभग सभी कहानियाँ भारतीय लोक के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पक्षों का अत्यंत सजीव, प्रभावी एवं यथार्थ चित्रण करती हैं। 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर !, बनाना रिपब्लिक, कुच्ची का कानून और जुल्मी, इन चारों कहानियों के वैविध्यपूर्ण किन्तु प्रासंगिक कथावस्तु ने शिवमूर्ति को ग्रामीण जीवन के चित्रण में निपुण, अग्रिम पंक्ति का रचनाकार सिद्ध कर दिया है। लोकजीवन जितना शांतिपूर्ण, सौहार्द्रपूर्ण और उत्सवधर्मी होता है उतना ही प्राचीनता के तिलिस्म में जकड़ा हुआ भी होता है। परंपरा के ऐसे ही तिलिस्म में प्रगतिशीलता जकड़ जाती है, आधुनिक विचारधारा दम तोड़ देती है और लोकतंत्र तथा मतदान ठंडे बस्ते में डाल दिए जाते हैं। इसीलिए, व्यंग्य में शिवमूर्ति ने इस कहानी को 'बनाना रिपब्लिक' नाम दिया है।

शिवमूर्ति की कहानी 'बनाना रिपब्लिक', ग्राम–प्रधानी के चुनाव में दलित वर्ग को मिली आरक्षित सीट के कारण, दलितों की बदलती सामाजिक और राजनीतिक चेतना का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करती है। कहानीकार ने इस विषय को केंद्र में रखकर, पूरे ग्रामीण जीवन की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण तो किया ही है, साथ ही साथ इस व्यवस्था में व्याप्त सवर्णों के एकाधिकार, उनकी शोषणकारी नीतियों एवं उनमें निहित श्रेष्ठता बोध पर भी कटाक्ष किया है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में लोकतंत्र के सबसे बड़े उत्सव कहे जाने वाले चुनावों में व्याप्त भ्रष्ठाचार, अराजकता और बेईमानी की भी कलई शिवमूर्ति ने अपनी इस कहानी में खोली है। शिवमूर्ति दलित चेतना के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। इनकी कहानियों के पात्र, समाज की सुख–सुविधा और साधनों से वंचित लोग हैं, मेहनतकश मजदूर हैं और सामाजिक व्यवस्था में हाशिए पर हैं। लेकिन एक प्रगतिशील रचनाकार होने के कारण शिवमूर्ति, दलित चेतना के उत्थान को इस कहानी की विषयवस्तु बनाते हैं। कहानी के अंत में ग्राम–प्रधानी के चुनाव में जग्गू की जीत उनकी इसी सोच की परिणति है। "अगर हम 'बनाना रिपब्लिक' शब्द के इतिहास पर प्रकाश डालें तो हम देखते हैं कि 'केला गणतंत्र' जिसे अंग्रेजी में मूलरूप से 'बनाना रिपब्लिक' कहा जाता है, राजनैतिक रूप से अस्थिर देश होता है जिसकी अर्थव्यवस्था किसी ऐसे विशेष कृषि, खनिज या अन्य उत्पादन के निर्यात पर निर्भर हो जिसकी विश्व भर में भारी माँग है।[1]"अगर हम इसके नामोत्पत्ति पर ध्यान दें तो ऐसा माना जाता है कि बीसवीं शताब्दी के आरंभिक भाग में कई अमेरिकी कंपनियों नें मध्य अमेरिका में होण्डुरस और उसके पड़ोसी देशों में केला उगाने के बड़े बागान चलाए, क्योंकि वहाँ की जलवायु और भूमि इसके अनुकूल थी और उस फल की संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य विकसित देशों में भारी माँग थी। यूनाइटेड फ्रूट ऐसी ही एक प्रमुख कंपनी थी। इन कंपनियों ने फिर इन देशों में भारी हस्तक्षेप करा और समय–समय पर उनमें सत्ता बदलवाई। ऐसे देशों में सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन और राजनीतिक उत्पीड़न सामान्य स्थिति बन गया। ऐसे देशों को सन 1901 में अमेरिकी लेखक ओ हेनरी ने व्यंग्य कसते हुए इन्हें 'बनाना रिपब्लिक' का ह्रासकारी नाम दिया, जिससे तात्पर्य था कि जिस देश पर फल बेचने वाले व्यापारियों ने कब्ज़ा किया हो उसका क्या अस्तित्व है?"[2]

शिवमूर्ति ने भी अपनी कहानी 'बनाना रिपब्लिक' में इसी बात की तरफ संकेत किया है कि भले ही लोकतान्त्रिक प्रक्रिया से ग्राम प्रधानी का चुनाव कराया जा रहा हो, जिसमें दलित आरक्षित सीटों पर दलित प्रत्याशी चुनाव लड़ रहें हैं, लेकिन उसके पीछे असली दिमाग तो ठाकुर जैसे सत्ता–लोलुप वर्ग का ही है। अतः शिवमूर्ति चिंतित थे कि कहीं दलितों की स्थिति भी 'बनाना रिपब्लिक' कहे जाने वाले देशों की तरह ही न हो जाए। लेकिन इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने, भारतीय मतदान प्रक्रिया के खोखलेपन को ही नहीं उद्घाटित किया है, बल्कि दलित चेतना को दलितों की मुक्ति की राह के रूप में भी चित्रित किया है।

*** सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार।**

ग्रामीण जीवन और संवेदना से गहरे स्तर पर सरोकार रखने वाले कथाकार शिवमूर्ति ने इस कहानी की विषयवस्तु एक गाँव में होने वाले ग्राम–प्रधानी के चुनाव को बनाया है। निर्वाचन आयोग द्वारा ग्राम–प्रधानी के चुनाव में आरक्षण के तहत ग्राम–प्रधान की सीट दलित कोटे में डाल दी जाती है, तत्पश्चात गाँव की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति किस तरह से परिवर्तित होती है, यही इस कहानी का केंद्र–बिंदु है। निर्वाचन आयोग का यह निर्णय, सामाजिक संरचना में शीर्ष पर प्रतिष्ठित अपनी गुरुता और श्रेष्ठता के दंभ से आप्लावित, तथाकथित सवर्णों के लिए असह्य है। लेकिन वे मजबूर हैं, कुछ नहीं कर सकते, सिवाय अफ़सोस के। वे दलितों के हाथ में गाँव की कमान चले जाने की बात सोच कर ही व्याकुल हो जाते हैं। जिस गाँव पर उनका हमेशा से वर्चस्व रहा है, अब वह सत्ता दलितों के हाथ में चली जाएगी, वे लोग सत्ता संभालेंगे जिन्हें उन्होंने आज तक मनुष्य भी नहीं समझा, यह बात सवर्णों को स्वीकार नहीं। अंत में ठाकुर एक युक्ति निकालता है। वह कहता है कि– 'मैं नहीं बन सकता तो मेरा आदमी बने। लाखों की कुर्सी दूसरे के पास क्यों जाए?[3] वह अपनी तरफ से जग्गू को, तमाम तरह के प्रलोभन देकर, बहुत सारे सपने दिखा कर, ग्राम–प्रधानी का चुनाव लड़ने के लिए तैयार करता है। जब जग्गू अपने प्रधानी के चुनाव लड़ने की बात अपने पिता को बताता है तो वह जग्गू से कहते हैं दृ'कहा नहीं कि मुझे पागल कुत्ते ने काटा है जो ठाकुरों–बाभनों के गाँव में परधानी लड़ूँगा? लड़कर उनकी आँख का काँटा बनना हैं क्या?'[4]

जग्गू के पिता के उक्त कथन से ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में निम्न वर्ग की स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। शिवमूर्ति ने ग्राम्य–जीवन की सहजता, सरलता के साथ ही उसकी रूढ़िगत परम्पराओं, सड़ी–गली मान्यताओं, अंधविश्वासों, कुप्रथाओं का भी यथार्थ एवं प्रभावी चित्रण किया है। समाज का तथाकथित उच्च वर्ग उत्पादन के हर साधन, विकास की हर नीति का उपयोग सिर्फ और सिर्फ निजी हित के लिए करता है। वे साम, दाम, दंड और भेद हर तरह से अपने सामजिक वर्चस्व को बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध है। उनकी यह विचारधारा दलितोत्थान के राह की सबसे बड़ी बाधा हैं। वे स्वयं को परंपरा का रक्षक मानते हैं और परंपरागत वर्गों में बटी हुई सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर हैं। जिसमें समाज की डोर ब्राम्हणों, ठाकुरों के हाथ में होती है। ठाकुर एक ऐसे ही सुविधाभोगी, स्वार्थी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो सत्ता प्राप्ति के लिए जग्गू जैसे कम पढ़े–लिखे व्यक्तियों को बहला–फुसला कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। उनके लिए सत्ता सिर्फ लूट–खसोट कर अपना घर भरने के लिए और अपनी धाक ज़माने के लिए है। शिवमूर्ति ठाकुर के द्वारा ही ग्राम–प्रधान के रूप में किए जाने वाले भ्रष्टाचार की पोल खोलते हैं, जहाँ ठाकुर जग्गू से कहता है– "सालाना पंद्रह–बीस लाख तक खर्च करने का चान्स रहता है। मनरेगा की मद से तो चाहे जितना निकालो। बस कागज का पेटा पूरा करते रहो। नीचे से ऊपर तक सबका मुँह बंद करने के बाद भी रूपए में चार आना कहीं गया नहीं। पाँच साल में २५ लाख तक की बचत।"[5] यह लोकतंत्र का कटु यथार्थ है और सत्ता का सच्चा चरित्र। ग्राम–प्रधान सत्ता की सबसे छोटी ईकाई है जिसमें व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल शिवमूर्ति ने इस कहानी में खोली है। वर्तमान में पद–प्रतिष्ठा की आड़ में भ्रष्टाचार का बोल–बाला है। क्लर्क से लेकर अधिकारी तक जनता को बेवकूफ बना अपना बैंक–बैलेंस बढ़ा रहे हैं। उनके लिए जनता का हित नहीं बल्कि स्वहित सर्वोपरि है। सरकारी सेवाओं का लाभ आम–जनता तक नहीं पहुँच रहा क्योंकि बिचौलिओं में ही सरकारी मद बाँट दिया जा रहा। ठाकुर जग्गू से कहता है कि "वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन, विकलांग पेंशन, मिड डे मील और पता नहीं कितनी–कितनी मदों से रूपया पानी की तरह बरसता है।"[6] पानी की तरह बरसने वाला पैसा जनता का है लेकिन जनता को सिर्फ योजनाओं का नाम गिना दिया जाता है। यह शर्मनाक हकीकत हमारे लोकतंत्र की सच्चाई है।

शिवमूर्ति को जाति–व्यवस्था की कमजोरियों का ज्ञान है। वह जानते हैं कि "ऐसी एक बड़ी आबादी है जो आज भी जाति–व्यवस्था को ब्रम्हा की लकीर मानती है। वह मानती है कि सवर्णों के गाँव में दलित को परधानी की कुर्सी पर बैठाना सवर्णों के सिर पर बैठाना हुआ। लोहिया तो समाजवाद ला नहीं पाए लेकिन आज की सरकारें, लगता है, ला के रहेंगी ।"[7] शिवमूर्ति समाजवादी व्यवस्था के पक्षधर रचनाकार हैं। वह एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था बहाल करने के पक्षधर हैं, जिसमें जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, परंपरा के नाम पर किसी का शोषण न हो, किसी को भी उनके अधिकारों से वंचित न किया जाए, और न किसी को हाशिए पर रखा जाए, बल्कि सभी को विकास के उचित अवसर उपलब्ध कराए जाए।

'बनाना रिपब्लिक' कहानी में शिवमूर्ति ने ग्राम–प्रधान की चुनावी प्रक्रिया का सटीक एवं व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। प्रत्येक उम्मीदवार अपने प्रतिद्वंदी को चुनावी शिकस्त देने के लिए हर जतन करता है। लोगों को रिश्वत के रूप में खाना खिलाता है, उन्हें तमाम तरह के प्रलोभन देता है, चुनाव–प्रचार में लाखों रूपए खर्च करता है। चुनाव–आयोग के निर्देशों के बावजूद भी प्रत्याशी मतदाताओं को अपने तरीके से लुभाने का भरपूर प्रयास करते हैं। कोई भी ईमानदारी से जीत हासिल करने का प्रयास नहीं करता, क्योंकि इसकी गुंजाइश ही नहीं है। निःसंदेह इस प्रकार का निर्वाचन लोकतंत्र की आत्मा का हनन है। प्रधान बनने के लिए दलित जग्गू भी सारे उपक्रम करता है, अपने घंटे बेचता है, पर्चा भरने के लिए कई प्रमाण–पत्र बनवाता है, अपनी जमीन बेचता है और सबसे विनती भी करता है। लेकिन इन सबके पीछे दिमाग ठाकुर का रहता है जो जग्गू को चुनाव में खड़ा करके सत्ता प्राप्ति का सपना देखता है। जग्गू को लगता है "सचमुच अकल की रोटी खाते हैं ए ठाकुर–बाभन। कितनी दूर तक सोचते हैं। इनसे पार पाना कठिन है।"[8] दलितों पर अपनी हुकूमत बनाए रखने के लिए सवर्णों ने सबसे पहले उनका आत्मविश्वास ख़तम किया। उनके दिलों–दिमाग में इस बात को बैठा दिया गया कि बुद्धि पर भी सिर्फ सवर्णों का ही हक है। इसीलिए जग्गू को भी अपने से ज्यादा ठाकुर की बुद्धि पर भरोसा है। लेकिन शिवमूर्ति दूरदर्शी रचनाकार हैं। उन्हें इस बात का विश्वास था कि आज नहीं तो कल दलितों में भी अपने उत्थान की चेतना अवश्य पैदा होगी। वे अपना अधिकार अवश्य ले कर रहेंगें। जग्गू उनके इसी विश्वास का प्रतीक है। उनका उद्देश्य सिर्फ जग्गू को प्रधान बना कर ही पूरा नहीं होता बल्कि वह इसके बहाने सदियों से वंचित दलितों के हक के लिए भी आवाज़ बुलंद करते हैं। समाज में उनको भी बराबरी का स्थान दिलाना चाहते हैं। वह अपनी बात को एक पात्र के माध्यम से रखते हैं जिसमें एक पात्र कहता है कि "परधानी का रिजरवेशन तो लालीपाप है। हमारा मुँह बंद करने के लिए। हमें तो हर चीज में हिस्सा चाहिए। जगह–जमीन में, ताल–पोखर में, खेती–बारी में, महल–अटारी में। हजारों साल से सारी धन–धरती पर उनका कब्ज़ा रहा है। अब सौ पचास साल हमारा भी रहे। हम भी जानें कि जगह–जमीन पर मालिकाना हक़ मिलने का सुख कैसा होता है।"[9] शिवमूर्ति को भलीभांति यह ज्ञात है कि आरक्षण के कारण प्रधानी की सीट दलितों के कोटे में आ तो गई है लेकिन उनको मोहरा बना कर ठाकुर और ब्राह्मण ही सत्ता चलाएँगे। इसीलिए वे कहते हैं–"परधानी उसी तरह की होगी जैसे कैरेबियन देशों के गणतंत्र। मल्टीनेशनल कंपनियों के हाथ की कठपुतली। कुर्सी मिलेगी दलित को और मजा मारेंगे ठाकुर–बाभन ।"[10] लेकिन शिवमूर्ति ऐसा होने देना नहीं चाहते थे इसीलिए उन्होंने जग्गू जैसे दलित चेतना के वाहक पात्र की सर्जना की जो कहता है–"गुलामगीरी करे ससुरा अँगूठाछाप मुन्दर और उसकी आद–औलाद। मैं बीस साल पहले का हाईस्कूल पास। फस्ट डिवीजन। साइंस–साइड में इंटर फेल ठाकुर की गुलामगीरी करूँगा। मेरा पैंतरा जीतने के बाद देखना ।"[11]

यक़ीनन शिवमूर्ति इसी चेतना को जगाने का स्वप्न देख रहे थे। अंततः जग्गू की जीत होती है और वह पैंतरा भी बदलता है। जीतने के बाद पलक पावड़ें बिछा कर उसका इंतज़ार कर रहे ठाकुर के पास न जाकर अपने मुहल्ले की तरफ जग्गू का मुड़ जाना रचनाकार के इसी उद्देश्य को सार्थक करता है। अंत में ठाकुर द्वारा स्वयं को अपमानित और उपेक्षित महसूस करना गाँव में ठाकुरों और ब्राह्मणों के वर्चस्व की समाप्ति और दलितों के लिए एक नई आशा एवं विश्वास के साथ, एक नए युग के आगमन का सूचक है। शिवमूर्ति इस कहानी के माध्यम से दलित चेतना के जागरण के अपने प्रयास में सफल रहे हैं। इसीलिए इस कहानी को २१वीं सदी में दलित चेतना के उभार की सर्वाधिक आधुनिक कहानी कहा जाता है। इस कहानी में शिवमूर्ति नें उत्तर प्रदेश समेत कई राज्यों में दलितों के उत्थान की चेतना को उसके यथार्थ रूप में चित्रित किया है। उनकी किस्सागोई के माध्यम से स्वानुभूत को सर्वानुभुत बना देने की यह कला अत्यंत ही सराहनीय है। इस कहानी के माध्यम से उन्होंने दलित चेतना की दस्तक को व्यापक फलक पर प्रस्तुत किया है। यथार्थपरक होने के कारण यह कहानी अत्यंत स्वाभाविक लगती है।

अगर हम इस कहानी के विकास–क्रम को देखें तो पाते हैं कि कहीं भी रचनाकार ने कहानी को नाटकीय मोड़ नहीं दिया है और न पाठक कहीं भी, किसी भी घटना के चित्रण में अस्वाभाविकता या काल्पनिकता का समावेश पाता है बल्कि एक अत्यंत साधारण और यथार्थ विषय–वस्तु को शिवमूर्ति ने इस कदर सरलता के साथ, देशज भाषा में प्रस्तुत किया है कि कोई भी पाठक उनके लेखन की इस प्रतिभा का कायल हुए बिना नहीं रह पाता। यह कहानी नाहरगढ़ गाँव में होने वाले पंचायत चुनावों पर केन्द्रित है, जहाँ आरक्षण

की वजह से परधानी कोटा हरिजनों के पक्ष में आ जाता है, वहीँ गाँव के ठाकुरों–ब्राह्मणों को अपना वर्चस्व खतरे में नजर आता है। उनके लिए यह विकट स्थिति है क्योंकि अब "जिसके घर पर साबूत फूस का छप्पर और पैरों में चप्पल तक नहीं है, वह भी परधानी का सपना देख रहा है।"[12] लेकिन वे असहाय है, फिर भी तरकीब निकालते हैं, गाँव की परधानी को बनाना रिपब्लिक बनाया जा सकता है, अर्थात किसी दलित को आगे करके सत्ता अपने पास रखी जा सकती है। ठाकुर जग्गू को और पदारथ सिंह मुन्दर और फुलझरिया को अपनी तरफ से प्रत्याशी घोषित करते हैं। जग्गू अपना पैसा, शरीर सब कुछ झोंक देता है, ठाकुर को विश्वास है कि जग्गू उनका पालतू बन कर रहेगा और उन्हें धोखा नहीं देगा। जग्गू का पिता उसे पहले ही ठाकुर और मुंशी से आगाह करता है लेकिन जग्गू यह कहता है कि जीतने पर वह पैंतरा बदलेगा। चुनाव का परिणाम आता है और जग्गू की जीत होती है। ठाकुर बेसब्री से उसके लिए ठकुराइन से माला गुथवाते हैं और उसकी प्रतीक्षा करते हैं कि जग्गू पहले उन्हीं का आशीर्वाद लेने आएगा लेकिन जग्गू पहले अपने टोले की तरफ मुड़ जाता है। ठाकुर को धक्का लगता है, गाली देते हैं लेकिन समय का रुख भांप कर खुद जग्गू से मिलने उसके टोले में जाते हैं, जहाँ नाच–गाना हो रहा होता है। वहाँ जा कर न चाहते हुए भी, स्वार्थवश दलितों के हाथ का पानी पीना पड़ता है और कमर भी हिलानी पड़ती है। यह उनकी सबसे बड़ी पराजय है ,उनके सदियों से संचित जातीय और वर्गीय स्वाभिमान पर करार प्रहार है, लेकिन वह असहाय हैं और जग्गू जीवन में पहली बार सत्ता के सुख से आह्लादित। इस तरह शिवमूर्ति दलित चेतना की राजनीतिक और सामाजिक दस्तक के चित्रण में सफल होते हैं। गाँव समाज में बदलते जातीय और सत्ता के समीकरण का रचनाकार ने अत्यंत सफल चित्रण किया है। निःसंदेह हम कह सकते हैं कि २१वीं सदी की हिंदी कहानी को शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों के माध्यम से एक नवीन फलक दिया है और अपने रचनाकर्म से एक बार पुनः साहित्य की परिधि में गाँवों को प्रतिष्ठित किया है, लेकिन एक नई सोच, नई ताजगी और नवीन ऊर्जा के साथ।

सन्दर्भ–सूची :–

1. Dario A. Euraque (1996) Reinterpreting the Banana Republic. Region and State in Honduras, 1870-1972. Chapel Hill, North Carolina: University of North Carolina Press पृष्ठ–44।
2. O Henry (1904) Cabbages and Kings, New York City Doubleday, Page & company,. पृष्ठ 132, 296.
3. कुच्ची का कानून : शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1–बी,नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली –110 002 पहला संस्करण : 2017, पृष्ठ सं० –35।
4. वही, पृष्ठ सं० –34–35।
5. वही, पृष्ठ सं० –35।
6. वही, पृष्ठ सं० –35।
7. वही, पृष्ठ सं० –39।
8. वही, पृष्ठ सं० –45।
9. वही,, पृष्ठ सं० –56।
10. वही,, पृष्ठ सं० –56–57।
11. वही, पृष्ठ सं०–57।
12. वही, पृष्ठ सं० –42।

पर्यावरणीय समस्या के समाधान हेतु शिक्षक-शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन

डॉ. अल्पना शर्मा*

सारांश :– भारतीय मान्यता अनुसार समस्त पदार्थ पुरूष व प्रकृति के संयोग से निर्मित हुए हैं इस प्रकार प्राणी जगत (चर एवं अचर) सभी की माँ पृथ्वी है। **'माता भूमि पुत्रोऽहंपृथिव्या'** बीसवीं शताब्दी में मनुष्य ने तीव्र गति से पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया है, जिसके फलस्वरूप आज मानव समाज को पर्यावरण की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। पर्यावरण संबंधित अध्ययन करने व कराने से हमें वर्तमान पर्यावरण की गुणवत्ता ज्ञान होगा वरन् हम अपने पर्यावरण को संरक्षित कर किस प्रकार अपना अस्तित्व बनाए रख सकते हैं, इसकी भी जानकारी प्राप्त होगी। राष्ट्रीय एवं सामाजिक विकास में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस विषय पर अनेक समितियों व गोष्ठियों में चर्चा की गई है। पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के संबंध में सचेतना, बोध, अभिवृत्ति तथा मूल्यों का विकास करना है। पर्यावरण शिक्षा के संदर्भ में अध्यापक शिक्षा का आदर्श पाठ्यक्रम में पर्यावरण नैतिकता का ज्ञान, पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन, पर्यावरणीय अभिवृत्ति का निर्माण, ज्ञान–बोध से चिंतन स्तर तक क्रियाएँ, वैदिक संस्कृति में निहित मूल्यों को शामिल करते हुए सैद्धान्तिक की अपेक्षा क्रियात्मक अभिवृत्ति को अपनाना होगा।

पर्यावरण शब्द 'परि' तथा 'आ' उपसर्ग वर्ग में 'वरण' शब्द जोड़कर संपन्न हुआ है, जिसका अर्थ है चारों ओर से वरण अथवा आवरण अधिकार अथवा भरण करना। यह अंग्रेजी के एनवायरमेंट (enviornment) का अनुवाद है जो दो शब्दों एनवायरन् (enviorn) और मेंट (ment) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है आवृत्त करना। इसके साथ ही आङ्पूर्वक वरण शब्द का प्रयोग भी संस्कृत ग्रंथ 'शब्दार्थ–कौस्तुभ' में हमें प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है, 'ढकना, छिपाना, घेरना, ढक्कन, पर्दा, घेरा, चारदीवारी, वस्त्र, कपड़ा और ढाल। इसी ग्रंथ में संस्कृत के उपसर्ग 'परि' का अर्थ–सर्वतोभाव, अच्छी तरह, चारों ओर तथा आच्छादन आदि के रूप में मिलता है और 'आङ्' भी संस्कृत का एक उपसर्ग है, जिसका अर्थ, 'समीप, सम्मुख और चारों ओर से होता है। वरण शब्द संस्कृत के 'वृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ, 'छिपना, चुनना, ढकना, लपेटना, घेरना, बचाना आदि है। इसी प्रकार पर्यावरण परि+आवरण से बने शब्द का अर्थ, 'चारों ओर से ढंकना, चारों ओर से घेरना या चारों ओर का घेरा' होगा। अतएव वैज्ञानिक कोशकारों ने इसका अर्थ, 'पास पड़ोस की परिस्थितियाँ और उनका प्रभाव' के रूप में माना है। इस प्रकार जो चारों ओर से घेरे हुए हैं वह पर्यावरण है। यह पर्यावरण स्थलमण्डल, जलमण्डल एवं वायुमण्डल का सम्मिलित रूप है तथा भौगोलिक पर्यावरण का आधार है। पृथ्वी का उद्भवन, उसका शीतलन, वायुमंडल का निर्माण, वनस्पति एवं जीवन की उत्पत्ति आदि अनेक तंत्रों का सामूहिक नाम पर्यावरण है, जो संपूर्ण जगत को नियंत्रित करता है तथा एक दूसरे से अंतर संबंधित है, इसे 'मिल्यूं' की संज्ञा भी दी गई है। इसे 'हैबीटाट' भी कहा गया है जिसका अर्थ है 'आवास'। संपूर्ण जैव–मंडल को कवच देने वाले दो प्रमुख तत्व हैं–

1. प्राकृतिक तत्व अर्थात मानवीय प्रयत्नों के बिना प्रकृति प्रदत्त सुविधाएँ यथा– वायु, जल, वर्षा, भूमि, नदी, पर्वत इत्यादि एवं
2. मानवीय तत्व अर्थात अप्राप्त की प्राप्ति में प्रकृति का संरक्षण।

भारतीय मान्यता अनुसार समस्त पदार्थ पुरूष व प्रकृति के संयोग से निर्मित हुए हैं इस प्रकार प्राणी जगत (चर एवं अचर) सभी की माँ पृथ्वी है। **'माता भूमि पुत्रोऽहंपृथिव्या'** ज्योतिष के मूल आधार नक्षत्र, राशि

(सहा. प्रो.), आई.ए.एस.ई (मानित विश्वविद्यालय), गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर, चूरू– राजस्थान।

और ग्रहों को भी पर्यावरण के इन अंगों जल–भूमि–वायु आदि से जोड़ा गया है और अपने आधिदैविक और आधिभौतिक कष्टों के निवारण के लिए इनकी पूजा–पद्धति को बताया गया है।

भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं गीता में कहा है– **'अश्वत्थः सर्व वृक्षा वृक्षाणां'** अर्थात् वृक्षों में पीपल मैं हूं... मां जगदंबा ने स्वयं कहा है– **'अहं ब्रह्म–स्वरूपिणी, मत्तः प्रकृति पुरुषात्मकं जगत शून्यं चाशून्यं च'** अर्थात् – प्रकृति पुरुषमय विश्व मुझी में है, मैं हूं शून्य–अशून्य, मैं हूं ब्रह्म–स्वरूपिणी, सर्वमयी मुझको जो जाने, वही मनुज है धन्य...।

पर्यावरण संकट एवं जन जागृति :– बड़े पर्यावरण संकट को देखते हुए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा किया जाए। पर्यावरण का संरक्षण तथा सुरक्षा में योगदान करना समाज के प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक उत्तरदायित्व है क्योंकि यह सत्य है कि हमारा घर, परिवार तथा समाज पर्यावरण के ही अंग हैं तथा हमने अपनी संस्कृति का विकास इसी पर्यावरण के सहयोग से किया है। वर्तमान की जीवन शैली में पर्यावरण की सुरक्षा करना अत्यंत आवश्यक है।

बीसवीं शताब्दी में मनुष्य ने तीव्र गति से पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया है, जिसके फलस्वरूप आज मानव समाज को पर्यावरण की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। पर्यावरण संबंधित अध्ययन करने व कराने से हमें वर्तमान पर्यावरण की गुणवत्ता ज्ञान होगा वरन् हम अपने पर्यावरण को संरक्षित कर किस प्रकार अपना अस्तित्व बनाए रख सकते हैं, इसकी भी जानकारी प्राप्त होगी। पर्यावरण अध्ययन का महत्त्व मुख्य रूप से निम्नलिखित क्षेत्रों में है–

1. वर्तमान पर्यावरण गुणवत्ता के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान।
2. पर्यावरण गुणवत्ता पर प्रतिकूल तथा अनुकूल प्रभाव डालने वाले कारकों की जानकारी।
3. विभिन्न वर्तमान तथा भावी पर्यावरणीय संकटों का ज्ञान तथा उनसे निपटने के कारगर उपायों की जानकारी।
4. पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से हमारे समाज को पीढ़ी के हितों की सुरक्षा करना।
5. पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन के विभिन्न उपायों का क्रियान्वयन करना।
6. पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन के लिए जनता में जागरूकता पैदा करना।

पर्यावरण एवं अध्यापक शिक्षा–

राष्ट्रीय एवं सामाजिक विकास में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस विषय पर अनेक समितियों व गोष्ठियों में चर्चा की गई है। पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के संबंध में सचेतना, बोध, अभिवृत्ति तथा मूल्यों का विकास करना है। पर्यावरण शिक्षा की पाठ्यवस्तु को प्राथमिक स्तर से प्रारंभ किया जाता है। **कोठारी शिक्षा आयोग** के अनुसार ''पर्यावरण क्रियाओं में प्रकृति का अध्ययन भौतिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल तथा नागरिक शास्त्र में किया जाए। रचनात्मक तथा सृजनात्मक कौशल व व्यावहारिक कार्यों का आधार कला ड्राफ्ट तथा स्वस्थ जीवन के लिए प्रयोगात्मक अभ्यास के लिए पर्यावरण शिक्षा आधार प्रस्तुत करेगी।'' अध्यापक शिक्षा की भूमिका पर विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हुए हैं उनके सुझाव इस प्रकार है– **बेलग्रेड चार्टर** के चार अनुभागों (1976) में पर्यावरण परिस्थिति, पर्यावरण लक्ष्य, पर्यावरण शिक्षा के लक्ष्य व पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य के आधार पर पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता को नए सिरे से प्रभावित किया है। **एशियन क्षेत्रीय बैठक, बैंकाक** में (1976) में आयोजित की गई तथा उसमें 15 प्रस्ताव पारित किए गए थे। मुख्य रूप से चार क्षेत्रों में बंटे हैं– पर्यावरण शिक्षा के लिए कार्यक्रम, व्यक्तिगत पर्यावरण प्रशिक्षण, अनौपचारिक पर्यावरण तथा पर्यावरण शिक्षा के लिए सामग्री निर्माण।

यह प्रस्ताव अध्यापक शिक्षा से जुड़े होने के कारण पर्यावरण शिक्षा को अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में सोचने को बाध्य करते है। **तिबलित कॉंफ्रेंस यूएसएसआर** (1977) की सिफारिशों के अनुरूप यूनेस्को द्वारा प्रथम मीडियम टर्म योजना (1977–1982) तथा द्वितीय मीडियम टर्म योजना (1984–89) जिसमें विभिन्न स्तरों

पर पर्यावरण के संदर्भ में अनेक कोंफ्रेंस, काव्य गोष्ठियाँ तथा बैठकें आयोजित हुई हैं। यूनेस्को के तृतीय मीडियम टर्म योजना (1990–95) पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधन के नाम से चलाई जा रही है जिसमें पाठ्यक्रम निर्माण, शिक्षक प्रशिक्षण और सेवारत अध्यापकों को प्रशिक्षण को विशेष रूप से सम्मिलित किया गया है। जापान, श्रीलंका, पाकिस्तान तथा जर्मनी आदि देशों में पर्यावरण शिक्षा को विश्वव्यापी अभियान के रूप में चलाया जा रहा है।

भारतीय संदर्भ में एनसीईआरटी द्वारा भी पर्यावरण शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। पर्यावरण शिक्षा की प्रकृति अन्तः अनुशासनात्मक होने के कारण प्रशिक्षण के स्वरूप में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता होगी। जिसमें सर्वप्रथम पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करने की आवश्यकता है। दूसरी बात अध्यापक के सामने कक्षा में कौन सी पर्यावरण समस्या आएगी, उसके प्रति ध्यान आकर्षित करना भी जरूरी है।

इसके अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण को बचाने के लिए अनेकों प्रयास किए गए हैं और निरंतर किए जा रहे हैं, लेकिन आधुनिक जीवनशैली के कारण एवं पर्यावरण संवेदना के अभाव में परिणाम उतने नहीं दिखाई दे रहे हैं जितने कि होने चाहिए। इस हेतु वर्तमान में अध्यापक शिक्षा को पर्यावरणोन्मुखी बनाए जाने की आवश्यकता है। यद्यपि यह सर्वविदित है कि जिस संस्कार को हम छोटी उम्र में ही बच्चे में डालेंगे, वही बीज उसके युवा होने पर फल वाला वृक्ष बनेगा। विद्यालय के प्रत्येक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक संस्कार निर्मित करने होंगे। यह कार्य केवल अध्यापक ही कर सकता है। इस संदर्भ में अब तक किए गए प्रयास नाकाफी हैं। अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, क्रियाकलापों में निम्न परिवर्तन लाना आवश्यक है–

शिक्षक की भूमिका निर्माण –

1. कक्षा एवं कक्षेत्तर क्रियाओं के आयोजन की अवधि में।
2. पर्यावरण चेतना में विकृतियों के स्वरूप का मूल्यांकन करने में।
3. पर्यावरण चेतना संबंधी सामग्री (फिल्म, निबंध, लेख, रिपोर्ट) को सक्षमता पूर्वक जानने ,समझने में।
4. अपने पर्यावरण के सकारात्मक व नकारात्मक पक्षों को जानने में।
5. प्रदूषण द्वारा पड़े प्रभावों का निरीक्षण करने में।
6. छात्रों में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता व सुग्राहिता बढ़ाने में।
7. अभिभावकों के मध्य, गांवों, शहरों में पर्यावरण चेतना जागृत करने में।

शिक्षक की उपर्युक्त प्रकार की भूमिकाओं के निर्माण हेतु राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर अध्यापक शिक्षा में परिवर्तन लाया जा कर प्रयास किए गए लेकिन इसका परिणाम वह नहीं आया है जिसकी वर्तमान विपरीत परिस्थितियों में आवश्यकता है। इस समस्या के समाधान के लिए हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर लौटना होगा तथा संस्कृति व विज्ञान के संबंध में नवाचार का निर्माण करना होगा।

पर्यावरण शिक्षा के संदर्भ में अध्यापक शिक्षा का आदर्श पाठ्यक्रम – एनसीटीई, एनसीईआरटी तथा उच्च शिक्षा विभाग ने इस दिशा में अनेक प्रयास किए हैं तथा आज भी प्रयासरत है। एनसीटीई ने इस संबंध में पाठ्यक्रम तैयार किया है इसके पश्चात भी सही परिणाम प्राप्त करने के लिए अध्यापक शिक्षा में निम्न परिवर्तन आवश्यक है –

1. पर्यावरण नैतिकता का ज्ञान –

भारतीय संस्कृति में विभिन्न नियमों के पालन के माध्यम से पर्यावरण नैतिकता बाल्यकाल से ही विद्यार्थी में पैदा की जाती थी। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम मे इन नैतिक तत्वों को शामिल करते हुए शिक्षकों के माध्यम से इन्हें बालकों में प्रसारित किया जा सकता है। यह नैतिक मूल्य इस प्रकार हैं– सत्य, अहिंसा, नैतिकता, मानवता, दया, क्षमा अपरिग्रह, आत्म–संयम आदि।

अध्यापक शिक्षा में इन सूक्तों को शामिल करते हुए इनका अर्थ एवं इनमें निहित भावना को दृढ़ कर शिक्षकों के माध्यम से बालकों के मनोवैज्ञानिक रूप से पर्यावरण मित्र बनाया जा सकता है– **''पंचस्वन्तु पुरूष आविवेशतान्यन्तः पुरूषे अर्पितानि।''**

अर्थात इस तथ्य का भान हो कि इन पंचतत्वों में एक भी दूषित हो जाए तो मानव जीवन पर इसका प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा। इसलिए पर्यावरण के इसे सन्तुलन को बनाए रखने के लिए दैनिक प्रार्थना में इन्हें शामिल किया जाए तथा प्रकृति की साम्यावस्था को बनाए रखने के लिए शपथ दिलाने का प्रावधान किया जाए –

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरौषधयः शान्ति।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवा शान्तिर्ब्रह्मं शान्तिः सर्वशान्तिदेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि।।

अग्नि पुराण के अनुसार ''जो मनुष्य वृक्ष लगाता है वह अपने 30000 पितरों का उद्धार करता है। कोई अपने धन, वंश, भावी सुख में वृद्धि चाहता है तो फल फूल वाले किसी वृक्ष को नहीं काटना चाहिए।'' यह भाव प्रकृति के प्रति अहिंसा एवं मानवता का ही भाव है।

2. पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन :– प्राचीन काल में शिक्षार्थी गुरूकुल में प्रकृति के सानिध्य में रहकर पर्यावरण से प्रेम करना सीखता था। **पद्म पुराण** के अनुसार ''जो मनुष्य सड़क के किनारे वृक्ष लगाता है वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक सुख भोगता है जितने वर्षों तक वृक्ष हरा भरा रहता है।'' अध्यापक शिक्षा में वैसी ही पर्यावरण संबंधी पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन करवाया जाए, जिससे कि अध्यापक छात्रों को भी इन क्रियाओं को करवाकर पर्यावरण के प्रति जागरूक बना सके ये क्रियाएँ इस प्रकार हैं–

1. वृक्षारोपण वाटिकाओं का संरक्षण करना तथा कराना।
2. पार्कों व जलाशयों की सफाई करवाना।
3. विद्यालय में प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी वाटिका लगवाना।
4. अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण की आदत विकसित करना।
5. पर्यावरण प्रदूषण वाले स्थानों पर ले जाकर उनके सुधार हेतु जागृत करना।
6. पर्यावरण संबंधी सांस्कृतिक मान्यताओं को प्रशिक्षण में स्थान देना।
7. वातावरण की शुद्धि हेतु यज्ञ करवाना।
8. गौवंश का पालन करना व गौमय के उपयोग करना।

3. पर्यावरणीय अभिवृत्ति का निर्माण :– हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति में, वेद पुराणों में, पर्यावरण के प्रत्येक घटक को मानव जीवन से जोड़कर देखा गया है। इसके ज्ञान द्वारा अध्यापक प्रशिक्षक में पर्यावरणीय अभिवृत्ति का निर्माण किया जा सकता है। ये तत्व इस प्रकार हैं– वैदिक कालीन पर्यावरणीय शिक्षा का अध्यापक शिक्षा में समावेश हो, जिसमें पंचतत्व– जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश का महत्त्व व उन्हें संरक्षित करने का वर्णन है। जैसे–

- **वायु– ''यददौ, वात ते, ग्रहेष्वमृतस्य निधिर्हितः।/ ततो नो देहि जीवसे।।'' (ऋ. 10/186/3)** अर्थात् इस वायु में जो अमरत्व (प्राणवायु) की धरोहर स्थापित है वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है।
- **जल– ''तस्मा अरंगमाम वो यस्यक्षमाय जिन्वथ।''/ आपोजनयथा चनः।।''**(ऋ.10/9/3) अर्थात् हे जल! तुम अन्न की प्राप्ति के लिए उपयोगी हो। तुम पर जीवन निर्भर है तुम पर नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं अन्नादि निर्भर है। तुम औशधि रूप हो।
- **मिट्टी एवं वनस्पति–/''माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या''**(अथर्व./12 वां भाग) अर्थात् सभी प्राणी पृथ्वी के पुत्र हैं। **''शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।/ तस्यै हिरण्ये वक्षसे पृथिव्या अेरं नमः।।''** (अथर्व./12/1/42) अर्थात् जो भूमि चट्टान, पत्थर और मिट्टी है, मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी को प्रणाम करता हूं। नाना प्रकार के फल, औषधियाँ, फसलें, अनाज, पेड़–पौधे इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं अतः पृथ्वी को हम माता के समान आदर दें। **''मां तो मर्मविभ्रग्वरि मां तो हृदयमर्पितम।''(अथर्ववेद)/** अर्थात् हे पवित्र करने वाली भूमि। मैं तेरे हृदय को आघात में पहुंचाऊँ अर्थात तुम्हारा अत्यधिक दोहन न करूं एवं तुम पर कचरा व जहरीले पदार्थ ना डालूं।

- **नदियाँ – पद्मपुराण** में गंगा को स्वच्छ रखने के निर्देश दिए गए हैं – **न दन्तधावनं कुर्यात गंगागर्भे विचक्षिणः।/परिधयाम्बराम्बूनि गंगा स्त्रसेतसि न त्यजेत।।''** अर्थात् गंगा में कचरा डालना तो बहुत दूर रहा इसमें दातुन करना, स्नान के पश्चात भीगी धोती बदलना, व निचोड़ना भी निषेध है।
- **पर्वत–''गिरियस्ते पवतः हिमवन्तोऽरण्यते पृथ्वी स्योनमत्सु।''** (अथर्व.) अर्थात् हे पृथ्वी! तेरे पर्वत, तेरे हिमावृत्त शैल, तेरे अरण्य सुखदायक हों।

4. ज्ञान–बोध से चिंतन स्तर तक क्रियाएँ – सिक्किम सरकार ने अधिसूचना जारी कर कहा है कि राज्य का कोई भी नागरिक अपने अथवा सार्वजनिक स्थल पर मौजूद किसी वृक्ष से भाई बहन जैसा मानवीय सम्बन्ध बना सकता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि अग्नि (यज्ञाग्नि) से धूम उत्पन्न होता है, धूम से बादल बनते हैं और बादलों से वर्षा होती है। वेदों में यज्ञ का अर्थ 'प्राकृतिक चक्र को संतुलित करने की प्रक्रिया कहा गया है। वैज्ञानिकों ने भी यह स्वीकार किया है कि यज्ञ द्वारा वातावरण में ऑक्सीजन व कार्बन–डाई– ऑक्साईड का सही संतुलन स्थापित किया जा सकता है। वेद–वेदांगो में अनेक स्थलों पर यज्ञ द्वारा वर्षा के उदाहरण मिलते है।

इसी प्रकार कुछ अन्य सूत्र इस प्रकार हैं– प्राकृतिक पदार्थों में शांति की भावनाएँ अनेक स्थलों पर हमें उपलब्ध होती हैं। जैसे–पृथ्वी हमारे लिए कंटकरहित और उत्तम बसने योग्य हो (ऋग्वेद, 7/35/3 तथा यजुर्वेद 36/13)। हमारे दर्शन के लिए अंतरिक्ष शांतिप्रद हो (ऋग्वेद, 10/35/5)। वह आकाश जिसमें बहुत पदार्थ रखे जाते हैं, हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 7/35/2)। सूर्य, अपने विस्तीर्ण तेज के साथ हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 10/35/8)। सूर्य, हमारे लिए सुखकारी तपे (यजुर्वेद, 36/10), चंद्रमा हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/7)। नदी, समुद्र और जल हमारे लिए सुखप्रद हो (ऋग्वेद, 7/35/8)। पीने का जल और वर्षा का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/12)। जलधाराएँ तुम्हारे लिए अमृत वस्तुएँ बरसाएँ (अथर्ववेद, 8/6/5)। ज्योतिर्मय अग्नि हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/4)। अग्नि दुःखदायक रोगादि को और अनावृष्टि आदि दुःखों का हनन करती है (सामवेद मंत्र–4)।

वेदों को व्याख्यायित करते हुए वायुपुराण (62/15) में महर्षि वेदव्यास ने अपनी चिंता प्रकट करते हुए कहा है कि इस सृष्टि के अपने स्वरूप में अधिष्ठित हो जाने पर इसका अंधाधुंध दोहन न किया जाए, क्योंकि मनुष्यों के क्रियाकलापों तथा अतिशय भोगवादिता के कारण प्राकृत पदार्थों में समय पूर्व वे दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो कल्प के अंत में आने वाली प्रलय में उत्पन्न होते हैं, जिससे यह दृश्य प्रकृति लय की ओर अग्रसर हो दुःखद हो जाता है। ऋग्वेद (10/86/5) का ऋषि भी इसी प्रकार चिंता करते हुए कहता है कि पर्यावरण प्रदूषण द्वारा बनाए हुए व्यक्त पदार्थों को, जब मनुष्य अपनी अतिशय भोगतृष्णा से दूषित करता है, तब यह प्रकृति उसके सिर को झुका देती है। इन मूल–मंत्रों को अध्यापक शिक्षा में शमिल करना चाहिए।

संदर्भ–सूची :–

1. व्यास, विजयशंकर, (2018), विकल्प–सृजनशील युवा मन की पत्रिका, अजित फाउण्डेशन ,बीकानेर।
2. डा.व्यास,राजेश कुमार.(27सितम्बर 2017).पर्यटन दिवस विशेष.राष्ट्रदूत पत्रिका.चुरू; वतन प्रेस. पृ.सं.2।
3. श्रीमाली मेघराज (अप्रैल 2017) 'विकल्प' बीकानेर : अजीत फाण्डेशन पृ.सं. 29,30,31
4. https://hindi.indiawaterportal.org/node/47372
5. hyttp://m.jagaranjosh.c om/current affairs

सृजनात्मकता का साध्य : असाध्य वीणा

श्रुति पाण्डेय *

हिंदी साहित्य में निराला कृत 'राम की शक्ति पूजा' तथा मुक्तिबोध द्वारा रचित 'अंधेरे में' आदि के अतिरिक्त अज्ञेय कृत 'असाध्य वीणा' आधुनिक हिंदी की कई लंबी कविताओं में मील के पत्थर के समान है। 'असाध्य वीणा' में अज्ञेय ने सृजनात्मकता, जीवन–सत्य, युगबोध, भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता के विभिन्न पक्षों को प्रदर्शित किया है। इसके माध्यम से अज्ञेय की काव्य तथा कला संबंधी दृष्टि पर भी प्रकाश पड़ता है।

'असाध्य वीणा' का आरंभ राज–सभा के एक नाटकीय दृश्य से होता है, जहाँ राजा केशकंबली गुफागेह का स्वागत करता है। राजा के जीवन की एक ही साध है कि कोई ऐसा सिद्धहस्त कलाकार उसे मिल जाए जो महल में पड़ी वीणा को बजा सके। यह वही वीणा है जिसका निर्माण वज्रकीर्ति ने कठिन श्रम और साधना द्वारा एक अत्यंत प्राचीन एवं विशाल किरीट तरु से किया था। अनेक बड़े–से–बड़े कलावंत भी इस वीणा के तारों से संगीत की झंकार नहीं निकाल सके थे। इसीलिए यह वीणा असाध्य थी, जिसे कोई भी साधक साध नहीं सका था। इस कविता में अज्ञेय आरम्भ से ही ऐसे प्रतीक गढ़ते हैं कि 'असाध्य वीणा' एक रहस्यात्मक एवं चमत्कारपूर्ण रचना प्रतीत होती है। पहले अज्ञेय एक संदिग्ध अथवा अस्पष्ट वर्णन द्वारा असाध्य वीणा का परिचय देते हैं– "लघु संकेत समझ राजा का /गण दौड़े।/लाये असाध्य वीणा,"[1]

किंतु जैसे–जैसे इस वीणा का वर्णन विस्तार पाता जाता है, वैसे–वैसे उसके पीछे का सारा रहस्य अपनी संपूर्ण प्रतीकात्मकता के साथ अर्थ–भेदों को स्पष्ट करने लगता है। 'सृजनात्मकता' और 'मानव की स्वतंत्रता' को अज्ञेय ने इस कविता में अत्यधिक महत्व दिया है। इस कविता का बीज शब्द 'साधक' है एवं इसकी मूल व्यंजना 'साधना' को स्पष्ट करती है। यहाँ वीणा को सीधे रचना या कला का प्रतीक बनाकर एवं वीणा–वादक के रूप में प्रियंवद को रचनाकार का प्रतीक बनाकर अज्ञेय सृजनात्मकता के विविध आयामों को व्याख्यायित करते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या' नामक पुस्तक में लिखते हैं, "कलात्मक सृजनात्मकता की व्याख्या के माध्यम से विराट सृजनात्मकता का आख्यान असाध्य वीणा का साध्य है।"[2]

वीणा को बड़े–बड़े कलाकार इसलिए नहीं साध सके क्योंकि वे सभी अपने ज्ञान के अहंकार से प्रेरित थे। प्रियंवद का यह कहना कि वह कलावंत नहीं अपितु 'शिष्य, साधक' है – यह संकेत करता है कि कला की साधना एवं सृजनशीलता की सबसे पहली अहर्ता है साधक अथवा रचनाकार का अहंकार विहीन होना। रचनाकार जीवन के जिस 'अनकहे सत्य' को अपनी रचना में उतारना चाहता है उससे साक्षात्कार तभी संभव है, जब वह रचयिता होने का दंभ त्याग सके। रचना के सामने आत्मनिवेदन के भाव से उपस्थित हो– "वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी /इसे जब सच्चा–स्वरसिद्ध गोद में लेगा।"/...../ कलावंत हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ /जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी /...../ ओ तरु–तात! संभाल मुझे।"[3]

'असाध्य वीणा' सृजन–प्रक्रिया के आंतरिक रहस्य के उद्घाटन से जुड़ी रचना है। वीणा की साधना में साधारणीकरण का सिद्धांत सक्रिय है, जो 'न ममेति न परेति' अर्थात अपने–पराए में भेद करने वाली भावना से मुक्त होकर रचना से एकात्म स्थापित करने पर बल देता है– "पर उस स्पंदित सन्नाटे में मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा– /नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था/ सघन निविड़ में वह अपने को/ सौंप रहा था उसी किरीट–तरु को।"[4]

सृजन की प्रक्रिया में साधक द्वारा निज स्वत्व का त्याग करते हुए रचना के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण अनिवार्य है। रचनाकार का अपने व्यक्तित्व एवं अहंकार को विलयित कर रचना से अद्वैत स्थापित करना

* शोधार्थी हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, तेलंगाना, भारत, पिन– 500046।

आवश्यक है। यहाँ 'व्यक्तित्व के विलियन' का अर्थ व्यक्तित्वहीनता न होकर टी. एस. इलियट के 'निर्वैयक्तिकता सिद्धांत' की ओर संकेत करता है, जहाँ सर्जक व्यक्तिगत भावों से मुक्त होकर तटस्थ रूप से ही श्रेष्ठ रचना कर सकता है– " मुझे स्मरण है–/ पर मुझको मैं भूल गया हूँ,/सुनता हूँ मैं– /पर मैं मुझसे परे, शब्द में लीयमान।"[5] सृजन–शक्ति अथवा कला को अज्ञेय पाश्चात्य साहित्य चिंतन के अनुरूप साधन के रूप में नहीं देखते। वे भारतीय दर्शन की अनुरूपता में उसे ब्रह्म के समान महत्व देते हैं, अर्थात ब्रह्म का साक्षात्कार वैसा ही आनंद देता है, जैसा कला या सृजन शक्ति का साक्षात्कार– "अवतरित हुआ संगीत /स्वयंभू /जिसमें सोता है अखंड /ब्रह्मा का मौन/ अशेष प्रभामय।"[6]

'असाध्य वीणा' में प्रियंवद का राजा से यह कहना कि मैं कलाकार नहीं हूँ, 'शिष्य साधक' हूँ, एक प्रकार से पश्चिम की कला–दृष्टि तथा पूर्व के कला–चिंतन के भेद के साथ–साथ दोनों संस्कृतियों की वैचारिक गाथा का भी परिचय देता है। इस संबंध में कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं, "इस कविता का उद्देश्य अज्ञेय के कवि–मन को परंपरा की झूठी मान्यताओं की धूल झाड़कर उसे निखार देने का प्रयत्न है – उसकी सच्ची पहचान करने का संकल्प और भारतीय परंपरा से आत्मसाक्षात्कार कराने का है।"[7] यहाँ 'किरीट तरु' की विराटता में संपूर्ण सृष्टि प्रतीक रूप में समाहित है। जिस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का अंश ही संसार के कण–कण में विद्यमान है, उसी प्रकार 'किरीट तरु' के अंश वीणा में भी यही सृष्टि का संगीत अर्थात ब्रह्मा का अखंड स्वर 'अनकहे सत्य' के रूप में प्रकट हो जाता है– "महाशून्य/ वह महामौन/अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय /जो शब्दहीन/सब में गाता है।"[8]

वीणा का झंकृत होना ही कलाकार प्रियंवद की साधना की सफलता है, और 'वीणा का संगीत' ही वह 'जीवन का अखंड' सत्य है जिसका साक्षात्कार वह पूरी सभा के साथ करता है। मूलतः सत्य एक ही है, किंतु उसका साक्षात्कार प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने स्वधर्म के अनुसार ही करता है– "डूब गए सब एक साथ/ सब अलग–अलग एकाकी पार तिरे।"[9]

सत्य के साक्षात्कार से सम्बंधित यह दृष्टिकोण भी भारतीय चिंतन परंपरा के ही अनुरूप जान पड़ता है। तुलसीदास द्वारा रामचरितमानस में युगों पूर्व ही घोषित किया गया था, 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखि तिन तैसी'। प्रभु को 'ईश्वरीय सत्ता'/ 'अदृश्य शक्ति/ 'महामानव' आदि किसी भी रूप में समझा सकता है। यह बात केवल 'प्रभु' के ही सन्दर्भ में नहीं अपितु हर उस 'सांसारिक विषय' अथवा 'आध्यात्मिक विषय' पर लागू होती है जिसे व्यक्ति समझना चाहता है। अतः व्यक्ति अपनी मानसिकता/स्वाभाव आदि के अनुसार ही किसी विषय पर अपनी धारणा निर्मित कर उसी के अनुरूप उसका अर्थ–चित्र भी ग्रहण करता है। यही मंत्र 'अखंड सत्य' को ग्रहण करने के सन्दर्भ में भी लागू होता है, जिसे अज्ञेय ने आधुनिक समय/समाज के अनुरूप नए प्रतीकों में गढ़ कर सहृदय पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि वीणा के संगीत में सभी उतरते एक साथ हैं, किंतु सभा में उपस्थित एक–एक व्यक्ति अलग–अलग प्रकार से पार तिरते हैं।

सृजन कर्म की ही भाँति सृजन का प्रभाव (सत्य से साक्षात्कार) भी मुक्तिदायी है। इसके प्रभाव से राजा के मन से ईर्ष्या, द्वेष, महत्वाकांक्षा के स्थान पर परामर्श की चेतना विकसति होती है और रानी में निरर्थक साज–श्रृंगार–सामग्री के स्थान पर शुद्ध दायित्वमूलक प्रेम की स्थापना होती है। इस प्रकार सृजन का प्रभाव न केवल सम्मोहनपूर्ण बल्कि औदात्यपूर्ण भी बताया गया है, जो युग–परिवर्तनकारी भी साबित होता है। इसके प्रभाव से प्रत्येक व्यक्ति (राजा, रानी, दरबार में विराजमान अन्य सदस्यगण आदि) अपने स्वधर्म की पहचान कर पहले से अधिक क्षमता, गुणवत्ता तथा उत्पादकता अर्जित कर लेता है, तथा समाज में स्वार्थ का स्थान सामाजिक दायित्व ले लेते हैं। इस तरह युग पलट जाता है– "उठ गयी सभा,/सब अपने–अपने काम लगे।/ युग पलट गया।"[10]

'असाध्य वीणा' की कल्पनाशीलता में सामाजिक सोद्देश्यता भी स्पष्ट दिखाई देती है। वीणा बजने पर सबका एकात्म भाव से डूबना किंतु अलग–अलग तिरना व्यक्तित्व की स्वतंत्रता का संकेत है। स्वयं अज्ञेय

मानते हैं कि व्यक्ति समाज 'में' स्वतंत्र हो सकता है, किंतु समाज 'से' स्वतंत्र नहीं हो सकता। 'यह दीप अकेला' जैसी कविता इसी भाव बोध की ओर संकेत करती है। सर्जक यदि अपने युगबोध से अनुप्राणित न हो तो उसकी लेखनी दीर्घकालिक नहीं होती। इसीलिए अज्ञेय युग की पहचान करने की भी अंतर्दृष्टि रखते हैं। अपनी कविता के माध्यम से अस्तित्ववादी मृत्युबोध व निरर्थकता बोध के मकड़जाल में उलझे हुए मानव को सृजनात्मकता की ओर उन्मुख करने को ही अज्ञेय आज के कवि का सबसे बड़ा उद्देश्य मानते हैं। उन्होंने अस्तित्ववाद की अनास्था या 'न कुछ' को भारतीय चिंतन की आस्था या 'सब कुछ' से तोड़ा है। विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं, "पूरी कविता मौन से स्वर की ओर जाने की और स्वर से मौन की ओर लौटने की – एक ओर व्यष्टि से समष्टि में डूबने की तथा समष्टि से व्यक्ति में अलग–अलग उतरने की प्रक्रिया का एक आख्यान है।"[11]

अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' में जिस आख्यान को प्रतीकात्मकता में गढ़ कर प्रस्तुत किया है वैसा ही दृश्य राम–कथा में भी देखने को मिलता है, जो भारतीय जनमानस में रचा–बसा है। आत्मशोधन, अहं का त्याग, पूर्ण समर्पण का भाव जो प्रियंवद द्वारा वीणा के सम्मुख दर्शाया गया है, वही पूर्ण समर्पण का भाव मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने राजा जनक के दरबार में सीता स्वयंवर के समय शिव–धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हुए दर्शाया था। स्वयंवर में विभिन्न राज्यों के महारथी, प्रतापी राजा हिस्सा लेते हैं, किंतु उनमें से कोई भी शिव–धनुष को हिला पाने में भी समर्थ नहीं था, क्योंकि वे सभी वीरता के मद में चूर, अपने शौर्य के दंभ में डूबे हुए उस धनुष को उठाने की चेष्टा करते हैं। परम शिव–भक्त रावण भी अपने आराध्य के धनुष को हिला न सका क्योंकि वह सर्वशक्तिमान होने के अहंकार से भरा हुआ था। वहीं, श्रीराम शिव–धनुष के सम्मुख नतमस्तक होकर अपने ज्ञान, वीरता, अहं आदि के त्याग–भाव से समर्पित होते हैं। यही कारण है कि राम के अतिरिक्त कोई भी राजा शिव–धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने में असफल रहता है। यह कथा तो युगों–युगों से प्रचलित है। इसके अतिरिक्त हिन्दी काव्य परंपरा में विशेषतः भक्तिकालीन कवियों में कबीर, रैदास, मीरा, तुलसी आदि सभी के पद्य अहंकार–शून्यता, सर्वस्व समर्पण तथा अहं–त्याग के भाव से प्रेरित हैं। यह समर्पण आध्यात्मिक सन्दर्भ में भी हो सकता है और सृजनात्मक सन्दर्भ में भी। अज्ञेय इस कविता में मध्यकालीन रहस्यवाद को नहीं, बल्कि प्रतीकात्मकता के चोले में सृजनात्मक अनुभव को कविता में पिरोने में सफल हुए हैं।

अतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय कृत 'असाध्य वीणा' वास्तव में सृजनात्मकता को साधने वाली एक अप्रतिम रचना है। इसमें सृजनात्मकता की अहर्ताओं, प्रक्रिया, स्वरुप, प्रभाव के साथ–साथ व्यष्टि–समष्टि संबंधों की भी आलोचना है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. संपादक– विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय, राजपाल एंड संस, दिल्ली, वर्ष–2014, पृ.94।
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2006, पृष्ठ 31।
3. संपादक– विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय, राजपाल एंड संस, दिल्ली, वर्ष–2014, पृष्ठ 96।
4. वही, पृष्ठ 96–97।
5. वही, पृष्ठ 101।
6. वही, पृष्ठ 102।
7. कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय : कवि कर्म का संकट, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2009, पृष्ठ 147।
8. संपादक– विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय, राजपाल एंड संस, दिल्ली, वर्ष–2014, पृष्ठ 105।
9. वही, पृष्ठ – 102।
10. वही, पृष्ठ–105।
11. विद्यानिवास मिश्र, रीति विज्ञान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2008, पृष्ठ 156।

मिजो कहानी का इतिहास : परिचय एवं समस्याएँ

रोबी लललोमकिमी*
डॉ. अमिष वर्मा**

विश्व की विभिन्न भाषाओं और उनके समाजों की ही तरह मिजो भाषा और समाज में भी साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन होता रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो मिजो भाषा के लिखित साहित्य की आयु अभी बहुत ही कम है। लेकिन मिजो समाज में अपने विचारों, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य का सहारा तब से लिया जा रहा है, जब इनके पास अपनी लिपि भी न थी। यद्यपि कई मिजो बुजुर्गों का कहना है कि प्राचीन मिजो समाज में भी मिजो भाषा की अपनी कोई लिपि हुआ करती थी और जिसे जानवरों की खाल पर लिखा जाता था। लेकिन इस बारे में प्रामाणिक तौर पर कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस तथाकथित प्राचीन मिजो लिपि में लिखा हुआ कुछ भी प्राप्त नहीं होता। ज़ाहिर है अन्य भाषा–साहित्यों की ही तरह मिजो साहित्य की यह परंपरा भी स्वाभाविक तौर पर मौखिक से लिखित रूप की ओर बढ़ी। यह बात सही है कि मिजो साहित्य अभी काफी नया है, मगर अपनी छोटी–सी आयु में जिस गति से इसका विकास हुआ है और हो रहा है, वह बेहद सराहनीय है। मिजो भाषा की वर्तमान लिपि मात्र 127 वर्ष पुरानी है, अतः लिखित मिजो साहित्य की आयु इससे भी कम है। इस वर्तमान लिपि के आने के लगभग 20 वर्ष पूर्व ही कैप्टन थॉमस हर्बर्ट लेविन (टी. एच. लेविन) ने मिजो भाषा को लिपि देने का प्रयास किया था। इन्होंने सन् 1870 के आसपास मिजो भाषा की तीन लोककथाओं को लिपिबद्ध कर अपनी एक पुस्तक में प्रकाशित किया। ये तीन लोककथाएँ थीं– 'चेमतातरोता', 'ललरुआङा' और 'कूङओरई' जो उनकी पुस्तक Progress Coloquial Exercises in Lushai Dialect of the 'Dzo' or Kuki Language में सन् 1874 में सेंट्रल प्रेस कलकत्ता से प्रकाशित हुई थीं।[1] मिजो लोककथाओं को लिपिबद्ध करने का यह सर्वप्रथम प्रयास था। इस पुस्तक में कुछ मिजो शब्दों और मिजो लोककथाओं का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया गया था। हालाँकि इनके द्वारा प्रस्तावित लिपि का इस्तेमाल आगे नहीं किया गया, फिर भी इस पुस्तक का उपयोग बाद के ईसाई–मिशनरियों ने मिजो सीखने के लिए किया।[2] 11 जनवरी, 1894 को दो महत्त्वपूर्ण अंग्रेज ईसाई मिशनरी जे.एच.लॉरेन और एफ.डब्ल्यू.सैविज मिजोरम पहुँचे।[3] इन दोनों ईसाई मिशनरियों के योगदान से 1894 ई. में वर्तमान मिजो लिपि का स्वरूप प्रस्तुत हुआ तथा उसके अध्ययन–अध्यापन की प्रक्रिया आरंभ हुई। मिजो लिपि के आविष्कार, प्रचार एवं विकास में अंग्रेज सरकारी अधिकारियों, ईसाई–मिशनरियों और मिजो बुद्धिजीवियों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन सब में अंग्रेज अधिकारी टी.एच.लेविन (1839–1916), जिन्हें मिजो लोग थङल्याना कहकर पुकारते थे, का योगदान सर्वप्रथम माना जा सकता है। इनके पद चिह्नों पर चलकर ही आगे कई मिजो लोककथाओं, लोकगीतों और किंवदंतियों को लिपिबद्ध किया गया और उनके अनुवाद का काम भी हुआ।

मिजो भाषा की लिपि के आने के बाद भी मौलिक कहानियों को अस्तित्व में आने में लगभग 64 वर्ष लग गए। मगर इस बीच इस समय के अंतराल का सदुपयोग मौखिक साहित्य (लोककथाओं एवं लोकगीतों) के लिप्यंतरण और मुद्रण में, अनुवाद के कार्य में, पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन में, मिजो भाषा की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में, मिजो–अंग्रेजी शब्दकोशों के निर्माण में और बाइबिल का मिजो भाषा में अनुवाद करने जैसे कामों में किया गया। मिजो समाज में मौखिक रूप से कथा सुनने–सुनाने की परंपरा बरसों से थी। लिपि के आविष्कार के बाद लोककथाओं, किंवदंतियों, लोकगीतों आदि के लिपिबद्ध हो जाने के बाद इन्हें मिजो साहित्य की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया गया है।

मिजो साहित्य का इतिहास लगभग 150 वर्षों का है, जिसे मिजो साहित्येतिहासकारों ने अध्ययन की सुविधा के लिए चार काल–खंडों में बाँटा है। इस काल विभाजन को मिजोरम विश्वविद्यालय द्वारा तैयार की गई पुस्तक 'History of Mizo Literature (Bu Thar)' में अपनाया गया है। मिजो साहित्येतिहास का काल–विभाजन और उनका नामकरण इस प्रकार किया गया हैः–

---

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम।
** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम।

1) आदि कालः पूर्वजों का समय (1870 से पूर्व)
2) प्रारंभिक कालः अंग्रेजों का समय (1870 से 1920)
3) मध्यकालः निकटवर्ती पिछली पीढ़ी का समय (1920 से 1970)
4) वर्तमान कालः नई पीढ़ी का समय (1970 से अब तक)[4]

उपर्युक्त प्रथम काल–खंड के अंतर्गत मौखित साहित्य (लोक कथा, लोक गीत व किंवदंतियाँ) को स्थान दिया गया है। द्वितीय काल–खंड में इन लोक कथाओं व किंवदंतियों के लिप्यंतरित रूप को शामिल किया गया है जिन्हें सन् 1870 के बाद अंग्रेजों द्वारा मिजो लिपि के निर्माण के बाद लिपिबद्ध किया गया। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, इस प्रक्रिया में अंग्रेज सरकारी अधिकारियों, ईसाई–मिशनरियों अथवा मिजो बुद्धिजीवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सन् 1894 के बाद ईसाइयत के प्रचार हेतु अंग्रेजी पुस्तकों तथा बाइबिल का भी मिजो में अनुवाद किया गया और साथ ही मिजो भाषा–शिक्षण के लिए पाठ्यपुस्तकों का भी निर्माण किया गया। इसी समय मिजो भाषा की पत्र–पत्रिकाएँ भी अस्तित्व में आने लगीं। मिजो भाषा के लिए लिपि के अस्तित्व में आने के बावजूद दूसरे काल–खंड अर्थात् 'प्रारंभिक कालः अंग्रेजों का समय (1870 से 1920)' तक मौलिक मिजो कहानियाँ नहीं लिखी गईं।

कहानी लेखन के अस्तित्व में आने से पहले मिजो भाषा में कई अन्य विधाओं के मौलिक रूपों का जन्म हुआ, जैसे– स्तुति या भक्ति गीत और नाटक। मिजो साहित्येतिहासकार डॉ. ललत्लूआंङलियाना खियाङते ने 'History of Mizo Literature (Bu Thar)' पुस्तक के अपने लेख 'Lemchan: Mizo Lemchan' (नाटकः मिजो नाटक) में नाटकों के इतिहास का काल–विभाजन करते हुए सन् 1912–1924 तक के काल खंड को मिजो नाटकों का 'The Rooted Period' कहा है।[5] इसका आशय है कि मिजो में नाटक लिखने का आरंभ सन् 1912 से माना जा सकता है। मिजो साहित्य को मौटे तौर पर गद्य और पद्य के रूप में देखा जा सकता है। यहाँ पद्य के अंतर्गत तरह–तरह के गीत (लोकगीत या मौलिक गीत), स्तुति या भक्ति गीत और कविताएँ आती हैं। बी. ललथङलियाना के अनुसार 1965 के पूर्व कविताएँ (Hla-hril) न के बराबर थीं। सन् 1949 से ज़ीकपुई पा (के. सी. ललवुङा) ने ही कविताएँ लिखना आरंभ किया।[6]

मौलिक मिजो कहानी लेखन की शुरुआत मिजो साहित्येतिहास के तृतीय काल–खंड अर्थात् 'मध्यकालः निकटवर्ती पिछली पीढ़ी का समय (1920 से 1970)' के दूसरे दशक में एल. बियाकलियाना द्वारा रचित 'लली' {ललओमपुई (1937)}, नामक कहानी से होती है। यह कहानी मिजोरम में आयोजित की गई कहानी लेखन प्रतियोगिता के लिए लिखी गई थी और उस प्रतियोगिता में इसे प्रथम पुरस्कार से नवाजा गया था। 'लली'(1937) प्रथम मौलिक मिजो कहानी है तथा एल. बियाकलियाना ने ही सन् 1936 में 'होईलौपारी' नामक एक उपन्यास की भी रचना की थी, जिसे मिजो का प्रथम उपन्यास माना गया है। अतः मिजो मौलिक कहानी लेखन का आरंभ सन् 1937 से हुआ और तब से लेकर आज तक कई मौलिक कहानियाँ लिखी गईं और लिखी भी जा रही हैं। 1937 से अब तक तकरीबन चौरासी वर्षों की अवधि में मिजो कहानी कथानक और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से काफी विकसित हुई है।

मिजो साहित्येतिहास के अंतिम दो काल–खंडों में ही मौलिक कहानियों की रचना हुई और इस दौर में कई कहानीकार उभरकर सामने आए, जिन्होंने विभिन्न विषयों पर कहानियों की रचना की। उन कहानीकारों में एल. बियाकलियाना (1918–1941), कापहलैया (1910–1940), ललजुईथङा (1916–1950), के. सी. ललवुङा उर्फ 'जीकपुई पा' (1929–1994), आर. जुआला (1917–1990), थनसेइया (1929–2018), खोलकूंङी (1927–2015) आदि के नाम प्रमुख हैं। इनके अलावा भी कई महत्वपूर्ण कहानीकार हुए, मगर सभी का नाम गिना पाना यहाँ संभव नहीं है और जरूरी भी नहीं है। मगर एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि पुरुष कहानीकारों की तुलना में महिला कहानीकारों की संख्या काफी कम है। बहरहाल!

आरंभिक दौर की कहानियों की प्रवृत्तियों पर अगर ध्यान दें तो उनमें ईसाइयत एवं पश्चिमी साहित्य का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। आज की भी कई कहानियों में यह प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से

दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि मिजोरम में ईसाइयत के आगमन के साथ–साथ मिजो भाषा की लिपि अस्तित्व में आई और ईसाइयत के प्रचार–प्रसार के बाद ही मौलिक लेखन कार्य की शुरुआत हुई। ईसाइयत ने मिजो समाज तथा संस्कृति को बहुत गहरे रूप में प्रभावित किया है, जिसकी छाया यहाँ की कहानियों में दिखाई पड़ती है। कहानीकारों ने ईसाई जीवन मूल्यों पर आधारित कहानियों के साथ–साथ भूत–प्रेत और अलौकिक दुनिया से संबंधित और जासूसी कहानियाँ भी लिखी हैं। कई कहानियों में प्राचीन मिजो संस्कृति एवं परंपराओं का भी चित्रण हुआ है और समाज में व्याप्त कुरीतियों का भी उद्घाटन किया गया है। कहानी लेखन की यह प्रक्रिया सन् 1960 के उत्तरार्द्ध में मिजो विद्रोह के कारण कुछ थम–सी गई थी। इस दौर में कुछ गिनी–चुनी कहानियाँ ही लिखी गईं। फिर सन् 1980 और 1990 के दौर में मिजो कहानी लेखन में तेज़ी दिखाई पड़ने लगी।[7]

आरंभ में मिजो कहानी और उपन्यास में कोई स्पष्ट अंतर नहीं किया जाता था। प्रारंभिक मिजो कहानियाँ काफी लंबी–लंबी और कई अध्यायों या खंडों में विभक्त हैं तथा उनमें घटनाओं की बहुलता भी देखी जा सकती है। आरंभिक दौर में मिजो भाषा में सभी प्रकार की कथाओं को, चाहे वह लोक–कथा हो या कहानी हो या फिर उपन्यास, 'थोंथु' ही कहा जाता था। बाद में चलकर लंबी–लंबी कहानियों के समानांतर छोटी कहानियाँ भी लिखी जाने लगीं, जो प्रारम्भिक कहानियों और उपन्यासों की तुलना में संक्षिप्त और कम अध्यायों वाली होती थीं। लेकिन इस छोटी कहानी को भी मिजो भाषा में 'थोंथु' ही कहा जाता रहा। 'थोंथु' कही जाने वाली इन विभिन्न कथा–विधाओं को पढ़े बिना यह स्पष्ट कर पाना कठिन होता था कि यह कहानी है या उपन्यास। आगे चलकर कहानियों की लघुता के कारण इन्हें मिजो में 'थोंथु' या अधिक स्पष्ट रूप से 'थोंथु तोई (short story) कहा गया और उपन्यासों को 'थोंथु फुअःथर' की संज्ञा दी गई। मगर बाद की तथा समकालीन कहानियों में यह समस्या बहुत कम हो गई है। अब साहित्यकारों के प्रयास से कथा लेखन की विभिन्न विधाओं को अलग–अलग नाम दिया गया है तथा विधा के रूप में उनमें स्पष्ट अंतर भी देखा जा सकता है। डॉ. के.सी. वानङाहका ने मिजोरम विश्वविद्यालय के मिजो विभाग द्वारा तैयार की गई पुस्तक 'History of Mizo Literature' के 'Fiction: Mizo Thawnthu (Story and Fiction)' शीर्षक अपने लेख में कहानी को 'थोंथु' और उपन्यास को 'थोंथु फुअःथर' कहा है।[8] मगर व्यवहार में आज भी कहानी और उपन्यास के लिए इन दो भिन्न–भिन्न संज्ञाओं का कम ही प्रयोग किया जाता है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि यहाँ लोग किसी भी प्रकार की मिजो कथा को 'थोंथु' कहने के अभ्यस्त हो चुके हैं। विभिन्न कथा विधाओं में भेद न करने की स्थिति के कारण मिजो कथा विधाओं के वर्गीकरण की समस्या उत्पन्न होती है तथा यह मिजो साहित्य के इतिहास लेखन को भी प्रभावित करती है। हालाँकि मिजो कथा लेखन के आरंभिक दौर में उपन्यास एवं कहानियों के बीच अंतर स्पष्ट कर पाना कठिन है, परंतु अब इस बारे में मिजो साहित्यकार और साहित्येतिहासकार काफी सजग दिखाई पड़ते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कथा विधाओं में अंतर अधिक स्पष्ट होता चला जा रहा है।

मिजो साहित्य के इतिहास लेखन का प्रयास कम ही किया गया है। जो प्रयास हुए भी हैं वे आलोचनात्मक न होकर विवरणात्मक ही रहे हैं। अब तक की सर्वमान्य मिजो साहित्येतिहास की पुस्तक 'History of Mizo Literature (Bu Thar)', जिसे मिजोरम विश्वविद्यालय के मिजो विभाग द्वारा तैयार किया गया है, के काल–विभाजन और नामकरण से मिजो साहित्य की समय सीमा, उसके ऐतिहासिक महत्व एवं उनके नामकरण के पीछे के ऐतिहासिक कारण की जानकारी तो मिल जाती है, परंतु किसी काल खंड के साहित्य की विशेष प्रवृत्तियों का पता नहीं चल पाता। किस काल में कौन–सी प्रवृत्ति उभर कर सामने आई तथा किस तरह के साहित्य लेखन की प्रचुरता रही– इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं मिल पाती है। यह इतिहास विवरणात्मक प्रतीत होता है, जिसमें विभिन्न विधाओं तथा रचनाकारों का वर्णन मात्र किया गया है और थोड़ा–बहुत उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। इस साहित्येतिहास में आलोचनात्मक और तुलनात्मक मूल्यांकनपरक दृष्टि का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है। मिजो कहानी के इतिहास के विषय में जो सबसे बड़ी समस्या उत्पन्न होती है वह यह है कि उनमें कहानी एवं उपन्यासों को अलग–अलग खंडों में नहीं बाँटा गया है। जिस खंड में कहानियों की बात की जा रही है, वहीं उपन्यास की भी बात की गई

है। इन रचनाओं को प्रत्यक्ष रूप से देखे बिना यह कहना काफी मुश्किल हो जाता है कि कहानी की बात हो रही है या उपन्यास की।

जैसा कि इस लेख में पहले भी कहा जा चुका है कि मिजो साहित्येतिहास में मौखिक साहित्य को उनके महत्व के कारण शामिल तो किया गया है, मगर इन मौखिक लोक–कथाओं या लोकगीतों की प्रामाणिकता साबित करना असंभव है। प्रथम काल–खंड 'आदि कालः पूर्वजों का समय (1870 से पूर्व)' की आरंभिक सीमा तय नहीं की गई है। इसलिए स्पष्ट रूप से यह समझ पाना कठिन है कि मिजो साहित्य का आरंभ कब से माना जाए।

मिजो साहित्येतिहास में एक और समस्या यह भी है कि यहाँ लेखक और उसकी रचनाओं को अलग–अलग काल–खंडों में रख दिया गया है। अर्थात् लेखक का उल्लेख किसी काल–खंड में है और उसकी रचनाओं का उल्लेख किसी दूसरे काल–खंड में। इसका कारण है कि लेखक के संदर्भ में काल निर्धारण उसके जीवन–काल के आधार पर किया गया है, जबकि रचना के संदर्भ में रचना के प्रकाशन वर्ष के आधार पर। कभी–कभी रचना के लेखन वर्ष तथा प्रकाशन वर्ष के बीच का अंतराल काफी लम्बा हो जाता है और रचना का प्रकाशन लेखक की मृत्यु के उपरांत होता है। ऐसे में लेखक और उसकी रचना का उल्लेख दो अलग–अलग काल–खंडों में किया गया है, जिससे मिजो साहित्य के इतिहास में कई तरह की समस्या पैदा हो गई है। उदाहरण के लिए मिजो साहित्यकार ललजुईथङा (1916–1950) का समय मिजो साहित्येतिहास के तृतीय काल–खंड में आता है, परन्तु उनकी कहानी 'थ्लश्रांङ' 1977 में तथा 'फीरा लेह ङूरथनपारी' 1994 में प्रकाशित हुई,[9] जिनका उल्लेख मिजो साहित्येतिहास के चतुर्थ काल खंड में हुआ है। ऐसी समस्या अन्य कई कहानीकारों और उनकी कहानियों के साथ भी है। इस प्रकार की समस्या से भ्रम की स्थिति पैदा होती है। लेकिन अच्छी बात यह है कि अब प्रिंटिग की आसान सुविधा के बाद यह समस्या बहुत कम देखने को मिल रही है। मिजो साहित्येतिहास लेखन की दिशा में एक और समस्या यह भी है कि कई मौलिक रचनाएँ पुस्तक के रूप में प्रकाशित नहीं हुईं, कई कहानियाँ ऐसी हैं जो अपने समय में तो छपीं, मगर अब उपलब्ध नहीं हैं। इस तरह की समस्या से साहित्य के इतिहास के लेखन व अध्ययन में बाधा उत्पन्न होती है और मिजो साहित्य के महत्वपूर्ण धरोहर साहित्येतिहास में दर्ज होने से छूट जाते हैं।

स्पष्ट है कि मिजो साहित्येतिहास लेखन अभी अपने आरंभिक रूप में है तथा उसके सामने कई तरह की समस्याएँ और चुनौतियाँ हैं। इसको परिष्कृत रूप प्रदान करने के लिए साहित्येतिहासकारों को और सजग होने की आवश्यकता है तथा मिजो साहित्य को और गहरी ऐतिहासिक–आलोचनात्मक दृष्टि से देखने की जरूरत है।

संदर्भ–सूची :–

1. B. Lalthangliana, History of Mizo Literature) Mizo Thu leh Hla), Gilzom Offset) Mrs. Remkungi), Electric Veng, Aizawl, 2019, pp78 (यह किताब मिजो में है; संदर्भ का अनुवाद हमारा)।
2. वही, पृ. 80।
3. वही, पृ. 83।
4. देखें, History of Mizo Literature (Bu Thar), Department of Mizo, Mizoram University, Aizawl, 2017, pp 11-24 (यह किताब मिजो में है; संदर्भ का अनुवाद हमारा)
5. वही, पृ. 139।
6. B. Lalthangliana, History of Literature) Mizo Thu leh Hla), pp 301.
7. Dr. K.C. Vannghaka, Literature Zungzam, Lois Bet Print & Publication)Vanhlupuii), Aizawl,2014 , p.p.35 (यह किताब मिजो में है; संदर्भ का अनुवाद हमारा)।
8. History of Mizo Literature (Bu Thar), pp 206.
9. Dr. K.C. Vannghaka, Literature Zungzam, pp 29.

धार्मिक समरसता और अवध के नवाब
(1722-1857 ई.)

डॉ. राजकुमार वर्मा*

अवध एक प्राचीन हिन्दू राज्य था। अवध परिक्षेत्र में मुस्लिम आक्रमण से पूर्व हिन्दू, बौद्ध, जैन धर्मानुलम्बी निवास करते थे। इन सभी धर्मानुलम्बियों का महत्त्वपूर्ण धार्मिक क्रिया–कलापों का केन्द्र अयोध्या था। यह प्राचीन हिन्दू धर्मानुष्ठानों के केन्द्र के साथ–साथ बौद्ध व जैन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। अवध परिक्षेत्र का श्रावस्ती क्षेत्र महात्मा बुद्ध के कर्म स्थली होने के कारण बौद्ध धर्मानुलम्बियों महत्वपूर्ण व पवित्र स्थान है।

अवध का नामकरण एवं सीमा :– अवध के नामकरण को लेकर डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल का मत है कि 'अयोध्या' शब्द की उत्पत्ति आ+युद्ध ''अजेय नगरी'' से हुई। लोक प्रचलित शब्द 'अयोध्या' को अज्+युद्ध जैसे तत्सम् शब्दों से सम्बन्ध कर उसे सृष्टिकर्ता ब्रह्म के अपराजय नगर से भी सम्बन्धित किया गया है।[1] जिसे कालान्तर में यह क्षेत्र युद्ध वर्जित होने के कारण अयोध्या कहां जाने लगा। इसी सम्बन्ध में डॉ. विल्सन का मत है कि अयोध्या शब्द 'युद्' धातु शब्द होने के कारण व्यक्त करता है। उक्त उत्पत्तियों के अतिरिक्त 'अवध' की उत्पत्ति 'अवधि' ''रामचन्द्र जी के वनवास की अवधि से भी बताया जाता है।[2] बाबर ने अपने प्रसिद्ध तुर्की भाषा पुस्तक 'बाबरनामा' में अयोध्या का उल्लेख 'ओध या औध' नाम से वर्णन किया है। अवध शब्द अयोध्या से निकला है। सल्तनत काल में अयोध्या परिक्षेत्र को अवध कहा जाता था।"[3] अवध का नवाबीकाल (1722–1856ई. तक) में अवध का परिक्षेत्र वर्तमान उत्तरप्रदेश के फैजाबाद, अम्बेडकर नगर, बाराबंकी, सीतापुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, खीरी, लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, हरदोई, वहरराइय, श्रावस्ती आदि थी जिसकी राजधानी 'लखनऊ' थी।

अवध की भौगोलिक परिसीमा गंगा, यमुना, घाघरा, गोमती, सई, राप्ति आदि नदियाँ मुख्य एवं सहायक नदियों से घिरे होने के कारण तत्कालीन अवध के जन–समान्य लोगों के आजीविका का मूल आधार कृषि था। भूमि के प्राकृतिक उर्वरक के कारण वर्षा एवं कृषकों की पारिश्रमिकता से उपज जीवन यापन के आधार थे। जिनके सहयोग में लोहार, कुम्भराज, धोबी, जुलाहे, स्वर्णकार आदि विविध व्यवसायों से जुड़े लोग होते थे।"[4] मुस्लिम आक्रमण के पश्चात् अवध में परिक्षेत्र में प्रशासनिक रूप से मुस्लिम शासकों को सूबेदारी व सूफियों के प्रचार–प्रसार के माध्यम से मुस्लिम धर्म आया। अवध में शिया मुसलमानों द्वारा स्वतंत्र राज्य स्थापित किये जाने पर भी यहाँ के परम्परागत हिन्दू जमींदारों व तालुकेदारों का अधिग्रहण नहीं किया गया।[5] अवध में शिया नवाबों के समय में हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, पारसी धर्म मानने वाले थे किन्तु हिन्दू–मुस्लिम धर्म मानने वाले लोगों की संख्या अन्य धर्मानुलम्बियों से अधिक थी।[6] अवध के नवाबों ने इस्लाम धर्म के संरक्षण के साथ अन्य धर्मो का संरक्षण भी दिया। ये प्राचीन हिन्दू लखनऊ, अयोध्या आदि के प्रसिद्ध मन्दिरों को न तोड़ते हुए वरन् नये मन्दिरों के निर्माण के लिए स्वस्थ वातावरण प्रदान किया। तत्कालीन नवाब अफुद्दौला के जन्म मंगलवार होने के कारण हिन्दू धर्म विश्वसानुसार हनुमान (महावीर, बजरंग बली) का दिन होता है। नवाब की माँ के आदेशानुसार लखनऊ का हनुमान मन्दिर का निर्माण करवाया था। इस प्रकार शुजाउद्दौला सआदत अली खाँ[7] आदि जैसे अवध के नवाबों के साथ–साथ परिक्षेत्र के बड़े व छोटे तालुकेदारो व जमींदारो ने भी बनवाया, जिनमें मोहना, खैराबाद, बाराबंकी, गोण्डा, श्रावस्ती आदि के प्रमुख जमींदार थे। हिन्दू–मुस्लिम दोनों दरगाहों, मजारों जैसे बहराइच के सलारगाजी शाहमना (लखनऊ), देवाशरीफ (बाराबंकी), मुबारक खान शाहिद (गोरखपुर) आदि दोनों धर्मों के लोग यात्रा करते थे। माता शीतला का पूजन चेचक जैसी बीमारी से बचने के लिए पूजा दोनों धर्मों के लोग करते थे और दरवाजे

* शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुरा जिला–नीमच (म.प्र)

पर आम व फूल को लटकाते थे।[8] मुस्लिम परम्परा में नजर उतारने की परम्परा का प्रचलन था। इस प्रकार धार्मिक सौहार्द के वातावरण के फलस्वरूप उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट होता है कि संश्लिष्टता व उभयनिष्ठता का वातावरण सौहार्दपूर्ण व शांतिमय रहा होगा।

नवाब आशिफुद्दौला के शासनकाल में शासकीय रूप रामलीला का अभिनय प्रारम्भ हुआ। रामलीला वैसे भारतीय जनमानस नवाबीकाल से पूर्व विद्यमान था। नवाब रामलीला के अवसर पर हिन्दू देवताओं की आरती करते थे। तत्कालीन समाज में हिन्दू–मुसलमान होली, दीवाली, दशहरा, जन्माष्टमी के साथ इमामिया (इमाम की याद में) ईद, नौरोज आदि लखनऊ में आपसी मेल–मिलाप के द्वारा सम्पन्न होता था। चाहे वह नवाब नसिरूद्दीन द्वारा मुस्लिम त्यौहारों को हिन्दू तौर–तरीके से मनान हो, चाहे मुसलमानों द्वारा लखनऊ के सूरज–कुण्ड में होली के आठो वाले मेले में शामिल होना, हिन्दुओं द्वारा ताजियादारी करना होता था। नवाबी कके दिनों में धार्मिक सौहार्द व सामंजस्य स्थापित करने हेतु नवाब आसिफुद्दौला ने लखनऊ में टिकैत गंज का पुराना हनुमान मंदिर, मंदिर कल्याण गिरी हेतु गोमतीदास को स्थल दान, बाबा फतेहचंद का उदासी पंथ का गुरुद्वारा एवं रामलीला को शाही खजाने से चन्द देना आदि गतिविधियाँ होती थी। नवाबीकाल में नवाब टिकैत राय ने वेटा नदी पर पुल बनवाकर एक शिवालय (शिवलिंग) और साथ में मस्जिद का निर्माण, इसके अतिरिक्त अनेक मन्दिरों व मस्जिदों का निर्माण करवाया। इनमें प्रसिद्ध मेंहदीगंज की प्रसिद्ध मस्जिद है। राजा झाऊलाल ने ठाकुरगंज में इमामबाडें का निर्माण करवाया जिसे वर्तमान में 'बहयतउलयाल' के नाम से जाना जाता है। इसके सामने इमलीवाली मस्जिद का निर्माण करवाया। नवाब सआदत अली खाँ ने अध्याध्या में हनुमान गढ़ी पर दो तोपों के दान के साथ महंतों को बहुत सा रूपया दान किया। नवाब मोहम्मद अली के शासनकाल में दिवाली के त्यौहार पर हिन्दू–मुसलमान का भेद किये बिना अनेक कैदियों को मुक्त कर दिया जाता था। नवाब लखनऊ के ऐशबाग में दशहरे के अवसर पर बराबर शामिल होते थे। वे दरबार में हिन्दू पण्डितों को बैठाकर धार्मिक जिज्ञासाएँ शांत करते थे।[9] नवाब वाजिद अली शाह के काल में भारतीय हिन्दू–मुस्लिम एकता की अमिट छाप मिलती हैं। नवाब स्वयं जोगनियों मेले – योगी की वेश–भूषा बनाकर शामिल होते थे। इन्द्रसभाएँ व रासलीलाओं का स्वयं कृष्ण, इन्द्र बनके गोपियों व परीखाने की अप्सराओं के साथ मंचन करते थे। ये समस्त मंचन व आयोजन का आधार हिन्दू परम्परा पर था। नवाब की लिखी बाबुले, ठुमरियाँ, हौलियाँ हिन्दी में रची गयी है। जहाँ नौरोज, मोहर्रम, ईद पर दिल खोल कर पैसा खर्च किया जाता वहीं दूसरी तरफ ब्रह्मभोज का आयोजन बड़े भव्य तरीके से किया जाता था। इन दिनों लखनऊ में अनेक मंदिरों का निर्माण किया गया।

नवाबी शासन के समय में जनसामान्य (हिन्दू–मुस्लिम व अन्य) में सामाजिक व धार्मिक सौहार्द विद्यमान था। यदि हिन्दू लोग तालियादारी और पीर–फकीरों के मुरीद थे तो वहीं पर मुसलमान माता शीतला मंदिर में नीर व फूल मांगते थे। नवाबीकाल में रानी पड़ाइन व धनियाँ महरी की मस्जिद धार्मिक मेल मिलाप का अद्वितीय छाप है। यदि हिन्दुओं में किसी का नाम राजा इमामबख्श का नाम मिलता है तो वहीं मुस्लिमों में ठाकुर अली का नाम मिलता है। तत्कालीन शाही इमारतों में धार्मिक सद्भावना का स्वरूप दिखायी देता है। यदि इन इमारतों में मछली, कमल, नागफन और जलपक्षियों की निर्माण के साथ बेल–बूटों व शाहजहाँनी महराबों, ताँबों, बुर्जों का सम्मिश्रण देखा जा सकता है। अवध के नवाबीकालीन गाँवों व मुहल्लों के नामकरण व धार्मिक सोहार्द का विशेष ध्यान रखा जाता था। इन दिनों अवध में अनेक मुहल्ले बसाये गये हुसैनाबाद मुहल्ले के पास रामगंज, मंसूर नगर फूलबाग के पास, हुसैनगंज, राजा बाजार के पास, कतरा अबूतराग खां, गनेशा खाँ के साथ कसाईबाड़ा आदि बसाया गया। इसे आज भी लखनऊ में देखा जा सकता है। नवाबीकालीन सम्मिश्रण, मेलजोल, व सौहार्द का प्रमाण तत्कालीन समय में हिन्दू–मुस्लिम दंगें का भी प्रमाण न मिलना है।[10] इस प्रकार नवाबीकाल भी धार्मिक प्रवृत्तियों में सामाजिक धार्मिक सौहार्द का प्रतिबिम्ब प्रदान करता है।

अवध में ईस्ट इण्डिया का शासन स्थापित होने व व्यापारियों के साथ ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा अवध में ईसाई धर्म का प्रवेश हुआ। नवाब शुजाउद्दौला द्वारा प्रत्यक्ष रूप से बक्कार युद्ध में हराने के

पश्चात् अवध की तत्कालीन राजधानी फैजाबाद बंग्ला में अँग्रेजी रेजीडेन्ट (अंग्रेज प्रतिनिध) रखना स्वीकार किया इस प्रकार अँग्रेजों का प्रत्यक्ष रूप से अवध में प्रवेश हुआ। नवाब शुजाउद्दौला के पश्चात् उसका पुत्र आसिफुद्दौला अँग्रेजों के सहयोग से अवध का नवाब बना।[11] 1775ई. में नये नवाब द्वारा अवध की राजधानी फैजाबाद से लखनऊ स्थानतरित किया। इस प्रकार अवध प्रशासन में अँग्रेजों के हस्तक्षेप बढ़ने के साथ–साथ ईसाई धर्म, (अँग्रेजों की संख्या में भी वृद्धि, रेजीडेन्ट का शासन पर अत्यधिक प्रभाव के कारण ईसाईत व चर्चों का निर्माण उत्तरोत्तर उत्तरगामी शासकों के काल में होता रहा। इनमें लखनऊ फैजाबाद के चर्च महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार नवाबीकालीन अवध में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई धर्मानुलम्बियों की संख्या अवध के अन्य धर्मो की अपेक्षा बढ़ती गयी। प्रारम्भ में ये परस्पर सामाजिक, धार्मिक एकता व सामाजिक समरसता, सौहार्द्र पूर्ण वातावरण रहा किन्तु अँग्रेजों की बढ़ती साम्राज्यवादी प्रवृत्ति ने परस्पर एक दूसरे धर्मो में तनाव उत्पन्न कर दिया। जिसमें हिन्दू मुस्लिम तनाव अधिक था किन्तु हिन्दू मुस्लिम तनाव 1857 ई. की क्रांति के समय परस्पर दोनों धर्मानुलम्बियों ने धार्मिक द्वेष को त्याग कर क्रांति में खुलकर भाग लिया किन्तु क्रांति के दबाये जाने के बाद यह धार्मिक एकता स्थाई न रही और परस्पर अँग्रेजों भी राजनैतिक गतिविधियों के कारण धार्मिक सोहार्द्र की एकता उत्तरोत्तर खण्डित होती गई।

टी. आर. मेटकाफ यद्यपि मानते हैं कि लखनऊ में जो सांस्कृतिक जीवन या उसका आधार इस्लामिक अवश्य था किंतु दूसरे या हिंदू परम्पराओं के प्रति द्वेषपूर्ण दृष्टिकोण नही था। नवाब न केवल हिंदुओं के त्यौहारों में भागीदारी करते थे वरन् मंदिरो के निर्माण से सहयोग भी करते थे व हिंदू अधिकारी व कर्मचारियों को सेवा में रखते रहे थे, महाजनों की भी सेवा लेते थे ये हिंदू–मुस्लिमों के उत्सवों में भाग लेते थे व उर्दू साहित्य को भी प्रोत्साहित करते थे।[12] कुछ मुस्लिम परंपराओं को हिंदुओ ने अपनाया था जैसे ताजिया जुलुस के प्रति वे सम्मान प्रदर्शित करते थे। वहीं मुस्लिम समाज के लोग होली, दीपावली, दशहरा, वसंत पंचमी जैसे विविध त्यौहारों पर बढ़–चढ़कर अवध के उत्तर मध्यकालीन समाज को नये आयम देने के साथ एक नयी संश्लिष्टता व उभयनिष्ठता प्रदान कर नयी पहचान प्रदान की।

संदर्भ सूची :–

1. अग्रवाल सरयूप्रसाद अवध के स्थानों नामों भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन लखनऊ उ.प्र. सं. प्रथम, वर्ष – 1973 पृ. 1।
2. अवध का गजेटियर खण्ड–एक, वर्ष 1877, पृ. 2।
3. सूर्यवंशी ससाम सिंह अजियन देखी अयोध्या, अलीगंज लखनऊ, प्रथम संस्करण, वर्ष –2007, पृ. 26
4. उर्मिला शर्मा अवध का नवाबी युगीन हिन्दी कथा साहित्य, सूचना विभाग प्रकाशन लखनऊ, वर्ष–1997, पृ.–197।
5. भट्नागर जी. डी. : अवध अण्डर वाजिद अली शाह, पृ.42।
6. प्रवीन निखत : वहीं, पृ.53।
7. प्रवीन योगेश गुलिस्ताने अवध, पृ. 109–110।
8. कातिल हुसैन हफ्त–ए–तमशा, पृ. 84–85।
9. प्रवीन योगेश वहीं, पृ. 110–114।
10. प्रवीन योगेश नयादौर अवध अंक, उत्तरप्रदेश सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ, उ.प्र. पृ.124–126।
11. ऑक्यिोलॉजी सर्वे ऑफ इण्डिया, द रेजीडेंसी लखनऊ, पृ.16–18।
12. प्रवीन निखत सोशियो इकोनामिकस् कण्डीशन ऑफ अवध, पृ. 86, श्रीमती मीर हसन अली वहीं, पृ. 48।

भारत के आर्थिक विकास के समक्ष विभिन्न चुनौतियाँ
(उत्तराखण्ड राज्य के विशेष संदर्भ में)

डॉ. रीनू रानी मिश्रा*
स्वाति रौंकली**

सारांश :– प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से शोधकर्ता द्वारा भारत के आर्थिक विकास में आने वाली विभिन्न चुनौतियों का अध्ययन किया गया है। शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोधपत्र में प्राथमिक आँकड़ों की मदद से विभिन्न चुनौतियों से निपटने के लिए प्राथमिकता निर्धारण हेतु 'टी' टेस्ट के माध्यम से माध्य परीक्षण द्वारा कुल आठ समस्याओं को वर्गीकृत किया गया है। उक्त शोधपत्र का उद्देश्य विभिन्न समस्याओं के समाधान को खोजना है ताकि भविष्य में इन समस्याओं के समाधान हेतु योजना का निर्माण किया जा सके।

मुख्य–शब्द :– आर्थिक विकास, भारतीय अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय आय, बेरोजगारी, पूंजी निर्माण।

प्रस्तावना :– भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की उभरती हुई अर्थव्यवस्था है। यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था में पिछले कुछ दशकों में सुधार हुआ है, परन्तु फिर भी अभी बहुत सारे क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता है। अर्थशास्त्र कमी से निपटने के लिए स्मार्ट विकल्प बनाने के बारे में विचार किया जाना चाहिए। दुर्लभ संसाधनों के आवंटन में सफलता का मूल्यांकन करने के लिए उपयोग किया जाने वाला सबसे मौलिक माप आर्थिक विकास है। व्यक्ति अपनी आय और अपनी संपत्ति के बदलते मूल्य की निगरानी करते हैं। व्यवसाय अपने मुनाफे और उनके बाजार हिस्सेदारी को ट्रैक करते हैं। राष्ट्र आर्थिक विकास को मापने के लिए विभिन्न प्रकार के आँकड़ों की निगरानी करते हैं जैसे कि राष्ट्रीय आय, उत्पादकता आदि। विकास और उत्पादकता से आगे बढ़ते हुए, कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के किसी भी प्रकार के आकलन में वितरण, इक्विटी, प्रति व्यक्ति आय आदि के माप भी शामिल होने चाहिए। देश की आर्थिक विकास प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए पर्यावरण न्याय या सांस्कृतिक संरक्षण जैसी समाज की अन्य जरूरतों पर भी ध्यान देना चाहिए और शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, रोजगार और पर्यावरण का संरक्षण करने पर ध्यान देना चाहिए। नए युग की पृष्ठभूमि के तहत, भूमि संसाधनों के विकास की तीव्रता धीरे–धीरे संतृप्त हो गई है, समुद्र का विकास करना और महासागर का प्रबंधन करना नए आर्थिक उद्योगों को पैदा करने, नवीन विकास ध्रवों को बनाने और उच्च गुणवत्ता वाले विकास के लिए एक नया अवरोध बनाने का एकमात्र तरीका बन गया है।

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से शोधार्थी द्वारा भारत के आर्थिक विकास के समक्ष आने वाली विभिन्न चुनौतियों के विषय में अध्ययन किया गया है। शोध–पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के समंकों का प्रयोग कर भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष आने वाली विभिन्न चुनौतियों की तीव्रता का अध्ययन किया गया है। शोध–पत्र सम्बंधित संस्थानों के लिए योजना निर्माण हेतु अहम भूमिका निर्वाह करेगा।

साहित्य समीक्षा :–

बोशमा और इमरीनो (2009) ने क्षेत्रीय निर्यात में विविधता के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए इटली के क्षेत्रीय व्यापार डेटा का उपयोग किया और पाया कि विविधता क्षेत्रीय विकास की व्याख्या नहीं करती है। हालाँकि, सम्बंधित निर्यात किस्म का क्षेत्रीय विकास और रोजगार के साथ असम्बंधित निर्यात किस्म के विपरीत सकारात्मक और महत्वपूर्ण सम्बन्ध पाया गया। लेखकों ने आयात और निर्यात क्षेत्रों के बीच समानता को भी देखा और कुछ तथ्य ऐसे पाए, जो कि क्षेत्रीय रोजगार का समर्थन करते हैं। हालाँकि, यह खोज इस अर्थ में मजबूत नहीं है कि यह प्रभाव श्रम उत्पादकता या मूल्य वर्धित विकास में क्षेत्रीय वृद्धि के लिए नहीं पाया गया।

*** एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, सरदार भगत सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रूद्रपुर (उधम सिंह नगर) उत्तराखण्ड।**
****शोध छात्रा, अर्थशास्त्र विभाग, सरदार भगत सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रूद्रपुर (उधम सिंह नगर) उत्तराखण्ड।**

कॉर्टिनोविस और वैन ओर्ट (2015) ने एक पैन–यूरोपीय डेटा सेट का उपयोग करके अपना शोध किया। **फ्रैंकेन एवं अन्य (2007)**, ने यह अनुमान लगाया, कि सम्बंधित विविधता सभी क्षेत्रों में ज्ञान के फैलाव के कारण रोजगार वृद्धि से सकारात्मक रूप से सम्बंधित है। असम्बंधित विविधता एक विविध अर्थव्यवस्था से जुड़े पोर्टफोलियो प्रभावों के कारण बेरोजगारी वृद्धि से नकारात्मक रूप से सम्बंधित है और इसके परिणामस्वरूप क्षेत्र–विशिष्ट घटकों के प्रभाव में कमी आई है। स्थानीयकरण बाह्यताओं के माध्यम से प्राप्त लागत में कमी और दक्षता लाभ के कारण विशेषज्ञता सकारात्मक रूप से उत्पादकता से सम्बंधित है। वे इन परिकल्पनाओं का समर्थन करने वाले साक्ष्य खोजने में विफल रहते हैं। हालाँकि, तकनीकी व्यवस्थाओं की शुरुआत करते समय, उन्होंने उच्च प्रौद्योगिकी वाले क्षेत्रों में रोजगार वृद्धि और उत्पादकता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने के लिए सम्बंधित विविधता पाई।

वैन ऊर्ट, डी गेउस और डोगारू (2015) ने भी पैन–यूरोपीय स्तर को देखा और समूहीय ताकतों में अंतर के कारण छोटे और बड़े क्षेत्रों के शहरी आकार के बीच अंतर है, उन्होंने पाया कि सम्बंधित विविधता का रोजगार वृद्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जो बड़े शहरी क्षेत्रों की तुलना में छोटे और मध्यम शहरी क्षेत्रों के लिए अधिक मजबूत प्रतीत होता है। असम्बंधित किस्म के लिए कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पाया गया।

बिशप और ग्रिपियोस (2010) ने ग्रेट ब्रिटेन में क्षेत्रीय रोजगार वृद्धि 'प्रति उद्योग' पर सम्बंधित विविधता के प्रभाव को देखा। उनका तर्क है कि विनिर्माण और सेवा उद्योग के बीच अंतर करना एक अतिसरलीकरण हो सकता है क्योंकि ये क्षेत्र स्वयं भी विषम हैं, और इस प्रकार तंत्र और सीमा क्षेत्रों के बीच भिन्नता पाई जाती है। इस तर्क से प्रेरित होकर, लेखक अलग–अलग दृष्टिकोण का उपयोग करते हैं, और प्रत्येक 2–अंकीय क्षेत्र में रोजगार वृद्धि को आश्रित चर के रूप में देखते हैं। क्षेत्रों के बीच उनकी अनुमानित विविधता परिणामों में परिलक्षित होती है, क्योंकि सम्बंधित विविधता का विभिन्न 23 में से केवल 3 क्षेत्रों (दूरसंचार, कम्प्यूटिंग और अन्य व्यावसायिक गतिविधियों) में रोजगार वृद्धि पर महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, और आश्चर्यजनक रूप से असम्बंधित विविधता का एक महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव है।

सोतरौता (2012) ने फिनलैंड में सम्बंधित किस्म के प्रभाव की जांच की; उन्हें इस बात के प्रमाण नहीं मिले कि सम्बंधित विविधता अपने आप में रोजगार वृद्धि को प्रभावित करती है। बल्कि जब निम्न/मध्यम–तकनीकी क्षेत्रों और उच्च–तकनीकी क्षेत्रों में विघटित हो जाता है, तो उच्च–तकनीकी क्षेत्रों के बीच सम्बंधित विविधता क्षेत्रीय रोजगार वृद्धि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। यहां के क्षेत्रों के बीच भेद अनुसंधान एवं विकास की तीव्रता और नियोजित तृतीयक शिक्षित व्यक्तियों की हिस्सेदारी पर आधारित है।

फेल्सीओग्लू (2011) ने तुर्की क्षेत्रों में उत्पादकता वृद्धि को देखा, और पाया कि क्षेत्रीय आर्थिक गतिविधि की समग्र विविधता के बजाय सम्बंधित विविधता एक क्षेत्र की उत्पादकता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। लेखक ने उत्पादकता को दो तरीकों से परिभाषित किया हैः उत्पादन को मूल्य वर्धित श्रम से विभाजित किया जाता है। व्यापार विविधीकरण के लाभ आमतौर पर साहित्य में अच्छी तरह से पहचाने जाते हैं। एक संसाधन के आधार पर कई तरह से टिकाऊ और संतुलित आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है **(हर्जर और नोवाक–लेहनमैन, 2006)**। विविधीकरण को बढ़ावा देने के लिए, **एसानोव (2012)** ने दो अलग–अलग रणनीतियों का प्रस्ताव रखा, अर्थात् आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण रणनीति और निर्यात–आधारित औद्योगीकरण रणनीति। आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण रणनीति में, घरेलू उद्योगों को बढ़ावा दिया जाता है और विदेशी प्रतिस्पर्धा से संरक्षित किया जाता है। आयात को कम करने के लिए विदेशी उत्पादों को बदलने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। निर्यात आधारित औद्योगीकरण रणनीति में, निर्यात क्षेत्रों का समर्थन किया जाता है और विदेशी प्रतिस्पर्धा के लिए घरेलू बाजार खोले जाते हैं। अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास और आत्मनिर्भरता के लिए निर्यात–संवर्धन और आयात–प्रतिस्थापन रणनीति दोनों महत्वपूर्ण हैं।

अपेंसिल और ओसिनुबी (2019) ने वित्तीय विकास चैनलिंग तंत्र प्रभावों का अध्ययन किया। वे इंगित करते हैं कि निम्नलिखित वित्तीय संचरण चैनलः मौद्रिक नीति, ऋण और अपेक्षा सकारात्मक आर्थिक विकास के लिए आउटपुट को प्रोत्साहित करने और कीमतों को स्थिर करने के लिए आवश्यक हैं। इसी तरह, **ताइवान और नेने (2016)** ने दक्षिणी अफ्रीका विकास समुदाय का अध्ययन किया और पाया कि घरेलू ऋण निवेश को बढ़ावा

देते हैं। इस प्रकार, उन्होंने पाया कि वित्तीय विकास ने मॉरीशस, नामीबिया और दक्षिण अफ्रीका में आर्थिक विकास का कारण बना। अपने अध्ययन में, **नज़ीर एवं अन्य, (2020)** वित्तीय विकास से लेकर आर्थिक विकास तक सकारात्मक कार्य–कारण का समर्थन करते हैं। वे दिखाते हैं कि मौद्रिक प्रबंधन और निजी क्षेत्र को ऋण प्रवाह के रूप में वित्तीय नवाचार आर्थिक विकास के लिए वित्तीय प्रणाली में महत्वपूर्ण चैनल हैं।

भारत के अर्थिक विकास की प्रमुख चुनौतियां :– भारतीय के आर्थिक विकास के समक्ष प्रमुख चुनौतियों को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता हैः–

1. **राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर :–** किसी भी देश के आर्थिक विकास को उसकी राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय के स्तर से देखा जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि राष्ट्रीय आय का स्तर जितना अधिक होगा, आर्थिक विकास की दर उतनी ही अधिक होगी। 2007–2008 में 1999–2000 की कीमतों पर कारक लागत पर भारत का शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (एनएनपी) 27,60,325 करोड़ रुपये था। उस समय की जनसंख्या 1124 मिलियन थी। लोगों का जीवन स्तर दयनीय रूप से निम्न है। यहां तक कि बुनियादी जरूरतें भी बहुसंख्यक आबादी की पहुंच से परे हैं। दुनिया के अन्य देशों के साथ भारत की प्रति व्यक्ति आय की तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत दुनिया के सबसे गरीब देशों में से एक है।
2. **आय और धन में भारी असमानताः–** न केवल प्रति व्यक्ति आय कम है, बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था भी आय और धन के वितरण में बड़ी असमानताओं से चिह्नित है। भारत में, जैसे–जैसे वर्ष बीत रहे हैं, असमानताएं बढ़ रही हैं। इस असमानता का तार्किक परिणाम सामूहिक गरीबी है। कुल जनसंख्या का लगभग 60 प्रतिशत भारत की राष्ट्रीय आय का एक तिहाई हिस्सा साझा करता है जबकि कुल जनसंख्या का केवल 5 प्रतिशत अमीर राष्ट्रीय आय की अधिकतम राशि का आनंद लेते हैं।

   यह असमानता गरीबी की समस्या को और बढ़ा देती है। 1972–73 में भी, कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत से अधिक गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा था। 1993–94 में 36 प्रतिशत से घटकर 2004–05 में लगभग 27.5 प्रतिशत रह गया है, जो कि यूनिफॉर्म रिकॉल अवधि पर आधारित गरीबी का अनुमान है। संक्षेप में, भारतीय अर्थव्यवस्था अभी भी गरीबी के दुष्चक्र में है।
3. **कृषि की प्रधानता :–** कम विकसित देश मुख्य रूप से कृषि और खनन उद्योगों जैसे खनन, मत्स्य पालन और जंगलों पर आधारित रहते हैं। कृषि की प्रधानता को राष्ट्रीय आय और व्यावसायिक पैटर्न की क्षेत्रीय संरचना के दृष्टिकोण से समझाया गया है। भारत में, 1950–51 में हमारे सकल घरेलू उत्पाद का 55 प्रतिशत से अधिक कृषि क्षेत्र या तथाकथित प्राथमिक क्षेत्र से आता था। हालांकि, 2007–08 में, जीडीपी में इस क्षेत्र का योगदान घटकर 19.4 प्रतिशत रह गया है।

   द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों का योगदान क्रमशः 24.9 प्रतिशत और 55.7 प्रतिशत था। इस प्रकार, पंचवर्षीय योजना के इतने वर्षों के बाद भी, अकेले कृषि हमारी राष्ट्रीय आय के पांचवें हिस्से से भी कम का योगदान करती है। व्यावसायिक संरचना कृषि क्षेत्र की प्रधानता और औद्योगिक क्षेत्र के पिछड़ेपन की कहानी भी कहती है। भारत में 2020–21 में कुल जनसंख्या का लगभग 52 प्रतिशत कृषि में लगा हुआ था। यद्यपि भारत में कृषि का प्रमुख स्थान है, फिर भी यह पिछड़ा हुआ है।
4. **जनसंख्या का अत्यधिक दबाव :–** भारत में जनसंख्या वृद्धि दर बहुत अधिक है। जहां तक जनसंख्या के आकार का सम्बन्ध है, भारत चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। 2006–07 में भारत की जनसंख्या अब 1110 मिलियन है। 1991 के दशक के दौरान, भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर 1.61 प्रतिशत प्रति वर्ष थी, जबकि विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि दर 0.7 प्रतिशत थी।

   उच्च जन्म दर (23.5 प्रति 1000) के साथ कम मृत्यु दर (2005–06 में 7.5 प्रति 1000) भारत में जनसंख्या विस्फोट का वास्तविक कारण है। 20 वीं शताब्दी में, भारत की जनसंख्या में 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि विश्व की जनसंख्या में 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
5. **बेरोजगारी :–** एक ओर धीमी आर्थिक विकास दर और दूसरी ओर जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने भारत में बेरोजगारी की समस्या को और बढ़ा दिया है। 1971 और 1999 के बीच, भारत में बेरोजगारों की संख्या में 10 गुना वृद्धि हुई, हालाँकि नौकरी चाहने वालों की संख्या में सालाना 2.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, लेकिन

रोजगार की संभावनाएं 1.8 प्रतिशत की मामूली दर से बढ़ीं। 2006–07 में पंजीकृत नौकरी चाहने वालों की संख्या 40.7 मिलियन थी। आर्थिक सुधारों के दिन शुरू होने के बाद से बेरोजगारी दर लगातार बढ़ रही है। यह 1993–94 में 1.96 प्रतिशत से बढ़कर 2004–05 में 2.39 प्रतिशत हो गया।

1994–2005 के दौरान संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर नकारात्मक 0.31 प्रतिशत पर आ गई, जबकि 1983–1994 में यह 1.20 प्रतिशत थी। कुछ लोग इसे ''जॉब लॉस ग्रोथ'' कहते हैं। शहरी क्षेत्रों में भी, हम प्रच्छन्न बेरोजगारी पाते हैं। यह कुछ हद तक दुखद और साथ ही विरोधाभासी भी है कि योजना अवधि के दौरान किए गए बड़े पैमाने पर निवेश के बावजूद, बेरोजगारी की समस्या ने एक विशाल अनुपात ग्रहण कर लिया है। यह मानव पूंजी की भारी बर्बादी के बराबर है।

6. **पूंजी की कमी और पूंजी निर्माण की निम्न दर :–** चूंकि भारत में काफी हद तक लोग गरीब हैं, उनकी बचत करने की क्षमता कम है। इसके परिणामस्वरूप पूंजी निर्माण की दर कम होती है। इसीलिए विकास अर्थशास्त्रियों का सुझाव है कि गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए निवेश की दर को बढ़ाना आवश्यक है। चूंकि भारत एक पूंजी–गरीब देश है, इसलिए प्रति व्यक्ति पूंजी कम है।

1950–51 में, शुद्ध बचत और शुद्ध निवेश 6 प्रतिशत से थोड़ा अधिक था और 2001–02 में ये दोनों बढ़कर क्रमशः 14.8 प्रतिशत और 16 प्रतिशत हो गए। हालाँकि, हाल के दिनों में स्थिति में काफी सुधार हुआ है। 2006–07 में ये दो आंकड़े बढ़कर 27.1 प्रतिशत और एनडीपी के 28.4 प्रतिशत हो गए। भौतिक पूंजी की मात्रा कम होने के साथ–साथ मानव पूंजी निर्माण भी कम है। 2001 की जनगणना के अनुसार उस समय की कुल जनसंख्या का 34.62 प्रतिशत निरक्षर था। साक्षरता दर 2001 तक लगभग 64.8 प्रतिशत तक पहुंच गई है।

बड़े पैमाने पर निरक्षरता भारत के आर्थिक विकास में एक बाधा के रूप में कार्य करती है। भारत को दुनिया में सबसे अधिक निरक्षर आबादी (304 मिलियन) होने का संदिग्ध गौरव प्राप्त है। भारत में प्रतिकूल लिंगानुपात 2001 में प्रति 1,000 पुरुषों पर केवल 933 महिलाओं के साथ है।

7. **अविकसित अवसंरचना :–** भारत की ढांचागत सुविधाएं या पूंजी के आर्थिक और सामाजिक ओवरहेड अपर्याप्त हैं। इसमें **(ए)** परिवहन और संचार, **(बी)** ऊर्जा, **(सी)** वित्त, आवास और बीमा, **(डी)** विज्ञान और प्रौद्योगिकी, और **(ई)** स्वास्थ्य, शिक्षा, आदि शामिल हैं।

इन अवसंरचनाओं की उपलब्धता अनुकूल विकास के लिए परिस्थितियों का निर्माण करती हैं। किसी अर्थव्यवस्था की अधिरचना मुख्यतः अवसंरचनात्मक सुविधाओं की उपलब्धता पर निर्भर करती है।

जहां तक सामाजिक और आर्थिक उपरिव्यय का सम्बन्ध है, भारत गरीब देश है। यह वास्तव में सच है कि भारत के रेलवे और सड़क नेटवर्क की तुलना विकसित देशों से की जा सकती है। लेकिन उसके बुनियादी सुविधाओं के लिए मांग और सेवाओं के अनुरूप आपूर्ति बढ़ाया जाना आवश्यक है । 2004 में एक भारतीय का प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपयोग (तेल समकक्ष) 531 किलोग्राम था, जबकि यूएसए का 7,921 किलोग्राम था। यहां तक कि चीन का प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपयोग भी भारत की तुलना में अधिक (1,242 किलोग्राम) था। अन्य देशों की तुलना में भारत सूचना प्रौद्योगिकी में गरीब है। 2005 में, प्रति 1000 भारतीयों पर पर्सनल कंप्यूटर का उपयोग 16 जितना कम था, जबकि प्रति 1000 अमेरिकी लोगों पर 762 था। सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में भारत का स्वास्थ्य व्यय 2007–08 में संयुक्त राज्य अमेरिका के सकल घरेलू उत्पाद के 15 प्रतिशत से 1.39 प्रतिशत अधिक था।

इस प्रकार, भारत की सामाजिक ढांचागत सुविधाएं न केवल जरूरतों की तुलना में अपर्याप्त हैं, बल्कि दुनिया के विभिन्न देशों की तुलना में बहुत कम है।

8. **प्रौद्योगिकी का निम्न स्तर :–** निरक्षरता के कारण, भारत में उन्नत या परिष्कृत तकनीक का उपयोग एक अपवाद है। तकनीकी संस्थाओं के सीमित विकास के कारण हम तकनीक के आदिम तरीकों का उपयोग करने के लिए मजबूर हैं जिनकी उत्पादकता कम है।

यद्यपि आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र उन्नत प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं, ग्रामीण उद्योग अभी भी आधुनिक विज्ञान और वैश्वीकृत दुनिया के युग में भी पुरानी और जुगाड़ वाली विधियों का उपयोग करते हैं। यह तकनीकी द्वैतवाद के अलावा और कुछ नहीं है जो भारत देश में कायम है। सही मायने में, भारतीय श्रम की कम उत्पादकता को निम्न स्तर की तकनीक के संदर्भ में समझाया गया है।

शोध समस्या :– प्रस्तुत शोधपत्र में शोधार्थी द्वारा वर्तमान भारतीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न समस्याओं के बारे में अध्ययन करके यह जानने का प्रयास किया है कि उपयुक्त आठ समस्याओं में किस पर प्राथमिकता से कार्य किया जाना चाहिए ताकि अधिकतम आर्थिक विकास सुनिश्चित किया जा सके।

शोध प्रविधि :– प्रस्तुत शोध हेतु सर्वेक्षण प्रणाली का प्रयोग किया गया है। इसके माध्यम से उत्तराखण्ड राज्य के कुल 100 व्यस्क नागरिकों से डाटा को एकत्र किया गया है। डाटा एकत्रित करने के लिए प्रश्नावली विधि का उपयोग किया गया है।

आंकड़ो का प्रस्तुतीकरण :–

तालिका संख्या 1 : व्दमैं.उचसम ैजंजपेजपबे

		N	Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean
F1	राष्ट्रीय आय का निम्न स्तर	100	6.59	2.239	0.224
F2	आय और धन में असमानता	100	5.54	2.439	0.244
F3	कृषि की प्रधानता	100	4.5	2.218	0.222
F4	जनसंख्या का अत्यधिक दबाव	100	4.17	1.881	0.188
F5	बेरोजगारी	100	3.86	1.804	0.18
F6	पूंजी की कमी और पूंजी निर्माण की निम्न दर	100	3.54	1.866	0.187
F7	अविकसित अवसंरचना	100	3.79	1.833	0.183
F8	प्रौद्योगिकी का निम्न स्तर	100	4.01	2.281	0.228

One-Sample Test

	Test Value = 4					
	T	Df	Sig. (2-tailed)	Mean Difference	95% Confidence Interval of the Difference	
					Lower	Upper
F1	11.569	99	.000	2.590	2.15	3.03
F2	6.315	99	.000	1.540	1.06	2.02
F3	2.254	99	.026	.500	.06	.94
F4	.904	99	.368	.170	-.20	.54
F5	-.776	99	.439	-.140	-.50	.22
F6	-2.465	99	.015	-.460	-.83	-.09
F7	-1.146	99	.255	-.210	-.57	.15
F8	.044	99	.965	.010	-.44	.46

विभिन्न उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़ो से प्राप्त जानकरी को एस.पी.एस.एस सॉफ्टवेयर की सहायता से टी. परीक्षण किया गया ताकि सभी आठ घटकों के माध्य मान को ज्ञात किया जा सके। तालिका संख्या 1 में सभी आठ घटकों को उनके माध्य मान के घटते क्रम में व्यवस्थित किया गया है। इसके अनुसारः

कारक संख्या 1. राष्ट्रीय आय का निम्न स्तर जिसका माध्य मान 6.59 है, यह आर्थिक विकास में सबसे बड़ा बाधक प्रतीत होता है। **कारक संख्या 2.** आय और धन में असमानता जिसका माध्य मान 5.54 है, यह भारत के आर्थिक विकास में दूसरा बड़ा बाधक है। **कारक संख्या 3.** कृषि की प्रधानता जिसका माध्य मान 4.5 है, यह भारत के आर्थिक विकास में तीसरा बड़ा बाधक है। **कारक संख्या 4.** जनसंख्या का अत्यधिक दबाव जिसका माध्य मान 4.17 है, भारत के आर्थिक विकास में चौथा बाधक कारक है। **कारक संख्या 8.** प्रौद्योगिकी का निम्न स्तर 4.01 माध्य मान के साथ भारत के अर्थिक विकास में पांचवा बाधक कारक है। **कारक संख्या 5.** बेरोजगारी को उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़ो के आधार पर 3.86 माध्य मान के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में छठा मुख्य बाधक कारक है। **कारक संख्या 7** अविकसित अवसंरचना 3.79 माध्य मान के साथ सातवें स्थान पर

है। वहीं **कारक संख्या 6** पूंजी की कमी और पूंजी निर्माण की निम्न दर 3.54 माध्य मान के साथ उक्त आठ करको में भारत के आर्थिक विकास को सबसे कम प्रभावित करने वाला कारक है।

निष्कर्ष : भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की उभरती हुई अर्थव्यवस्था है। यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था में पिछले कुछ दशकों में सुधार हुआ है, परन्तु फिर भी अभी बहुत सारे क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता है। भारत की जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 125 करोड़ है, जो कि भारत को विश्व के समक्ष एक बहुत बड़े बाजार के रूप में प्रस्तुत करता है, जहां विकास की भरपूर संभावनाएं विद्यमान हैं। भारतीय बाजार एवं अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए आर्थिक विकास में बाधक कारकों एवं उनकी गहनता के बारे में जानना एवं उस से निपटने के लिए योजना बनाना अति आवश्यक है। प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से शोधकर्ता ने भारतीय अर्थ़व्यवस्था के विकास में बाधक कारकों का गहनता से अध्ययन किया है। इसके अनुसार राष्ट्रीय आय का निम्न स्तर भारत की आर्थिक तरक्की में सबसे बड़ा बाधक तत्व है। आर्थिक विकास के लिए इन कारकों पर इनकी गहनता के क्रम में कार्य करना चाहिए ताकि इनके प्रभाव को कम किया जा सके।

संदर्भ :-

1. Apanisile, O.T. and Osinubi, T.T. (2019), "Financial development and the effectiveness of monetary policy channels in Nigeria: a DSGE approach", Journal of African Business, Vol. 21 No. 2, pp. 1-22.
2. Bishop, P., & Gripaios, P. (2010). Spatial externalities, relatedness and sector employment growth in Great Britain. *Regional Studies*, *44*(4), 443–454. doi:10.1080/00343400802508810
3. Boschma, R., & Iammarino, S. (2009). Related variety, trade linkages, and regional growth in Italy. *Economic Geography*, *85*(3), 289–311. doi:10.1111/j.1944-8287.2009.01034.x
4. Cortinovis, N., & Van Oort, F. (2015). Variety, economic growth and knowledge-intensity of European regions: A spatial panel analysis. *Regional Studies*, *41*(5), 685–697.
5. Esanov, A. (2012), Economic Diversification: Dynamics, Determinants and Policy Implications, Revenue Watch Institute, available at: http://resourcegovernance.org/sites/default/files/RWI_Economic_ Diversification.pdf.
6. Falcioglu, P. (2011). Location and determinants of productivity: The case of the manufacturing industry in Turkey. *Emerging Markets Finance and Trade*, *47*(Suppl. 5), 86–96. doi:10.2753/REE1540-496X4706S506
7. Frenken, K., Van Oort, F. G., & Verburg, T. (2007). Related variety, unrelated variety and regional economic growth. *Regional Studies*, *41*(5), 685–697. doi:10.1080/00343400601120296
8. Herzer, D. and Nowak-Lehnmann, D.F. (2006), "'What does export diversification do for growth?', an econometric analysis", Applied Economics, Vol. 38 No. 15, pp. 1825-1838.
9. Nazir, M.R., Tan, Y. and Nazir, M.I. (2020), "Financial innovation and economic growth: empirical evidence from China, India and Pakistan", International Journal of Finance and Economics, pp. 1-24
10. Strambach, S., & Klement, B. (2012). Cumulative and combinatorial micro-dynamics of knowledge: The role of space and place in knowledge integration. *European Planning Studies*, *20*(11), 1843–1866. doi:10.1080/09654313.2012.723424
11. Taivan, A. and Nene, G. (2016), "Financial development and economic growth: evidence from Southern African development community countries", The Journal of Developing Areas, Vol. 50 No. 4, pp. 81-95.
12. van Oort, F., de Geus, S., & Dogaru, T. (2015). Related variety and regional economic growth in a cross-section of European urban regions. *European Planning Studies*, *23*(6), 1110–1127. doi:10.1080/09654313.2014.905003.

शान्ति शिक्षा की समकालीन प्रासंगिकता एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

अश्विनी कुमार पाठक*

सारांश :– इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में 'शान्ति–शिक्षा' की प्रासंगिकता एवं महत्व में लगातार वृद्धि हुई है। प्रत्येक मानव मन में विकसित हो रही नकारात्मक प्रवृत्तियों ने अपना प्रसार सम्पूर्ण विश्व–समुदाय तक कर लिया है। आये दिन तृतीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियां बनती और बिगडती हैं। ऐसे में शिक्षा का उत्तरदायित्व क्या हो? यह भी एक सोचनीय विषय है। शिक्षा में शान्ति के सर्वांग स्वरुप का समावेशन करके न केवल मानवीय दृष्टिकोण में परिशोधन, संवर्धन एवं परिवर्तन किया जा सकता है वरन इसको व्यापक रूप में विकसित कर विश्व को एक नई–सोच, नई–दिशा और नए–दृष्टिकोण की तरफ मोड़ा जा सकता है। शान्ति–शिक्षा एक बहुआयामी एवं अनेक घटक–तत्वीय संकल्पना है। प्रासंगिक परिस्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि इसके विभिन्न घटक–तत्वों को उजागर किया जाय तथा विभिन्न आयामों को स्पष्ट करते हुए इसे विद्यालयी संस्कृति एवं पाठ्यचर्या में स्थान दिया जाय। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी अपने आधार सिद्धांत में शान्ति–शिक्षा के सर्वांग स्वरुप में से कई तत्वों का समावेशन किया है और इस सम्बन्ध में अनेक घटक–तत्वों के प्रोत्साहन की चर्चा भी की है, जिसे अब मूर्त रूप प्रदान करना शिक्षा जगत के असंख्य चिंतको के समक्ष एक विचारणीय एवं चुनौतीपूर्ण विषय है।

प्रस्तावना

शिक्षा मानव मस्तिष्क को इस तरह खोल देती है कि वह रूढ़ियों, कुंठाओं, पूर्वाग्रहों और कृत्रिम बंधनों से मुक्त होकर स्वतंत्र और निष्पक्ष चिंतन करने योग्य बन सके। मानव की सम्पूर्णता का श्रेय शिक्षा को ही जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी अपने शीर्षक समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा : सभी के लिए अधिगम, में इसी तरह की बात कही है। शिक्षा ने मानव जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित और परिष्कृत करने का कार्य किया है। एक तरफ जहाँ शिक्षा ने मनुष्य के जीवन–दर्शन को, तो वहीं दूसरी तरफ मानवीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं ने शिक्षा के स्वरुप को निरंतर प्रभावित करने का कार्य किया है। इन दोनों में लगातार स्वस्थ अंतःक्रिया का होना भी नितांत आवश्यक है क्योंकि शिक्षा और मनुष्य के बीच चलने वाली ये अंतःक्रिया मानव विकास का आवश्यक प्रतिमान है। हीगल के द्वन्द्ववाद की तरह ही वाद, प्रतिवाद और संवाद रूपी चक्रीय मार्ग से गुजरकर दोनों एक दूसरे के कार्य का निश्चय कर सकेंगे और प्राप्त परिणामों का उपभोग कर सकेंगे। शिक्षा जीवन की तैयारी है (विलमॉट) और शिक्षा का कृत्य उत्तम नैतिक चरित्र का विकास करना है (हरबर्ट)। डॉ.जाकिर हुसैन लिखते हैं कि, 'शिक्षा का कार्य बालक के मस्तिष्क को शुद्ध, नैतिक और बौद्धिक मूल्यों का अनुभव करने में इस प्रकार सहायता देना है कि वह इन मूल्यों से प्रेरित होकर, इनको सर्वोत्तम प्रकार से अपने कार्य और अपने जीवन में प्राप्त करे।'

शिक्षा में उद्देश्यों की आवश्यकता निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति, बदलती हुई मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति और आदर्श मानदण्डों के प्रस्तुतीकरण के लिए अनिवार्य है। शिक्षा के कार्य और उद्देश्यों पर काफी हद तक देश, काल, परिस्थितियों तथा तात्कालिक मानव–समाज की आवश्यकताओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। ऐसा नहीं है कि शिक्षा के सभी उद्देश्य पूर्णतः भिन्न हो जायेंगे किन्तु अधिकांश उद्देश्यों पर बदलती हुई आवश्यकताएं और समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव तो अवश्य ही पड़ेगा। ऐसी स्थिति में शिक्षा को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए मनुष्य को उन परिस्थितियों से लड़ने और उबरने की सूझ विकसित

***शोध छात्र, शिक्षा संकाय, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर**

करनी पड़ेगी। इस तरह शिक्षा में उद्देश्यों का निर्धारण करते समय कुछ मूलभूत प्रश्नों पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता होनी चाहिए। जैसे :–

- राष्ट्रीय और स्थानीय आवश्यकताएं कौन–कौन सी हैं?
- अन्तर्राष्ट्रीय और समसामयिक मुद्दे कौन–कौन से हैं?
- उद्देश्यों से सम्बंधित संसाधनों की पर्याप्तता कितनी है?
- संसाधनों की सुलभता में सीमाएं कौन–कौन सी हैं?
- निर्धारित किये गए उद्देश्य किस हद तक सर्वांगीण हैं?
- उद्देश्यों में कहाँ तक समानता, संतुलन और अन्तःसम्बन्ध है?
- उद्देश्यों में परिस्थितिवश या आवश्यकतानुसार अनुकूलन तथा परिवर्तनशीलता का गुण किस हद तक विद्यमान है?
- निर्धारित किये गए उद्देश्य कहाँ तक व्यावहारिक और प्राप्य हैं?
- निर्धारित किये गए उद्देश्यों से संस्कृति की रक्षा और हस्तांतरण कैसे किया जा सकता है?
- निर्धारित किये गए उद्देश्यों से प्राप्त परिणामों की उपादेयता क्या होगी?

प्रासंगिक परिस्थिति में शिक्षा के एक महत्वपूर्ण कार्य व उद्देश्य के रूप में 'शान्ति' की भावना का विकास :– यद्यपि शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की भावना का विकास करना शिक्षा के कार्य और उद्देश्यों में सदैव ही प्रमुख रहा है तथापि व्यवस्थित, समृद्ध तथा औपचारिक व अनौपचारिक रूप में शिक्षा के क्षेत्र में इसके सन्निवेश और पुनरीक्षण हेतु सतत् अध्ययन एवं चिंतन की आवश्यकता भी सदैव से उतनी ही प्रासंगिक बनी हुई है। आज विश्व की बदलती हुई परिस्थितियों ने मानवीय विचारधारा और दृष्टिकोण को कुछ यूँ परिवर्तित कर दिया है कि मनुष्य अपनी संतुष्टि की सीमा ही नहीं तय कर पा रहा है और, वह दूसरों की सीमाओं में कुछ इस हद तक प्रवेश करता चला जा रहा है कि अगले व्यक्ति का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। जीवन में संघर्ष, तनाव, द्वंद्व, व्याकुलता, उद्विग्नता आदि का क्षेत्र इतना विस्तृत होता चला जा रहा है कि संवेदना और भावनाओं के लिए कोई स्थान ही शेष नहीं रह गया है। व्यक्ति किसी भी रूप अथवा परिस्थिति में समायोजन का पक्षधर नहीं है। समाज में स्नेह, सद्भाव, सहयोग और भाई–चारे की भावनाएं दिन–प्रतिदिन समाप्त होती चली जा रही हैं। छोटी–छोटी बातों पर इंसान एक–दूसरे से लड़ने–झगड़ने, मार–पीट और खून–खराबे तक पहुँच जा रहा है। व्यक्ति की यही भावनाएं विस्तृत रूप में राष्ट्रों के आपसी संबंधों में भी दिखाई दे रही है। वैश्विक स्तर पर भी राष्ट्रों में शक्तिशाली बनने की होड़ सी लगी हुई है। निरंतर विनाशक हथियारों का आविष्कार और बड़े पैमाने पर उनका निर्माण व भण्डारण, विकसित होने की पहचान बन गए हैं। इन परिस्थितियों को देखते हुए यह कहना तनिक भी गलत नहीं होगा कि युग चाहे कोई भी हो शान्ति को नकारने का सीधा अर्थ है विनाश, अतः शान्ति में ही मानव सभ्यता के उत्थान और पतन का रहस्य छिपा है। ऐसी समसामयिक वैश्विक परिस्थिति में, शिक्षा का दायित्व क्या है? उसके उद्देश्यों और कार्यों में क्या परिवर्तन हो? यह पूरे विश्व के असंख्य विद्वानों और चिंतकों के समक्ष एक सोचनीय बिन्दु है। ऐसे में आशा की जो एक छोटी सी किरण, शैक्षिक दृष्टिकोण से दिखाई पड़ती है वह है 'शान्ति–शिक्षा'। यदि शिक्षा में शान्ति के तत्वों और आयामों का सन्निवेश किया जाय तो बदलते हुई मानवीय दृष्टिकोण और व्यवहारों में किंचित् परिवर्तन संभव है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी समग्र और बहुविषयक शिक्षा के शीर्षक में इस तरह की समकालीन वैश्विक चुनैतियों से उबरने के लिए विद्यार्थियों में समझ विकसित करने की बात कही है।

महात्मा गांधी ने ऐसी सभी शिक्षा को ख़ारिज कर दिया जिसमें मानवीय मूल्यों की शिक्षा का अभाव हो उन्होंने कहा कि ऐसी शिक्षा जो मनुष्य को अच्छे और बुरे के बीच अन्तर करने और अच्छे को आत्मसात व बुरे से बचना न सिखा पाए वह मिथ्या शिक्षा है। गांधीजी का शिक्षा दर्शन वर्तमान संकट से जूझ रहे विश्व के लिए एक पद चिन्ह है। इस पर चलने के लिए सबसे आवश्यक चीज है शिक्षा, जो स्नेह को बढ़ावा देती है, चरित्र का विकास करती है और शान्ति को प्राप्त करने के लिए एक बौद्धिक आधार प्रदान करने के

साथ ही साथ शिक्षार्थियों को समाज में इस हेतु सुधार एवं योगदान देने के लिए समर्थ भी बनाती है। जे.कृष्णमूर्ति का विचार है कि, 'भले ही पूर्व में हुए युद्धों में हम शामिल न रहे हों किन्तु फिर भी क्या हमें उन युद्धों से कुछ सीखना नहीं चाहिए?...' बदलती हुए सोच और दृष्टिकोण ने मानव समुदाय को एक के बाद एक, करके दो विश्वयुद्धों की त्रासदी झेलने को विवश कर आज तृतीय विश्वयुद्ध के मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया है। परमाणु युद्ध के बाद, अब युद्ध का स्वरुप जैविक विनाश का रूप धारण करता चला जा रहा है। इन त्रासदियों को समाप्त तो नहीं किया जा सकता किन्तु निःसंदेह टाला अवश्य जा सकता है। मानव दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने और सकारात्मक दिशा की ओर मोड़ने में शिक्षा की सहायता ली जा सकती है और 'शान्ति' को शिक्षा में स्थान देकर मानवीय मार्ग से भटके हुए मनुष्य को पुनः मानवता और मानवीय भावनाओं की ओर प्रेरित किया जा सकता है। एक मान्यता कहती है कि, 'जब हम क्रोध, पीड़ा व दुःख के स्थान पर शांति के पथ का अनुकरण करते हैं तो हमें विश्व शांति के प्रति योगदान देने का अद्‌भुत अवसर प्राप्त होता है।'

अतः शिक्षा में औपचारिक रूप से शान्ति के घटक–तत्वों और आयामों को विभिन्न प्रकार से सम्मिलित करते हुए निःसंदेह शान्ति की संस्कृति को प्रोत्साहित किया जा सकता है और इससे शिक्षा के एक आवश्यक दायित्व की पूर्ति भी हो जाएगी। भौतिकवादी संस्कृति से प्रभावित मानवीय दृष्टिकोण एवं व्यवहार में एक स्वस्थ और अपेक्षित परिवर्तन लाना सरल हो सकेगा। वैयक्तिक स्तर पर अंतर्द्वंद्व, तनाव, संघर्ष, व्याकुलता, उद्विग्नता आदि भावनाओं पर नियंत्रण करने की आतंरिक क्षमता सुदृढ़ होगी साथ ही साथ शांत और स्थिर मन तथा दृढ़ आत्मविश्वास में संवृद्धि हो सकेगी। सामाजिक स्तर पर प्रेम, सहयोग, भाई–चारा, सद्‌भावना, सह–अस्तित्व, सहिष्णुता आदि अनेकानेक भावनाओं का विकास हो सकेगा और राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले संघर्ष और युद्धों को टाला जा सकेगा। अतएव निःसंदेह शान्ति को शिक्षा में स्थान देने के माध्यम से इसके विविध आयामों और घटक–तत्वों के आपसी अंतःक्रिया का परिणाम भावी समाज में व्यक्तिनिष्ठता से संरचित विविध प्रकार के व्यक्तित्वों के प्रकटन के रूप में दृष्टिगोचर होगा।

शान्ति शिक्षा :– 'शान्ति–शिक्षा' का तात्पर्य शिक्षा के माध्यम से ऐसी संस्कृति के उन्नयन हेतु अनुकूल वातावरण के निर्माण से है जिसमें न केवल हिंसा, द्वंद्व, संघर्ष, विद्वेष आदि नकारात्मक भावनाओं को नियंत्रित किया जा सके वरन् अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता, सह–अस्तित्व, सामाजिक–न्याय जैसी अनेकानेक सकारात्मक भावनाओं को समुचित प्रोत्साहन भी मिल सके। इसके अलावा शान्ति–शिक्षा के द्वारा द्वंद्व, संघर्ष, विद्वेष जैसी भावनाओं से आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों स्तरों पर जूझते मानव मन में इस समस्या के समाधान, तथा पूर्वाग्रहों एवं कुंठाओं से मुक्त स्वतंत्र व निष्पक्ष चिंतनशीलता की क्षमता को विकसित करने वाली, न केवल मानव समुदाय वरन् समस्त सृष्टि के विषय में स्वस्थ दृष्टिकोण के उन्नयन को प्रोत्साहित करना है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शान्ति शिक्षा आधुनिक मनुष्य के यंत्रवत जीवनशैली में ऊर्जा के पुनर्संग्रहण रूपी अल्प विराम का स्रोत है। यह वस्तुनिष्ठता की ओर बढ़ते जारहे मानव मस्तिष्क को व्यक्तिनिष्ठता के प्रति प्रशिक्षित करने का भी एक बेहतर विकल्प है। आज यह आवश्यक हो गया है कि बदलते हुए परिवेश, शैक्षिक परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में एक परिवर्धित स्वरुप में शान्ति–शिक्षा को पुनर्स्थापित किया जाय जिससे एक ऐसी जीवनशैली के विकास को प्रोत्साहन मिल सके जो अहिंसावादी, न्यायप्रिय, सहिष्णु और शोषण रहित समाज की संरचना में सहायक सिद्ध हो। पाठक ने अपने शोध–पत्र में शान्ति–शिक्षा के तीस ऐसे आधारभूत घटक–तत्वों को उजागर करने का प्रयत्न किया है जिनको शान्ति की संस्कृति को प्रोत्साहित करने वाले तत्वों के रूप में मान्यता दी जा सकती है। ये घटक–तत्व हैं :– अहिंसा, स्नेह(प्रेम), सहयोग (सहकारिता), सद्‌भावना, सह–अस्तित्व, अधिकार से पहले कर्तव्य, परानुभूति (तदनुभूति), सहानुभूति (संवेदना), समंजन (समायोजन), भ्रातृत्व (भाई–चारा), संतोष (संतुष्टि), करुणा (दया), धैर्य, सहिष्णुता (सहनशीलता), क्षमाशीलता, निष्पक्षता (पूर्वाग्रहों की अनुपस्थिति), समान वितरण (अवसर) व सामाजिक न्याय, सदाचार, ईमानदारी, विनम्रता (विनयशीलता), अपरिग्रह (जरुरत से अधिक संचय न करने की प्रवृत्ति), कर्त्तव्यनिष्ठता, विश्वास (आस्था), त्याग, परोपकार, सच्चाई, निर्णय

क्षमता, सरलता (सादगी), ग्रहणशीलता तथा आत्मगौरव। उक्त समस्त घटक ऐसी मानवीय भावनाएं हैं जिनका समुचित प्रोत्साहन शान्ति की संस्कृति का प्रोत्साहन स्वीकार किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शान्ति शिक्षा से सम्बंधित निहितार्थ :– शान्ति कोई एक वस्तु नहीं है और न तो एकांगी विचार ही है, बल्कि 'शान्ति' एक सर्वांग विचार है जिसमें अनेकानेक विचार, भावनाएं और मान्यताएं सम्मिलित हैं। इसी तरह शान्ति के लिए किये गए यत्न का परिणाम अथवा उपज भी एकांगी नहीं हो सकता अपितु वह भी एक सर्वांगी या समुच्चय रूपी दृष्टिकोण अथवा विचारधारा होगी जिसमें जीवन की अनेकानेक परिस्थितियों में लिए जाने वाले निर्णयों की निर्णय–क्षमता को प्रभावित करने का न केवल सामर्थ्य होगा बल्कि साथ ही साथ मानवीय सोच और व्यवहार को भी प्रभावित करने की क्षमता होगी। इस बात की महत्ता को नीति–निर्माताओं ने भी भली प्रकार आत्माभूत कर लिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शान्ति–शिक्षा के विभिन्न घटक–तत्वों की चर्चा अनेक प्रसंगों में की है और अपने आधारभूत सिद्धांत में ही इस बात का उल्लेख किया है कि नैतिकता, सहानुभूति, मानवीय मूल्यों, दूसरों के लिए सम्मान, शिष्टाचार, सेवा की भावना, समानता, न्याय, सहयोग, परोपकारी भागीदारी को प्रोत्साहन आदि बड़े स्तर पर शिक्षा प्रणाली एवं संस्थानों के मार्गदर्शक हैं। अर्ली चाइल्डहुड केयर एण्ड एजुकेशन (ईसीसीई) में शिक्षा की नींव के लिए भी शिक्षा नीति ने शान्ति–शिक्षा के विभिन्न घटक–तत्वों के प्रोत्साहन हेतु विविध गतिविधियों एवं क्रियाकलापों का प्रावधान सुझाया है। स्कूलों के नए पाठ्यक्रम डिजाईन में भी शिक्षा–नीति ने विद्यार्थियों में नैतिक निर्णय के प्रोत्साहन को महत्व देने की बात सुझाई है जिसको विस्तृत करते हुए भविष्य में अहिंसा, सहिष्णुता, समानता, समानुभूति आदि के माध्यम से पारम्परिक भारतीय मूल्यों को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया है, नीति ने इसके लिए वर्तमान विद्यालयी परंपरा एवं पाठ्यचर्या से बाहर हो चुके जातक कथाओं, पंचतंत्र की कहानियों, हितोपदेश, दंतकथाओं और भारतीय परंपरा की प्रेरक कहानियों को भी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी माना है। नीति ने समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा के अंतर्गत भी मानवीय मूल्यों पर सामग्री के समावेशन की बात कही है। उच्चतर शिक्षा चूँकि मनुष्य और साथ ही सामाजिक कल्याण के विकास में भी अति आवश्यक भूमिका निभाती है इसलिए इस स्तर पर भी न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाई–चारे की भावना के विकास की भी बात इस शिक्षा नीति में स्पष्ट की गयी है। समग्र और बहु–विषयक शिक्षा के विचार को धरातल पर लाने के लिए मूल्य आधारित शिक्षा के अंतर्गत सत्य, नेक आचरण, शान्ति, प्रेम, अहिंसा आदि को शिक्षा का अभिन्न अंग स्वीकार किया गया है। नीति ने शान्ति से सम्बन्धी घटक तत्वों के प्रोत्साहन हेतु एक बात जो सबसे सारगर्भित ढंग से जोड़ी है वह– नयी मूल्यांकन पद्धति में (स्वयं, अध्यापकों के अलावा) साथियों द्वारा मूल्यांकन है, यह परंपरा विद्यार्थियों में आपसी सहयोग, समंजन, प्रेम व सद्भावना को विकसित करने वाली सिद्ध होगी।

निष्कर्ष :– भारतीय शिक्षा पर अनेक विदेशी संस्कृतियों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने भारतीय शिक्षा का स्वरुप और उद्देश्य दोनों ही परिवर्तित कर इसे केवल रोजी–रोटी तक ही सीमित कर दिया। इस विदेशी शिक्षा की पद्धति ने भारतीयों को बहुरुपिया बनाना प्रारम्भ कर झूठे, चापलूस, स्वार्थी, धूर्त, अनैतिक, असहिष्णु तथा रिश्वतखोर लोगों का निर्माण किया है। तात्कालिक शिक्षा–पद्धति छात्र को स्पर्धा, घृणा और धोखेबाजी का जो सबक सिखा रही है उसमें यदि हस्तक्षेप नहीं किया गया तो दिन–प्रतिदिन संघर्ष और विभाजन का बोया जाने वाला यह बीज जल्द ही दैत्याकार वृक्ष का रूप ले लेगा। ऐसी विकल परिस्थिति में 'शान्ति–शिक्षा' अथवा 'शान्ति के लिए शिक्षा' की अवधारणा का उदय हुआ है। नैतिकता, धर्म, आध्यात्म, त्याग, संतोष, संयम, परोपकार, सहिष्णुता आदि तत्वों को शिक्षा में विधिवत् स्थान देना होगा, जिसे समग्र रूप में 'शान्ति–शिक्षा' कह सकते हैं। समाज में व्याप्त संघर्ष एवं टकराव को कम करने के लिए शिक्षा में 'शान्ति–शिक्षा' को स्थान देकर प्रारंभिक स्तर से ही छात्रों के अंतःकरण में शान्ति के विभिन्न आयामों एवं तत्वों का बीजारोपण कर वैश्विक परिदृश्य एवं दृष्टिकोण को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया जा सकता है तथा बालकों को सद्–असद्, विवेक–अविवेकपूर्ण तथा न्याय–अन्यायपूर्ण प्रवृत्ति के प्रति जागरूक बनाया जा सकता है। गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी अपने लेख 'माई स्कूल' में कहा है– 'बालक के मस्तिष्क को इस तथ्य से भर देना चाहिए कि वह, मानव संसार में जन्मा है जो उसके चारों तरफ सामंजस्य और सुस्वरता से

जुड़ा हुआ है।' अतः शान्ति–शिक्षा को प्रत्येक स्तर की पाठ्यचर्या में विविध प्रकार से समाहित करते हुए स्थान देना आज अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हो गया है और इस तरह की पाठ्यचर्या प्रारूप का विकास और उसको मूर्त रूप प्रदान करना अब शिक्षा जगत के असंख्य चिंतको के समक्ष एक विचारणीय एवं चुनौतीपूर्ण विषय है।

सुझाव :– आज स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षार्थियों को ऐसी शिक्षा देने की आवश्यकता है जिससे उनमें हिंसा, विद्वेष, आतंकवाद जैसी अवांछनीय कृत्यों एवं भावनाओं के प्रति जहाँ नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो वहीं परस्पर प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता, भाई–चारा और सह–अस्तित्व जैसे सकारात्मक गुणों एवं भावनाओं का विकास हो सके तथा साथ ही उनमें शान्ति के प्रति अनुराग पैदा हो। 'शान्ति–शिक्षा' को विधिवत् स्थापित करने के लिए सबसे प्रभावी साधन शिक्षा ही है। यद्यपि पूर्व में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा–2005 ने इसको पाठ्यचर्या में स्थान देने का सुझाव प्रस्तुत किया था तथापि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी विभिन्न सन्दर्भो में शान्ति–शिक्षा के अनेकानेक घटक–तत्वों के प्रोत्साहन की चर्चा की है इसलिए वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अब यह आवश्यक हो गया है कि 'शान्ति–शिक्षा' हेतु समुन्नत पाठ्यचर्या का विकास किया जाय और यही समसामयिक युग एवं वैश्विक परिस्थितियों की मांग भी है। अतः शान्ति शिक्षा के समग्र स्वरूप को पाठ्यचर्या में विधिवत समाहित किया जाना चाहिए, जिसमें अनेकानेक पाठ्यवस्तु, पाठ्येत्तर एवं पाठ्यसहगामी क्रियाएं, कक्षागत एवं अकक्षागत क्रियाएं, विद्यार्थियों के साथ–साथ अध्यापकों के लिए सेवापूर्व तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण, सेमिनार, चर्चाएँ, विभिन्न स्तरों पर पुरस्कार आदि विविध रूपों में शान्ति–शिक्षा एवं उसके विविध घटक–तत्वों व आयामों को सम्मिलित किया जा सकता है। इस तरह शान्ति की प्रवृत्तियों के लगातार विकास होने से सहयोग, प्रेम, सह–अस्तित्व और शांतिपूर्ण मूल्यों को बल मिलेगा। शिक्षा की सहायता से ये प्रवृत्तियां सहज व्यवहार में परिणित होने लगेंगी; और व्यवहार, आदतों के माध्यम से जीवनशैली को भी परिमार्जित करने लगेंगी।

सन्दर्भ–सूची :–

1- कृष्णमूर्ति.जे.retrieved fromhttp://jkrishnamurthyhindi.blogspot.com/2010/03/blog-post_20.html&hl=en-IN 10June2017at09:25.A.M.**&** https://www.slideshare.net/tskumar1/education-and-the-significance-of-life-j-krishnamurti 12May2019at10:30.P.M.**&** कृष्णमूर्ति.जे. 03 फरवरी 2020, *टाइम्स ऑफ़ इंडिया,* दैनिक आंग्ल समाचार–पत्र. वी हैवेंट लर्नट् फ्रॉम द एगनी ऑफ़ वॉर्स (इंटरेक्शन बेस्ड : एडिटेड आर्टिकल). सम्पादकीय. पृ०10.

2. जैसवाल. सीताराम. 2013. *शिक्षा एवं समाज.* प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ.

3. टैगोर. रवीन्द्रनाथ.1917. *'माई स्कूल', इन 'ए टैगोर रीडर'* (संपादक– अमीय चक्रवर्ती 1961), बीकन प्रेस, बॉस्टन.

4. दैनिक आंग्ल समाचार–पत्र. *टाइम्स ऑफ़ इंडिया.* कुन्दू. एम०एन०. 10 दिसम्बर, 2019. रिलिजन्स : बेस्ड आन फेथ, इंटलेक्ट एंड विजडम. सम्पादकीय, पृ०8.

5. दैनिक आंग्ल समाचार–पत्र. *टाइम्स ऑफ़ इंडिया.* कुरहाडे. एम.एस. 19 दिसम्बर, 2019. गांधीजीज् पैशनेट प्ली फॉर होलिस्टिक एजुकेशन. सम्पादकीय. पृ०10.

6. पाठक.अश्विनी कुमार. 2020. *शान्ति शिक्षा एवं इसके विविध पक्षों में निहित घटक तत्व.* शोध सरिता (त्रैमासिक पत्रिका). संचार एडुकेशनल एण्ड रिसर्च फाउंडेशन. लखनऊ.

7. फड़िया. बी.एल. 2005. *पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास.* साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा.

8. ब्रह्माकुमारी. 2019. *शुद्ध जीवन जीने के मंत्र.* प्रभात पेपरबैक्स. नई दिल्ली.

9- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf 02 September 2021 .at 12:31.PM.

सामाजिक विज्ञान विषय के परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र

शशि रंजन*

सारांश :– 21वीं शताब्दी का युग सरल न होकर जटिलताओं का युग है। स्कूल में विद्यार्थियों को दी जाने वाली सामाजिक विज्ञान की शिक्षा में निहित मूल्यों के कारण इस विषय में जटिलता उत्पन्न होती है क्योंकि वास्तविकता पर आधारित निर्णयों को मूल्यों पर आधारित निर्णयों से अलग करना या कैसे अलग किया जाए, यह इस विषय के समक्ष एक चुनौती है। सामाजिक विज्ञान का लक्ष्य मनुष्य से जुड़ी वर्तमान समस्याओं को अच्छी तरह से समझना है। इसके लिए विद्यार्थी को यह तथ्य समझाने का प्रयास किया जाता है कि मानव जाति का विकास कैसे हुआ? उसने अपने परिवेश को किस प्रकार से अपने अनुकूल करना सीखा, किस प्रकार उसका उपयोग किया एवं अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किन परिवर्तनों को स्वीकार किया? और ये परिवर्तन मानव जीवन को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं? प्रस्तुत लेख में उपर्युक्त तथ्यों के लिए सामाजिक विज्ञान किस प्रकार सहायक है एवं आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र इस विषय के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कितना मददगार है, के बारे में विस्तृत चर्चा की गयी है क्योंकि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास हेतु अनुभव के आधार पर सीखने, कौशल निर्माण एवं जीवन के विभिन्न आयामों के प्रति उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में अध्यापक सामाजिक विज्ञान विषय से कैसे सहयोग प्राप्त कर सकते हैं?

मुख्य शब्द : आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र, सामाजिक विज्ञान, बौद्धिकता एवं नैतिकता, यथास्थिति को चुनौती।

प्रस्तावना :– वर्तमान समय में सामाजिक विज्ञान विषय देश भर के सभी स्कूलों में पढ़ाए जा रहे है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व सामाजिक विज्ञान विषय के अंतर्गत निहित समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र की शिक्षा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों तक ही सीमित थी परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति बाद सामाजिक विज्ञान विषय की शिक्षा में लगातार विस्तार होने के कारण इस विषय को स्कूलों में पढ़ाए जाने की मांग की जाने लगी (बैटील, 2011)। सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत वे सभी विषय निहित है जो समाज और सामाजिक जीवन के कुछ या सभी पहलुओं को किसी न किसी रूप में देखते हैं एवं उनका विश्लेषण करते हैं (नरोन्हा, 2011)। सामाजिक विज्ञान विषय अकादमिक अध्ययन का वह क्षेत्र है जो समाज के मानव और उनके जटिल संबंधो के विभिन्न पहलुओं का अन्वेषण करता है। शांतिपूर्ण एवं न्याययुक्त समाज को निर्मित करने हेतु सामाजिक विज्ञान विषय के विभिन्न दृष्टीकोणों की जानकारी होना आवश्यक है। सामाजिक विज्ञान विषय के शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक नैतिकता एवं मानसिक उर्जा उत्पन्न करना होना चाहिए जिससे वे सामाजिक मूल्यों के लिए हानिकारक असामाजिक तत्वों के प्रति जागरूक हो सके। अतः यह आवश्यक है कि विषयवस्तु को रटकर याद किए जाने वाले तथ्यों की कतार लगाने से बेहतर होगा कि विद्यार्थियों में तथ्यों के अवधारणात्मक समझ को विकसित किया जाए (प्रसाद, 2011)। सामाजिक विज्ञान विषयों के लिए ऐसी शिक्षण विधि को अपनाया जाना जरुरी है जो विद्यार्थियों को समाज में हो रहे परिवर्तनों को समझने, अतीत और वर्तमान के बीच सम्बन्धों को जोड़ने में समर्थ बनाए तथा उनमें सृजनात्मकता, सौन्दर्यबोध और आलोचनात्मक दृष्टिकोण जागृत करे। इन दृष्टिकोणों को जागृत करने के लिए सिर्फ तथ्यों की जानकारी प्रदान करने की परंपरा से हटकर अध्यापक एवं विद्यार्थियों को चर्चा, वाद–विवाद और संवाद जैसी क्रियाओं में सहभागी होना चाहिए एवं अनुभवजन्य शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को और भी सुदृढ़ करने के लिए स्थानीय इतिहास और संस्कृति से सामग्री लिया जाना चाहिए (एनसीएफ,

***पी–एच.डी. शोधार्थी, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र –442001**

2005) क्योंकि सत्ताधारी सभी पाठ्यक्रमों का निर्धारण अपने अनुसार करना चाहते है जिसमें दुर्भाग्यवश इतिहास और राजनीति विज्ञान एक राजनैतिक अखाड़ा बन गया है जिसे हम स्थानीय अनुभव, स्थानीय संस्कृति, स्थानीय इतिहास के अनुभवजन्य शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा रोक सकते हैं जिससे विद्यार्थी एक ऐसी अर्थपूर्ण शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे जो उन्हें यह सिखाएगी कि उन्हें कैसे सीखना है न कि क्या सीखना है (रामचंद्रन, 2011)।

सामाजिक विज्ञान विषय :– भारत के ज्यादातर स्कूलों में विद्यार्थियों को तोतारटंत बनाने पर विशेष बल दिया जाता है। अध्यापक कक्षा में व्याख्यान देते रहते हैं और विद्यार्थी उसे अपनी कॉपियों में लिखते रहते है और फिर परीक्षाओं के समय उन्हें रटकर वैसा ही उत्तरपुस्तिका में लिखकर आते हैं जैसा अध्यापक चाहते हैं। जो विद्यार्थी अध्यापकों द्वारा दिए गए व्याख्यान के आधार पर हूबहू या लगभग समान रूप से परीक्षा में लिखते हैं उन्हें उतने ही उच्च अंक प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात उन विद्यार्थियों ने अपने विषय में सफलता के झण्डे गाड़ दिए, ऐसा तब तक कहा जाता रहेगा जब तक विद्यार्थी अध्यापकों के द्वारा दिए गए व्याख्यान एवं विवरणों को परीक्षा में हूबहू लिखते रहेंगे। इस प्रकार की अपनायी जाने वाली शिक्षण पद्धति को फ्रेरे ने शिक्षा की बैंकिंग प्रणाली कहा है। शिक्षा की इस बैंकिंग प्रणाली का विरोध करते हुए फ्रेरे ने अध्यापकों को अपनी शिक्षण पद्धति में आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र को अपनाने पर बल दिया जिससे शिक्षण कार्य रुचिकर होगा और विद्यार्थियों को सामाजिक विज्ञान विषय के अध्ययन से सामाजिक निर्माण एवं परिवर्तन के लिए तैयार किया जा सकेगा। समाज का विकास तभी संभव है जब मनुष्य अपने समाज को समझे और सामाजिक निर्माण हेतु परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए तैयार रहे। इस प्रकार सभी स्तरों पर समाज का अध्ययन ही सामाजिक विज्ञान है (ऋषिकेश, 2011)। सामाजिक विज्ञान में निहित विषय बढ़ते भूमंडलीकरण में तालमेल बिठाने, राजनैतिक, आर्थिक वास्तविकताओं का सामना करने, सामाजिक निर्माण एवं परिवर्तन करने के लिए आवश्यक योग्यताओं एवं क्षमताओं प्राप्त करने हेतु अतिआवश्यक है। भौतिक एवं जैविक क्रियाकलापों का जानकार होना ही एक अच्छे नागरिक होने के लिए पर्याप्त नहीं है बल्कि एक अच्छे नागरिक को अपने वास्तविक या सामाजिक जगत के बारे में भी समझ होनी चाहिए जिसका वह हिस्सा है। सामाजिक विज्ञान एक बेहतर समाज बनाने का सपना साकार करने में हमारी मदद करता है। मानवीय विकासों, सामाजिक निर्माण एवं परिवर्तन से जुड़े व्यावहारिक प्रश्न जैसे कि समाज को कैसे बेहतर बनाए, लोगों के जीवन स्तर में कैसे सुधार लाया जाए, भेद–भाव को दूर करने के उपाय क्या हो सकते है, उत्पादकता को सुधारने एवं वृद्धि के लिए क्या किया जा सकता है, अपराध दर को कम करने एवं बेहतर शासन व्यवस्था प्रदान करने में सामाजिक विज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है (ऋषिकेश, 2011)। उपर्युक्त मुद्दों को एकत्र करके विषयों के रूप में विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया जाता है तो यह विषय अरुचिकर एवं बेकार कैसे लगने लगते है? क्या इसका सम्बन्ध इन विषयों से सम्बंधित शिक्षण सामग्री से है या फिर उस ढ़ंग या तरीके से जिसका प्रयोग सामाजिक विज्ञान के विषय के अध्यापक कक्षा में विद्यार्थियों को सीखाते समय करते हैं? इन दोनों प्रश्नों में दूसरा प्रश्न विद्यार्थियों में इस विषय को अरुचिकर बनाने में ज्यादा महत्वपूर्ण हैं क्योंकि कोई विषय नीरस या अरुचिकर तभी लगता है जब उस विषय का शिक्षण प्रक्रिया नीरस तरीके से संपन्न की गयी हो, साथ ही इस विषय के प्रति प्रचलित दृष्टिकोण है कि यह एक अनुपयोगी विषय है जिसके कारण विद्यार्थियों के स्वाभिमान में कमी आती है जबकि राष्ट्रीय फोकस समूह के अनुसार सामाजिक विज्ञान स्वतंत्रता, विश्वास, परस्पर सम्मान एवं विविधता जैसे मानवीय मूल्यों के लिए एक जनाधार का निर्माण करने एवं उसके विस्तार करने की सैद्धांतिक जिम्मेदारी को भी वहन करता है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान विषय के शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मक कार्य क्षमता, सक्रियता, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, नैतिकता और मानसिक उर्जा की स्थापन से है जिससे वे उन सामाजिक समस्याओं एवं बाध्यताओं के उत्पीड़न से मुक्ति पा सकेंगे जो इन सामाजिक मूल्यों को हानि पहुंचाते हैं (एनसीईआरटी, 2007)। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान विषय के शिक्षण हेतु आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र प्रतिमान को लागू किया जाए तो उपयुक्त विषय के शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र का लक्ष्य विद्यार्थियों को उनके जीवन और दूसरों के जीवन में न्याय और समानता के हित में सामाजिक निर्माण एवं परिवर्तन के प्रतिनिधित्व के रूप में सशक्त बनाना है जो वैश्विक और स्थानीय दोनों स्तर पर हो। बेशक इसमें कोई संदेह नहीं है कि आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र के द्वितीयक लक्ष्य हैं जैसे पाठ्यक्रम एवं नगरिकों में लोकतान्त्रिक मूल्यों का विकास करना आदि। फिर भी आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र के केंद्र में सामाजिक न्याय को विकसित करने का उद्देश्य हमेशा इसका प्रेरक उद्देश्य बना रहता है जिसके विषय में विस्तार से चर्चा निम्नलिखित है–

आलोचनात्मक बौद्धिकता को नैतिकता के साथ जोड़ना :– आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र का एक केंद्रीय लक्ष्य विद्यार्थियों को अपनी वास्तविकताओं को बदलने के लिए सशक्त बनाना है लेकिन इससे पहले कि विद्यार्थी अपनी वास्तविकता को बदल सकें। इसके लिए उन्हें पहले यह समझना होगा कि किन्चेलो (2008) ने जिसे 'आलोचनात्मक चेतना' कहा है, को जागृत करने की आवश्यकता है, जहां विद्यार्थी मानवीय पीड़ा को कम करने के लिए समझ विकसित करना, सहानुभूति प्रकट करना और तत्पश्चात् कार्य करना सीखते हैं। पाउलो फ्रेरे आलोचनात्मक चिंतन को दो श्रेणियों में विभाजित करता हैः 'कमजोर समझ' वाली आलोचनात्मक चिंतन और 'मजबूत समझ' वाली आलोचनात्मक चिंतन। कमजोर समझ वाली आलोचनात्मक चिंतन में विद्यार्थी केवल वही प्रदर्शन करते हैं जिसे आमतौर पर 'उच्च–क्रम' चिंतन कौशल के रूप में जाना जाता है। ये कौशल जैसे संश्लेषण, विश्लेषण और मूल्यांकन जो ब्लूम के वर्गीकरण के उच्च स्तर से जुड़े होते हैं और जब उन्हें सख्ती से नियोजित किया जाता है तो वे आवश्यक रूप से आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र के मानकों को पूरा करने के लिए आवश्यक सामाजिक आलोचनात्मक पहलू को शामिल नहीं करते हैं। यह चिन्तन कृत्रिम विचार–विमर्श को प्रस्तुत करती है जो संभावित मामलों की वास्तविक जांच को पूरा नहीं करती है जबकि दूसरी ओर मजबूत–समझ वाली आलोचनात्मक चिन्तन वास्तविक आलोचनात्मक चिंतन के उपयोग पर जोर देती है और यह ऐतिहासिक संदर्भ में नैतिकता और नैतिक घटक के रूप में वर्णित है जो एक समूह, राष्ट्र या समाज से संबंधित लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए समस्याओं और मुद्दों को संबोधित करता है और सामाजिक समाधान का प्रयास करता है।

आलोचनात्मक चिंतन वाद–विवाद, तर्क–वितर्क और तार्किक तर्क के लिए नहीं है, बल्कि रचनात्मक एवं सामाजिक परिवर्तन के लिए है। यह चिंतन स्वयं के लिए, अपनी सहमति के लिए नहीं है और न ही यथास्थिति बनाए रखने के लिए है बल्कि आलोचनात्मक चिंतन लोगों को वास्तविक जीवन की समस्याओं को उजागर करने और उनके समाधान का निर्माण करने में सक्षम बनाने के लिए है (अहलक्विस्ट, 1990)। किन्चेलो का तर्क है कि निष्पक्षता, न्याय, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा के जुनून के साथ हममें से उन लोगों को सतर्क किया जाना चाहिए जो हमारी उपस्थिति महसूस करते हैं एवं सामाजिक भलाई और सामाजिक न्याय की शिक्षा के संघर्ष हेतु समर्पित नई पीढ़ी के लिए मशाल उठाने के लिए तत्पर रहते हैं (किन्चेलो, 2008)। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान विषय में आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र प्रतिमान आलोचनात्मक बौद्धिकता को नैतिकता के साथ जोड़ती है।

यथास्थिति को चुनौती देना :– सामान्य शिक्षणशास्त्र कोई निष्ठा का दावा नहीं करते हैं और वे आम तौर पर यथास्थिति और इसके साथ आने वाले सभी मौजूदा विशेषाधिकारों और असमानताओं को सुदृढ़ करते हैं। स्कूल वास्तव में यथास्थित व्यवस्थाओं को मूर्त रूप देते हैं जो सत्ता को पदानुक्रम से संरचित करते हैं और जिसे सत्तावादी उपायों के साथ लागू किया जाता है, ग्रेड और पाठ्यक्रम व्यक्तिवादी और योग्यतावादी सिद्धांतों को दर्शाते हैं, संपन्न समुदाय अनुकूल प्रदर्शन करते हैं जबकि गरीब समुदाय खराब प्रदर्शन करते हैं (बोएगेमन, 2013)। इस प्रकार स्कूल ऐसे स्थानों के रूप में कार्य करते हैं जहाँ यथास्थिति को न केवल वैध ठहराया जाता है बल्कि दोहराया भी जाता है। शैक्षिक अवसरों और संसाधनों के अपने असमान वितरण, संस्कृति और विचारधाराओं के प्रवर्तन के साथ यह वातावरण सीमित सामाजिक गतिशीलता के साथ एक कठोर वर्ग संरचना को भी लागू करता है, खासकर उन विद्यार्थियों के लिए जो पहले से ही हाशिये पर स्थित हैं। सामाजिक नियंत्रण के इन सत्तावादी और अलोकतांत्रिक प्रयासों को अक्सर अच्छे अध्यापकों द्वारा भी स्वीकार किया जाता है जबकि ये अध्यापक जानबूझकर अपने विद्यार्थियों को चोट नहीं पहुँचाते हैं बल्कि केवल अपने वरिष्ठों के हुक्म और व्यवस्था के नियमों का पालन करते हैं, परिणामस्वरुप यथास्थिति बनी रहती है (किन्चोले, 2008, पृ. 8–9)।

आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र विद्यार्थियों को अदृश्य राजनीतिक मान्यताओं और शिक्षा के विभिन्न स्वरूपों जैसे औपनिवेशिक, नस्लीय, लिंग और वर्ग के प्रति पूर्वाग्रहों पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित करता है (किन्चोले,

2008, पृ. 35)। सामाजिक विज्ञान विषयों में सामान्यतः ऐतिहासिक और वर्तमान दोनों तरह के प्रश्न शामिल होते हैं। भारतीय परिदृश्य में शिक्षार्थी, देश की महिलाओं, नस्लीय भेद, अप्रवासियों, ट्रांसजेंडर और ऐसे व्यक्तियों के साथ उत्पीड़न की परंपरा की जांच कर सकते हैं जो विषमलैंगिक के अलावा किसी और चीज के रूप में पहचान किए जाते हैं। आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्री ऐसी आलोचनात्मक जांच को एक लोकतांत्रिक नागरिक होने के एक अनिवार्य घटक के रूप में देखते हैं। इस अर्थ में यथास्थिति को चुनौती देना ही आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र का कार्य ही नहीं वरन् सामाजिक न्यायोन्मुखी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए गंभीर प्रयास करने हेतु तैयार करना है।

निष्कर्ष :– भारत विविधताओं का देश है, विविधता हमारी सबसे बड़ी धरोहर है। इसलिए हमें अपने विद्यार्थियों को विविधता में विशेष रूप से रूचि लेने और उसके मूल्यों को समझने के लिए प्रेरित करना चाहिए। सामाजिक विज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण योगदान विद्यार्थियों को अपना जीवन जीने के तरीकों की जाँच–परख करने में सक्षम बनाना है एवं दूसरों के जीवन जीने के तरीकों के प्रति उदारता एवं सहिष्णुतापूर्ण नजरिया अपनाने हेतु प्रोत्साहन करने से है। एक शैक्षणिक पद्धति कारगर तब सिद्ध होती है जब विद्यार्थियों को यह समझने में मदद करे कि किस तरह अतीत की विचार प्रक्रियाएं एवं संस्थाएं समय बीतने के साथ–साथ प्रभावित होती है। इस प्रभावित अवधारणा को इतिहासकार निरंतरता और परिवर्तन कहते हैं जहाँ मानवीय स्थितियों की कुछ प्रवृतियाँ अतीत के साथ–साथ वर्तमान से भी जुड़ी रहती है जो समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। अध्यापक और विद्यार्थियों के मध्य नैतिक और नागरिकीय सम्बन्ध बनाने में मदद करने के लिए स्कूलों के सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रमों को एक साझा धुरी के इर्द–गिर्द निर्मित करना चाहिए। शिक्षणशास्त्र में एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि तथ्यों एवं अवधारणाओं को सिखाने के लिए गतिविधि के माध्यम से शिक्षण करना चाहिए तो इसके लिए सामाजिक विज्ञान विषय में गतिविधि आधारित शिक्षण जिसमें संवाद, अभ्यास, लोकतान्त्रिक वातावरण, संस्कृति–चक्र, अनुभवजन्य, समस्या–समाधान विधि एवं आलोचनात्मक चेतना को लागू किया जाए जिसे आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र प्रतिमान के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है और अधिगम प्रक्रिया को अत्यधिक फलदायी बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. अहलक्विस्ट, आर. ए, (1990). क्रिटिकल पेडागोजी फॉर सोशल स्टडीज टीचर्स. सोशल स्टडीज रिव्युः जर्नल ऑफ़ द कैलिफ़ोर्निया कौंसिल फॉर द सोशल स्टडीज, 29(3), 53–57।
2. एनसीईआरटी. (2007). सामाजिक विज्ञान का शिक्षण, एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली।
3. ऋषिकेश, बी. एस. (2011). भारत में सामाजिक विज्ञान का 'हीन' दर्जा–कारण व सुधारात्मक उपाय. लर्निंग कर्व–स्पेशल इश्यू ऑन सोशल साइंस इन स्कूल्स (अंग्रेजी, 15 अगस्त, 2010 का हिंदी अनुवाद). स्कूल में सामाजिक विज्ञान, 3, 18–22।
4. किन्चोले, जे. एल. (2008). क्रिटिकल पेडागोजी प्राइमर (सेकंड एडिशन). न्यू यॉर्क, एनवाईः पीटर लांग पब्लिशिंग।
5. नरोन्हा, अ. (2011). लोकतंत्र के लिए शिक्षा–स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षा की प्रासंगिकता. लर्निंग कर्व–स्पेशल इश्यू ऑन सोशल साइंस इन स्कूल्स (अंग्रेजी, 15 अगस्त, 2010 का हिंदी अनुवाद). स्कूल में सामाजिक विज्ञान, 3, 23–27।
6. प्रसाद, इ. (2011). सामाजिक विज्ञान तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा. लर्निंग कर्व–स्पेशल इश्यू ऑन सोशल साइंस इन स्कूल्स (अंग्रेजी, 15 अगस्त, 2010 का हिंदी अनुवाद). स्कूल में सामाजिक विज्ञान, 3, 37–40।
7. बैटील, अ. (2011). स्कूलों में सामाजिक विज्ञान. लर्निंग कर्व–स्पेशल इश्यू ऑन सोशल साइंस इन स्कूल्स (अंग्रेजी, 15 अगस्त, 2010 का हिंदी अनुवाद). स्कूल में सामाजिक विज्ञान, 3, 5–8।
8. बोएगेमन, डब्लू. एस. (2013). टीचिंग फॉर ट्रांसमिशनः द प्रैक्सिस ऑफ़ क्रिटिकल पेडागोजी इन सोशल स्टडीज एजुकेशन, ए थीसिसः द फैकल्टी ऑफ़ यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिन्नेसोटा।
9. रामचन्द्रन, वि. (2011). सामाजिक विज्ञान अध्ययन–क्या सही है और क्या गलत?. लर्निंग कर्व–स्पेशल इश्यू ऑन सोशल साइंस इन स्कूल्स (अंग्रेजी, 15 अगस्त, 2010 का हिंदी अनुवाद). स्कूल में सामाजिक विज्ञान, 3, 41–44।
10. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005). एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली।

जनप्रतिनिधि और जातिगत राजनीति का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. जितेन्द्र पाटीदार*

सारांश :– राजनीति में जाति व्यवस्था को लेकर समाज में द्वंद–अंर्तद्वंद के सिलसिले की शुरूआत उसी समय से मानी जा सकती है जब से वर्ग व्यवस्था के स्थान पर जाति व्यवस्था का प्रचलन शुरू हुआ। जातियों के राजनीतिकरण ने इस प्रकिया को आगे तक चलते रहने के लिये पुख्ता कर दिया और इसी का नतीजा है कि हाल में हुए विधानसभा चुनावों के दौरान राजनीतिक गणितज्ञ सामाजिक जातियों को ध्यान में रखकर मतों का राजनीतिक गुणा–भाग करते नजर आए और चुनावोत्तर परिदृश्य में भी जातियों से जुडे विषय थमने का नाम नहीं ले रहे हैं। कही जातीय मुददों से जुडे विषयों पर तनाव के चलते हुई हिंसा और आगजनी के फलस्वरूप दर्ज आपराधिक मुकदमों को लेकर तो कहीं संवैधानिक पदों पर बैठते ही "जनप्रतिनिधियों" द्वारा खुल्लम–खुल्ला अपनी जाति को प्राथमिकता देने की बातें करने से राजनीति माहौल में गर्माहट का माहौल दिखाई दे रहा है इसीलिए तो दुनिया–भर के राजनीति विज्ञानियों को फिर से कहने का मौका मिल गया कि भारतीय राजनीति में विकास की बातें भले ही होने लगी हो लेकिन हकीकत में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था जातियों के इर्द–गिर्द ही घूम रही है। तत्पश्चात स्वतंत्रता के बाद भारत ने एक उदार लोकतंत्र को अपनाया जिसका एक लिखीत संविधान है और संसदीय प्रणाली में जातियों का भेदभाव स्पष्ट दिखाई देने वाले ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्ग को विशिष्ट व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकार दिये गए। देश की एक वृद्ध सामाजिक बदलाव के जरिये संपन्न समाज के लोकतांत्रिक रूपांतरण की प्रतिबद्धता भारतीय विकास नीति का अहम हिस्सा रहा है। हालांकि छः दशक से भी ज्यादा लंबी लोकतांत्रिक प्रकिया के बावजूद भी जातियां हाशिये पर है और वंचना का शिकार है जिनके मूल में असमानता और सामाजिक भेदभाव है। इन असमानताओं और भेदभाव को मिटाने के लिये भारतीय सरकार द्वारा बहुत सारे प्रयत्न किये गए परंतु इन असमानताओं और भेदभाव की समस्या के निवारण पर कोई खास असर नहीं दिखाई दिया। यह पत्र में जाति धर्म, सामाजिक, आर्थिक, राजनीति से जुडे सरकारी नीतियों, समस्याओं एवं समाधानों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

मूल शब्द :–जनप्रतिनिधि, जाति, धर्म, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचारधारा।

प्रस्तावना :–राजनीतिक क्षेत्र में जाति व्यवस्था पारंपरिक रूप से सत्ता तक लोगों की पहुँच पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है और मतदान में जाति बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और राजनीतिक दल उनका चयन करते है और निर्वाचन क्षेत्र में जाति के आधार पर उम्मीदवार चुनावों में मतदान और जातिगत तर्क पर उपर से नीचे तक राजनीतिक समर्थन जुटाते हैं और राजनीति में एक दबाव के रूप में भी जाति कार्य करती है और राजनीति में जाति पद्धतियों के द्वारा सौदेबाजी की जाती है एवं सामूहिक जाति संगठित जाति के सदस्यों को संगठित करने के लिये प्रेरित करती है और जब सरकार बनती है तो राजनीतिक दल सरकार के स्थान पर प्रतिनिधि से अलग–अलग जातियों की तलाश भी करती है एवं राजनीतिक दल वोटों को जीतने के लिये जातिगत भावनाओं को अपील करते हैं और राजनीतिक दल कुछ मामलों का पक्ष लेने के लिये जाने जाते हैं और भारत का समाज जाति आधारित है और यह चुनावों में जाति को काफी महत्व दिया जाता है। राजनीति भी जाति के प्रभाव से मुक्त नहीं है और टिकटों के बटवारे से मतदान तक में जाति का प्रभाव नजर आता है और देश छात्रसंघ के चुनाव से लेकर पंच, सरपंच, नगरपालिका, विधानसभा और लोकसभा के चुनावो में प्रत्यक्ष जातीय प्रभाव को देखा जा सकता है। कोई भी चुनाव इससे अछूता नहीं है।

*** राजनीति विज्ञान, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुरा जिला नीमच म.प्र.।**

समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया ने लोकतंत्र के इस कलंक को काफी नजदीकी से देखा। लोहिया ने देश में जाति तोडो का नारा दिया मगर उनके देहांत के बाद यह नारा भी दफन हो गया और मुलायम, लालू, पासवान, जैसे उनके अनुयायियों ने जाति को अपनाकर खुद को राजनीति में जिंदा रखा और आजादी के बाद से ही भारत में जातियों का प्रभुत्व देखने को मिल रहा है और जनतंत्र आदर्श राजव्यवस्था के साथ आदर्श जीवन पद्धति भी है। चुनाव " जनप्रतिनिधि " और सरकार चुनने का अवसर होता है, लेकिन चुनाव तंत्र में धनबल, कालाधन, अपराधबल, जातिबल और कट्टरपंथी सांप्रदायिकता के रोग है। चुनाव सुधारों की मांग जोर पकड रही है। चुनाव सुधार के प्राण राजनीतिक सुधारो में बसते हैं। चुनाव सुधारों के पंछी की गर्दन राजनीतिक दलतंत्र ने दबोच रखी है। माननीय प्रधानमंत्री मोदी जी के नेतृत्व में आर्थिक सुधारों की गति तेज हुई है। अब राजनीतिक सुधार की बारी है तो राजनीतिक व्यवहार को भी विचारनिष्ठ और आदर्शमूलक बनाना चाहिये। राजनीतिक वर्ग स्वयं को नियम, अनुशासन से क्यों मुक्त रखता है? दलतंत्र को स्वयं को भी सभी नियमों, कानूनों व आचार संहिता के दायरे में लाना चाहिये , अर्थात भारतीय राजनीति के लिये आत्ममंथन का समय है। अब तक न्यायपालिका नौकरशाही और उद्योगपतियों को ही नसीहत दे रही थी लेकिन पिछले कुछ समय से राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक जमात दोनों को सुधारने के लिये फैसलों की झडी लग गई है। इन फैसलों में सुधार का संदेश है लेकिन इनके दुरूपयोग का भी खतरा है। न्यायपालिका की इस सक्रियता के लिये हमारे जनप्रतिनिधि ही जिम्मेदार है। भारत में विद्यमान जातिवाद ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मित प्रवृत्तियों को ही प्रभावित किया अपितु राजनीति को भी पूर्ण रूप से प्रभावित किया है।

जातिगत भेदभाव :– भारत में स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व भी था किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रजातंत्र की स्थापना होने पर समझा गया कि जाति भेद मिट जाएगा किंतु ऐसा नहीं हुआ। राजनीतिक संस्थाएँ भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी, परिणामस्वरूप जाति का राजनीतिकरण हो गया। भारत की राजनीति में जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। केंद्र ही नहीं राज्यस्तरीय राजनीतिक भी जातिवाद से प्रभावित है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिये सबसे खतरनाक साबित हो रहा है और जनप्रतिनिधियों और विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर आसीन लोगों को अपनी शक्तियों का दुरूपयोग नहीं करना चाहिये और उन्हे अपने निजी हितों और सार्वजनिक हितों के मध्य संघर्ष से बचना चाहिये और किसी भी सांसद को उन सवालों पर सदन में मतदान करने की अनुमति नहीं दी जाना चाहिये जिनमें उसका निजी हित निहित हो। तत्पश्चात जनप्रतिनिधियों को अपनी आय , संपत्तियों और देनदारियों तथा इनमें परिवर्तन से संबंधित सूचना समय–समय पर साझा करनी चाहिये।

राजनीति में जाति तथा जाति का राजनीतिकरण :–भारत में जाति तथा राजनीति के विषय में जानने से पूर्व यह आवश्यक है कि भारत के संदर्भ में जाति के महत्व को समझना बहुत जरूरी है और भारतीय राजनीति में जाति एक अभिन्न पहलू के रूप मे विद्यमान है। अतः इस संबंध में यह जानना आवश्यक है कि जाति का विकास भारत के इतिहास में किस प्रकार हुआ। इस लेख का दूसरा खंड जाति व्यवस्था के विकास का ऐतिहासिक विवरण देगा। वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के पहलू से अवगत होते हुए जाति और वर्ण व्यवस्था के अंतर को स्पष्ट किया जाएगा और औपनिवेशिक काल में समाज सुधारों के प्रयासों को देखने के साथ जाति के आधुनिकीकरण पर चर्चा होगी। बाबा साहेब तथा गांधीजी के विचारों पर विशेष ध्यान देते हुए बाबा साहेब के योगदान की निंदा होगी और राजनीति में जाति के प्रभाव को दर्शाते हुए संविधान से जुडे तथ्य उजागर किये जाएंगे तथा दलित राजनीति में बाबा साहेब के बाद के वर्षों में हुए बदलाव पर चर्चा होगी और जाति के राजनीतिकरण की चर्चा मंडल आयोग तथा पिछडे वर्ग के राजनीति के संदर्भ में अध्ययन किया जावेगा और जाति तथा राजनीति का एक दूसरे पर स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है।

भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांत :–

- पारंपरिक सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्माण्ड के निर्माता ब्रह्मा जी ने जाति व्यवस्था का निर्माण किया था। ब्रह्मा जी के विभिन्न अंगों से जैसे उनके मुख से ब्राह्मणों का, हाथ से क्षत्रिय, वैश्य पेट से

और इसी तरह अन्य विभिन्न जातियों का जन्म हुआ। विभिन्न जातियों के लोग अपने मूल स्त्रोत के अनुसार कार्य करते हैं और प्राचीन भारत में विभिन्न उपजातियां इन जातियों से पैदा हुई।

- धार्मिक सिद्धांत– यह माना जाता है कि विभिन्न धार्मिक परंपराओं ने भारत में जाति व्यवस्था को जन्म दिया था। राजा और ब्राहमण जैसे धर्म से जुडे लोग उच्च पदों पर आसीन थे, लेकिन अलग–अलग लोग शासक के यहां प्रशासन के लिये अलग–अलग कार्य करते थे जो बाद में जाति व्यवस्था का आधार बन गए थे। इसके साथ–साथ भोजन की आदतों पर प्रतिबंध लगाया जो जाति व्यवस्था के विकास के लिये प्रेरित हुआ। इसी वजह से लोगों में धार्मिक, जातिगत की भावनाओं में परिवर्तन प्रेरित हुआ।
- व्यावसायिक सिद्धांत– नेस्फील्ड ने मूल रूप से व्यावसायिक नाम का सिद्धांत दिया, जिसके अनुसार विकसीत हुई थी जिसमें श्रेष्ठ और निम्न जाति की अवधारणा भी इसके साथ आयी क्योंकि कुछ व्यक्ति बेहतर नौकरियां कर रहे थे और कुछ निम्न प्रकार की नौकरियां कर रहे थे। जो लोग पुरोहिजत का कार्य कर रहे थे वे श्रेष्ठ थे और वे ऐसे थे जो विशेष कार्य करते थे। इसी तरह से अन्य समूहों को भी भारत में विभिन्न जातियों के लिये अग्रणी बनाया गया है।

राजनीति पर जाति का प्रभाव :–

- चुनाव के लिये उम्मीदवार चुनते समय राजनीति दल समर्थन जीतने के लिये मतदाताओं की जाति संरचना पर विचार करते हैं।
- जब सरकार बनती है तो राजनीतिक दल सरकार के स्थान पर प्रतिनिधि से अलग–अलग जातियों की तलाश करते हैं।
- राजनीतिक दल वोटों को जीतने के लिये जातिगत भावनाओं को अपील करते हैं।
- कुछ राजनीतिक दल कुछ मामलों का पक्ष लेने के लिये जाने जाते हैं।
- सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और वन–मैन वन वोट के सिद्धांत ने राजनीतिक नेताओं को जाति की भावनाओं को राजनीति में लाने के लिये मजबूर किया जाता है।

जाति, धर्म और दलगत भावना से उपर उठकर काम करने जनप्रतिनिधि :–राजनीतिक दल भावनात्मक रूप से मतदाताओं को अपने पक्ष में करने के लिये सारे हथकंडे अपना रहे हैं, ऐसी स्थिति में सभी मतदाता को भी सतर्क रहना जरूरी है और हमें किसी के झांसे में नहीं आना है और मतदाता जानता है कि कहां मत देने पर समाज और परिवार के विकास की गति बनी रहेगी। इन्ही सभी मुददों को मतदाताओं ने मैनिफेस्टो में साझा किया और हमारा जनप्रतिनिधि ऐसा हो जो दलगत एवं जातिगत भावना से दूर रहकर अपने संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्रों की जनता की समस्याओं को दूर करने का प्रयास करें और समय–समय पर अपनी जनता से संपर्क स्थापित करता रहे जिससे क्षेत्र के विकास में क्या हो सकता है, उस पर काम कर सके और हम सबको ऐसा जनप्रतिनिधि चाहिये जो अपने पांच वर्ष के कार्यकाल में समय–समय पर अपने निर्वाचन क्षेत्र में आकर जनता की समस्याओं को सुने व उन समस्याओं का अपने स्तर से अधिक से अधिक समाधान करने का भरपूर प्रयत्न किया जा सके और जनप्रतिनिधि आज भी हमारे संविधान और लोकतांत्रिक संस्थाओं में तथा उनके तहत चलने वाली प्रकियाओं में जनप्रतिनिधि को अपने निर्वाचन क्षेत्र के प्रति जवाबदेही बनाए रखने की कोई व्यवस्था नहीं है। इस तरह की व्यवस्था न होने से विशेषकर हमारे जैसे देश में जिसका समाज अत्यंत पिछडा हुआ है और जहाँ एक विकसीत लोकतंत्र का बुनियादी ढॉचा बिल्कुल ही नहीं बन पाया है। जनप्रतिनिधि एकदम मनमानी करने लगते हैं। और जनता की इच्छा, आकांक्षा और उसके हितों की पूरी तरह उपेक्षा कर वे जो मन में आता है वह करते रहते हैं और जातिगत भेद, आर्थिक स्थिति सुधारने से दलित और पिछडे वर्गों की सामाजिक अवस्था भी उन्नत हो सकती है लेकिन इसका आर्थिक सुधार हो जाने से जातिप्रथा समाप्त हो जावेगी , यह मानना भूल है क्योंकि आर्थिक द्रष्टि से समुन्नत जातिवाले भी परस्पर जातिगत भेद तो मानते ही हैं। और जातिभेद एक ऐसी चीज है जो किसी कानून से नहीं मिटाई जा सकती है। कानून और पैसे से हरिजन, आदिवासियों आदि को स्थूल सुविधाएँ तो दी जा सकती है लेकिन

समाज में समता का स्थान तभी मिलेगा जब लोगों का मन बदलेगा और लोग उन्हें अपने ही जैसे मनुष्य मानकर स्वीकार करेंगे , लेकिन यह राजनीति भिन्न प्रकार की है। मैं इसे जनता की राजनीति कहता हूँ जो सत्ता और दल की राजनीति से सर्वथा पृथक होती है।

आगे की राह :—जनप्रतिनिधि को देश के आम नागरिकों के लिये प्रेरणास्त्रोत के रूप में भी कार्य करना चाहिये और यदि वे अपने आचरण में सुधार नहीं कर पाएंगे तो आम जनता को भी इस सुधार के लिये प्रेरित नहीं कर पाएंगे और जनप्रतिनिधियों से प्रशासन के नेतृत्व तथा मार्गदर्शन की आशा की जाती है। ऐसे में उनके भी आचरण और व्यवहार को नियंत्रित किये जाने की आवश्यकता है। इसी तरह भारतीय राजनीति के प्रमुख तत्व जाति के आधार पर वोट मांगने की विशिष्ट परंपरा रही है जिसे सुप्रीम कोर्ट ने इस ऐतिहासिक निर्णय से स्वच्छ करने का प्रयत्न किया है। वास्तव में सुप्रीम कोर्ट ने 2। वीं शताब्दी के भारत मे चुनाव सुधारों को एक नई गति प्रदान की है जिसमें धर्म, संप्रदाय, जाति, भाषा इत्यादि का वोट मांगने में अवश्य ही कोई आधार नहीं होना चाहिये और एक जीवंत लोकतंत्र के लिये आवश्यक है कि देश में सुशासन के लिये सबसे अच्छे नागरिकों को जनप्रतिनिधियों के रूप में चुना जाए। इससे जनजीवन में नैतिक मूल्यों को बढावा मिलता है , साथ ही ऐसे उम्मीदवारों की संख्या भी बढती है जो सकारात्मक वोट पर चुनाव जीतते हैं। एक जीवंत लोकतंत्र में मतदाता को उम्मीदवार को चुनने का या अस्वीकार करने का अवसर दिया जाना चाहिये जो राजनीतिक दलों को चुनने में अच्छे उम्मीदवार को चयन करने के लिये प्रेरित करना चाहिये।

उपसंहार :—जाति का राजनीतिकरण आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रहा है क्योंकि जाति को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक, सांप्रदायिक सद्भावना एवं समरसता का निर्माण करने हैतु आधार नहीं बनाया जा सकता है और आज अराजकता इस बात की है कि हमारे देश के बुद्धिजीवी और राजनीतिक नेता इस संदर्भ में ईमानदारी के साथ सोच और इस समस्या एवं इससे उत्पन्न अन्य समस्याओं का समाधान करने हैतु गंभीरतापूर्वक प्रयास किया जा रहा है और भारत में ही नहीं वरन संपूर्ण विश्व में जाति प्रथा किसी न किसी रूप में विद्यमान अवश्य होती है। यह एक हिंदू समाज की विशेषता है जो कि गंभीर सामाजिक कुरीतियां है। जातिप्रथा अत्यंत प्राचीन संस्था है। वैदिक काल में भी वर्ण विभाजन मौजूद था जिसे वर्ण व्यवस्था कहा जाता था। यह जाति न होकर गुण व कर्म पर आधारित थी और समाज चार वर्गों में विभाजित था। ब्राहमण—धार्मिक और वैदिक कार्यो का संपादन करते थे। क्षत्रिय—इनका कार्य देश की रक्षा करना और शासन प्रबंध था। वैश्य—कृषि और वाणिज्य संमालते थे। शूद्र—शूद्रों को अन्य तीन वर्गों की देखभाल करना पडती थी और पारदर्शिता से चुनावों और राजनीतिक पारदर्शिता से ही लोकतंत्र को वैधता मिलती है। ऐसे में महत्वपूर्ण चुनावी सुधारों को लागू करना बहुत जरूरी है ताकि लोकतांत्रिक भारत, भ्रष्टाचार और आपराधिक माहौल से मुक्त होकर विकास और समृद्धि की ओर अग्रसर हो सके।

संदर्भ—सूची :—

1. आर सी गुप्ता, भारतीय शासन एवं राजनीति प्रकाशक, साहित्य भवन आगरा, सन् 1999 पृ. 221
2. अतल योगेश, आदिवासी भारत, राजकमल प्रकाशक, बैंगलोरसन् 1966 पृ. 181।
3. अवध, बिहारीलाल, बैग ट्राइब्स ऑफ इंडिया, आदिम जति विभाग द्वारा संचालित प्रकाशक, भोपाल, सन् 1965 पृ. 119।
4. पाण्डेय, रामशक्ल, उदीयमान भारतीय समाज सुधारक, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, सन् 2000 पृ. 300।
5. गाबा, ओमप्रकाश, राजनीतिक सिद्धांत की रूपरेखा, प्रकाशक उदयपुर,सन् 1985 पृ. 111।
6. बी. एन. चौधरी, भारत में राजनीतिक विचारधाराएं, प्रकाशक जयपुर,सन् 1885 पृ. 20।
7. सिंह, राजेंद्र आइ वाज टेरोनस्ट एंड फॉड, हिंदुस्तान टाइम्स एडिट पेज
8. काल्ड डेकाइट, 20, सन जुलाई 2006।
9. वार्षिक रिपोर्ट 2000—2005, भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 420
10. संसदीय बहस अंक, भाग—2, पृ. 222।
11. स्वतंत्र भारत के पचास वर्ष, भालचंद्र गोस्वामी, सन् 2000 पृ. 30।
12. भारत में जातिवाद, रजनी पामदत्त

बदलते शैक्षिक परिवेश में समावेशी शिक्षा

सविता कुमारी*
डॉ. मुकेश कुमार**

सारांश :– किसी भी देश के विकास का आधार वहाँ की शिक्षा व्यवस्था होती है और शिक्षा व्यवस्था का विकास वहाँ के सम्पूर्ण मानवीय क्षमता के कुशलतम सहयोग और उपयोग पर निर्भर करता है। शिक्षा किसी भी समाज के विकास का महत्त्वपूर्ण कारक है। समाज में विभिन्न प्रकार की असमानताएँ व्याप्त हैं, यथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शारीरिक, मानसिक इत्यादि। इन असमानताओं को दूर करना तभी संभव है जब सभी को समान रूप से शिक्षा प्राप्त हो तथा इसके उद्देश्य को भी तभी पूरा किया जा सकता है जब समावेशी शिक्षा के आदर्शों पर चला जाये। समावेशी शिक्षा विविधता को स्वीकार करती है। इसके द्वारा बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें मुख्य धारा के बच्चों में शामिल करने का प्रयास किया जाता है। वास्तव में यदि देखा जाये तो हम भारतीयों के द्वारा समावेशी शिक्षा की ओर ध्यान बहुत बाद में दिया गया। वर्तमान समय में भी भारत के सन्दर्भ में समावेशी शिक्षा के विकास की गति अत्यन्त धीमी ही है। यथार्थतः समावेशी शिक्षा का मूल विशिष्ट शिक्षा में निहित है। सर्वप्रथम दिव्यांगजनों की शिक्षा के लिए प्रयास विशिष्ट शिक्षा के रूप में किया गया। कालान्तर में विशिष्ट शिक्षा का रूप ही समावेशी शिक्षा के स्वरुप में परिवर्तित हुआ। वर्तमान समय में समावेशी शिक्षा के लिए अनवरत् अनेक प्रयास किये जा रहें है, अनेक नीतियाँ बन रही हैं, अनेक प्रावधान बनाये जा रहें हैं। प्रस्तुत शोध आलेख इसी क्षेत्र में किया गया एक वस्तु विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

मुख्य शब्द :– विशिष्ट शिक्षा, एकीकृत शिक्षा, समावेशी शिक्षा।

प्रस्तावना :– किसी भी देश की प्रगति में वहाँ की शिक्षा व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति के अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास होता है, जिससे एक अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। जब हम अपने समाज से अंतर्क्रिया करते हैं तो समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की असमानताओं की जानकारी प्राप्त होती है। ये असमानताएँ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शारीरिक, मानसिक इत्यादि रूप में व्याप्त है। इन असमानताओं को दूर करने के लिये शिक्षा ही एक उचित उपकरण है। सभी को समान रूप से शिक्षा उपलब्ध कराना एक चुनौती है, सभी को शिक्षा में समान अवसर तभी उपलब्ध कराया जा सकता है, जब शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के उद्देश्यों को प्राप्त किया जाए। हमारे देश की संविधान के अनु. 21 (क) के तहत् शिक्षा को 'मौलिक अधिकार' का दर्जा प्राप्त है, जिसके अनुसार 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार हमारी शिक्षा प्रणाली देश के प्रत्येक बच्चे को उसके उच्चतम विकास के लिए समान अवसर प्रदान करने की बात कहती है। इसे जमीनी स्तर से लागू करने तथा व्यवहार में लाने में 'समावेशी शिक्षा' निश्चित् ही हमारे लिये मार्गदर्शक के रूप में सामने आई है। समावेशी शिक्षा द्वारा सामान्य विद्यार्थियों के साथ–साथ विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को भी एक ही कक्षा–कक्ष में एक साथ बैठाकर सामान्य शिक्षा प्रदान की जाती है। अर्थात् समावेशी शिक्षा सीखने और सिखाने वाले को एक परिधि में लाने का कार्य करती है। जिसके कारण सभी विद्यार्थी, शिक्षक तथा समाज समावेशी शिक्षा के प्रति सजग तथा संवेदनशील बनते हैं। वर्तमान समय हर दृष्टिकोण से उत्कृष्ट है जिसके कारण हर कोई अपने अधिकारों के लिये सजग है। इसके बावजूद अभी भी

*** (जे.आर.एफ.), पी–एच.डी. शोध छात्रा, शैक्षिक अध्ययन विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण, बिहार–** 845401.
****एसोसिएट प्रोफेसर, शैक्षिक अध्ययन विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण, बिहार– 845401**.

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा एक चुनौती बनी हुई है। इसका मुख्य कारण है सरकार का इस ओर उदासीन होना। जैसा कि हम सभी जानते है कि भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में दूसरे स्थान पर है। भारत की कुल जनसंख्या का 2.21 प्रतिशत भाग दिव्यांगजनों का है। विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा इनके लिए अनेक सकारात्मक कदम उठाए गए हैं। फिर भी सभी दिव्यांगों तक उन नीतियों, कानूनों या योजनाओं का लाभ नहीं पहुँच पाया है, जिसके कारण आज भी समाज में इनकी सम्पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पायी है। भारत में समावेशी शिक्षा के लिए जितना कार्य गैर सरकारी संगठनों ने किया है, उतना सरकारी संगठनों ने नहीं किया है। भारत में आज भी उच्चतर स्तर पर भेद–भाव, शोषण, भ्रष्टाचार, आर्थिक विभेद, सामाजिक–सांस्कृतिक विभेद, अत्याचार इत्यादि व्याप्त है। इन सभी समस्याओं का समाधान समावेशी शिक्षा द्वारा ढूंढा जा रहा है।

समावेशी शिक्षा की अवधारणा :– भारत में समावेशी शिक्षा की अवधारणा को बहुत बाद में अपनाया गया। सिंघल (2005) के अनुसार– "समावेशी शिक्षा एक ऐसी अवधारणा है जिसे अंतर्राष्ट्रीय विमर्श से ग्रहण किया गया है पर जिसका भारतीय परिदृश्य से सामंजस्य नहीं बिठाया गया है" (मदान, 2015, पृ. 2)। अपने एक अन्य कथन में सिंघल कहती हैं कि "समावेशी शिक्षा शब्द का उपयोग अधिक आकर्षक और राजनीतिक दृष्टि से सही प्रतीत हुआ है और इसलिए इसे इसके पीछे की धारणा को आवश्यक रूप से समझे बिना ही शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वालों तथा नीति नियोजकों द्वारा अपना लिया गया (वहीं, पृ. 2)। यही कारण है कि भारत में बहुत बाद में लगभग 1990 के दशक में आकर समावेशी शिक्षा के लिए कुछ आवाजें उठीं। 'अमेरिकन कांग्रेस' ने 1975 में प्रत्येक अक्षम व्यक्तियों के लिए एक कानून पास किया। इस कानून का मुख्य उद्देश्य था 'प्रत्येक अक्षम व्यक्ति को देश की मुख्य धारा से जोड़ना' (पाल, 2019, पृ.7)। भारत में समावेशी शिक्षा का प्रारंभ अमेरिका की 'मुख्यधारा आन्दोलन' का परिणाम माना जाता है (वहीं, पृ.7)। समय के परिवर्तन के साथ–साथ लोंगों के विचारों में भी परिवर्तन हुआ तथा विशिष्ट विद्यार्थियों के लिए शिक्षा पृथक्करण के सिद्धान्त पर विशेषज्ञों में बहुत वाद–विवाद हुआ। परिणाम स्वरूप विशिष्ट शिक्षा एकीकृत शिक्षा के रूप में परिवर्तित हुयी। एकीकृत शिक्षा का संप्रत्यय 1974 में आया। एकीकृत शिक्षा से अभिप्राय ऐसी शिक्षा व्यवस्था से है जिसमें विशिष्ट बालकों को विशेष संसाधनों सहित सामान्य विद्यार्थियों के साथ शिक्षा प्रदान की जाती है। इस तरह से देखा जाए तो समावेशी शिक्षा एकीकृत शिक्षा का ही परिमार्जित रूप है। इस प्रकार हम कह सकते है कि समावेशी शिक्षा का मूल विशिष्ट शिक्षा तथा एकीकृत शिक्षा में ही निहित है।

समावेशी शिक्षा के उद्देश्य :– समावेशी शिक्षा से तात्पर्य केवल विकलांग बच्चों को ही सामान्य कक्षा में सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा देना ही नहीं है, बल्कि सभी बच्चे जो विभिन्न वर्ग एवं योग्यता के हैं, उनको एक साथ एक ही कक्षा में शिक्षा देना समावेशी शिक्षा कहलाता है। समावेशी शिक्षा की सफलता उसके उद्देश्यों को पूर्ण करने में ही है, जो इस प्रकार हैं–

1. सभी बच्चों को सीखने का समान अवसर प्रदान करना, ताकि सभी के सीखने के प्रतिफल के स्तर पर समानता सुनिश्चित् हो विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान करना और उनकी असमर्थता की पहचान कर उनकी समस्याओं को दूर करना।
2. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों में आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता की भावना का विकास करना।
3. समावेशी शिक्षा द्वारा यह सुनिश्चित् करना कि कोई भी बच्चा शिक्षा में प्रवेश से वंचित न रह जाये।
4. समावेशी शिक्षा द्वारा संवैधानिक मूल्यों के उद्देश्यों को प्राप्त करना।
5. सभी शैक्षिक संस्थाओं में यह सुनिश्चित् करना कि शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकलांग सभी विद्यार्थियों के लिए विशेष व्यवस्था तथा प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था है।
6. शहर से दूर विकलांग बच्चों के लिए शिक्षण संस्थानों में छात्रावास का प्रबंध करना।
7. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के साथ–साथ समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों में जागरूकता की भावना का विकास करना व इन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास करना।

8. विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी योजनाओं के बारे में जानकारी उपलब्ध कराना तथा इन योजनाओं का लाभ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों तक पहुँच को सुनिश्चित् करना।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समावेशी शिक्षा के विकास के लिए किये गए प्रयास :– अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र महासभा के द्वारा 1971 में मानसिक मंदतायुक्त व्यक्तियों के अधिकारों के घोषणा पत्र को स्वीकृति प्रदान की गयी। सभी दिव्यांगों को समाज की मुख्य धारा में पूर्ण भागीदारी बनाने एवं समानता सुनिश्चित् करने के उद्देश्य से सन् 1981 ई. को 'विश्व दिव्यांग वर्ष' घोषित किया गया। इसी क्रम में नौ वर्ष पश्चात् सन् 1989 में बाल अधिकारों की घोषणा की गई। तत्पश्चात् पूरे विश्व में विकलांग व्यक्तियों को बेहतर बनाने के लिये और उन्हें अपने कार्यों में निपुणता प्रदान करने के उद्देश्य से तथा विभिन्न देशों की सरकारों और संगठनों को समावेशी शिक्षा के प्रति सक्षम बनाने के लिये 1983 से 1992 तक विकलांग व्यक्तियों के लिये 'संयुक्त राष्ट्र दशक' का आयोजन किया गया। इसके बाद अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार 1948, के स्लोगन 'सभी के लिये शिक्षा' को ध्यान में रखते हुए थाईलैंड के जॉमटिन शहर में विश्व सम्मेलन का आयोजन हुआ। जिसमें 155 देशों तथा 150 गैर सरकारी संगठनों ने हिस्सा लिया, जिसका उद्देश्य था वर्ष 2000 तक सभी बच्चों तक प्राथमिक शिक्षा की पहुँच को सुनिश्चित् करना। इसके पश्चात् 1994 में सलमांका, स्पेन की सरकार और यूनेस्को के द्वारा संयुक्त रूप से विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा पर 7–10 जून तक 1994 में एक विश्व सम्मेलन का आयोजन किया गया। सन् 2000 में न्यूयार्क में हुए सम्मेलन में 2015 तक निर्धारित समय सीमा के साथ समयबद्ध लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये 'सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य, 2000' मनाया गया। पुनः यूनाइटेड नेशन्स ऑन द राइट्स ऑफ पर्सन्स विद डिसएबिलिटीज 2008' अक्षमतायुक्त व्यक्तियों के अधिकारों का एक व्यापक घोषणापत्र प्रकाश में आया, जो बृहद् रूप से अक्षमता युक्त व्यक्तियों के अधिकारों की बृहद् वकालत करता है। 22 मई, 2002 को एशिया पेसिफिक क्षेत्र ने बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फॉर एक्शन को स्वीकार किया। इसका मुख्य उद्देश्य अवरोध रहित एवं अधिकार आधारित एक समावेशित समाज का निर्माण करना था।

भारत में समावेशी शिक्षा के लिए बनाई गई नीतियाँ :– स्वतंत्रता के पहले भारत में पहली बार सार्जेंट आयोग द्वारा 1944 में विशिष्ट शिक्षा पर विचार किया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में हुए शैक्षिक विकास में समावेशी शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान की गई। सर्वप्रथम कोठारी आयोग, 1964–66 ने विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की समस्याओं को उठाया और नियमित विद्यालयों में अक्षम अथवा विकलांग बच्चों को सम्मिलित करने की अनुशंसा की। इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में शिक्षा के अवसरों के सामान्यीकरण पर बल दिया गया। जिसमें लड़कियों की शिक्षा, पिछड़े वर्गों तथा विशेष रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिये शैक्षिक सुविधाओं के विकास करने पर जोर दिया गया। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा सम्बंधित समस्याओं को देखते हुए भारत सरकार द्वारा छठी पंचवर्षीय योजना में एकीकृत शिक्षा, 1974 की शुरुआत की गई। भारतीय शिक्षा के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन 1986 के शिक्षा नीति के दौरान आया, इस शिक्षा नीति में भी अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों को सामान्य विद्यार्थियों के साथ सामान्य शिक्षा की व्यवस्था की बात की गई, साथ–ही साथ उनके लिए विशेष विद्यालय के साथ छात्रावास, व्यावसायिक प्रशिक्षण, विकलांग बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था करने की बात की गई। 1986 की शिक्षा नीति के बाद अक्षमता के क्षेत्र में स्वतंत्र भारत में सबसे पहला कानून 'मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987' आया, जिसमें मानसिक रुग्ण व्यक्तियों का शीघ्र ईलाज, समाज को उनसे सुरक्षा, उनके लिए मानसिक विद्यालयों की स्थापना इत्यादि व्यवस्थाएं करने की अनुशंसा की गई। इसके बाद समावेशी शिक्षा की तरफ दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण कदम था भारतीय पुनर्वास परिषद्, 1986 की स्थापना। 1 दिसंबर 1992 को इसे संसद द्वारा पारित किया गया और 22 जून 1993 को यह अस्तित्व में आया। सन् 2000 में इस अधिनियम में उचित संशोधन किया गया। विकलांगता के क्षेत्र में समरूपता की जरुरत और न्यूनतम मापदंड तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षण और प्रशिक्षण को सुनिश्चित् करने के उद्देश्य से इस अधिनियम को पूरे देश में लागू किया गया। विभिन्न विकलांगताओं को शामिल करने वाला भारत का ऐतिहासिक और सबसे महत्त्वपूर्ण कानून विकलांगजन अधिनियम, 1995 है, जिसकी स्थापना 1995 में भारतीय संसद से पारित अधिनियम द्वारा

की गई तथा 7 फरवरी 1996 में यह संपूर्ण देश में लागू हो गया। इस अधिनियम के आने के बाद भी विकलांग बच्चों के माता–पिता के मन में यह डर लगा रहता था कि हमारे न रहने के बाद इनका क्या होगा? अभिभावकों की इस चिंता को कम करने के लिए तथा पी.डब्ल्यू.डी. एक्ट 1995 की कमियों को खत्म करने के लिए "राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999 प्रकाश में आया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य था– "निःशक्त व्यक्तियों को अन्य मंत्रालयों से सहयोग तथा व्यापक समर्थन प्रणालीके माध्यम से अवसर उपलब्ध कराने के लिए एक समर्थ युक्त वातावरण उपलब्ध कराना जिससे कि वे समाज के विकास में सहयोगी बन सकें। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 का मानना है कि समावेशन की नीति को हर स्कूल एवं सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किये जाने की जरुरत है। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वे स्कूल में हो या बाहर सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित् किये जाने की जरुरत है। स्कूलों को ऐसे केंद्र बनाये जाने की आवश्यकता है, जहाँ बच्चों की जीवन की तैयारी कराई जाए और यह सुनिश्चित् किया जाए कि सभी बच्चे खासकर शारीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम और कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को इस क्षेत्र के सबसे ज्यादा फायदे मिल सकें। ऐसे बच्चो को सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में समुचित अवसर तथा अनुसमर्थन देने की आवश्यकता होती है (एन.सी.एफ.2005)।

उपरोक्त सभी योजनाओं के बावजूद आज भी दिव्यांगजनों की शिक्षा अथवा समावेशी शिक्षा की सफलता संदेह के घेरे में है। दिव्यांगजनों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा 15 दिसंबर 2015 को 'सुगम्य भारत अभियान' का शुभारम्भ किया गया। वर्ष 2016 में सुप्रीम कोर्ट ने निर्धारित समय–सीमा के अन्दर दिव्यांगजनों की सार्वजनिक सुविधाओं तक पूर्ण पहुँच सुनिश्चित् करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को निर्देश जारी किया। जिसके फलस्वरूप सरकार द्वारा दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 राज्यसभा द्वारा पारित एक अधिनियम बन गया। यह अधिनियम 1995 के पी.डब्लू.डी. एक्ट को निरस्त करता है। इस अधिनियम द्वारा अपंगता के मौजूद 7 प्रकारों को बढ़ाकर 21 कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा शिक्षा और सरकारी नौकरियों में दिव्यांग व्यक्तियों के 3 प्रतिशत के आरक्षण को बढ़ाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया तथा दिव्यांगजन को एक विकसित और गतिशील अवधारणा के आधार पर परिभाषित कर और व्यापक बनाया गया। 6 जून 2017 में राष्ट्रीय न्यास परिषद् ने 'समावेशी भारत अभियान' की शुरुआत की है। यह अभियान विशेष रूप से बौद्धिक विकास सम्बन्धी दिव्यांगों के लिए है। इस अभियान के तहत् यह आशा की गई है कि राष्ट्रीय न्यास परिषद् अपने प्रयासों से इसके उद्देश्यों को सफलता पूर्वक प्राप्त कर सकेगा। पुनः 2018–20 में भारत सरकार द्वारा 'नई एकीकृत शिक्षा योजना' 'सबको शिक्षा' 'अच्छी शिक्षा' के विजन के परिप्रेक्ष्य में लाई गई। आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडल समिति ने 01 अप्रैल 2018 से 31 मार्च 2020 के लिए "नई एकीकृत शिक्षा योजना" बनाने की मंजूरी दी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य था– "स्कूली शिक्षा (पूर्व प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक के लिए) के स्तरों पर समावेशी और न्यायसंगत गुणवत्ता युक्त शिक्षा सुनिश्चित् करना। इस योजना का एक अन्य उद्देश्य है– "स्कूली शिक्षा में सामाजिक और लैंगिक असमानता को पाटना। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अध्याय 6 में "समतामूलक और समावेशी शिक्षा" नामक शीर्षक द्वारा समावेशी की चर्चाएँ की गई है। जिसका मुख्य उद्देश्य है "एक समतामूलक और समावेशी शिक्षा व्यवस्था स्थापित करना, जिससे सभी बच्चों को सीखने और सफल होने के समान अवसर उपलब्ध हों। परिणामस्वरुप वर्ष 2030 तक सभी लैंगिक और सामाजिक वर्गों की शिक्षा में भागीदारी और सीखने के स्तर पर समानता सुनिश्चित् करने की बात की गई है (नई शिक्षा नीति, 2020)। इस शिक्षा नीति में शिक्षा की पहुँच, समानता, गुणवत्ता, वहनीय शिक्षा और उत्तरदायित्व जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

निष्कर्ष :– इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में समावेशी शिक्षा एक नयी अवधारणा के रूप में उभरी है। आज इस शिक्षा का महत्त्व लगभग सभी लोग समझने लगे हैं। विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं ने इस क्षेत्र में अनेक प्रभावशाली कार्य भी किये हैं। विभिन्न शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों में यह विषय सदा से ही विवाद के घेरे में रहा है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को विशेष विद्यालय में शिक्षा देनी चाहिए या सामान्य विद्यालयों में। आपसी वाद–विवाद से यह निष्कर्ष निकला कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को सामान्य विद्यालयों में ही शिक्षा दी जाए, जिससे की वो समाज की मुख्य

धारा से जुड़ सकें। फिर इस दिशा में अनेक कार्य आरम्भ हुए, अनेक योजनाएँ चलाई गई, विभिन्न शिक्षा नीतियों में समावेशी शिक्षा के लिए विशेष नीतियाँ तथा कानून बनाये गए तथा नई शिक्षा नीति के अध्याय 6 में समावेशी शिक्षा के लिए संस्तुति की गई। उपरोक्त पहलुओं पर अगर ध्यान दिया जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि नई शिक्षा नीति को अगर व्यवहार में लाया जाये तो समावेशी शिक्षा निश्चित् ही सफल हो सकेगी। नई शिक्षा नीति में विकलांग बच्चों के लिए क्रॉस विकलांगता प्रशिक्षण, संसाधन केंद्र, आवास, सहायक उपकरण, उपयुक्त प्रौद्योगिकी आधारित उपकरण, शिक्षकों का पूर्ण समर्थन एवं प्रारंभिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक नियमित रूप से स्कूली शिक्षा प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित् करना आदि प्रक्रियाओं को सक्षम बनाये जाने के लिए संस्तुतियाँ की गई है। इस प्रकार हम कह सकते है कि नई शिक्षा नीति हम सभी के लिए एक आशा की किरण है।

संदर्भ सूची :–

1. मदान, ए. (2015). *समावेशन ही आगे बढ़ने का मार्ग है.* लर्निंग कर्व. https//:azimjifoundation.org.
2. पाल, बी. के. (2019). *समावेशी शिक्षा की स्थापना.* अंक 11. फाउंडेशन पब्लिकेशन हॉउस, पटना.
3. नामदेव, एच. एवं शर्मा, ए. (2016). *समावेशी शिक्षा.* अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
4. गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया. (2002). *इण्डिया एजुकेशन फॉर ऑल एसेसमेन्ट.* एम.एच.आर.डी., गर्वनमेंट ऑफ इण्डिया.
5. गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया. (2005). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा.* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्.
6. गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया. (2019). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति (प्रारूप).* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ सं. 191.
7. गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति.* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ सं. 38.
8. आर. बी. ई. (2004). *रेशनल फॉर एंड बेनिफिट्स ऑफ इन्क्लूजन.*www.inclusion.com/artibiggerpicture.html
9. आर. बी. ई. 2009). *निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम.* विद्यालय शिक्षा और साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार. www.education.gov.in<RTI1
10. आर. बी. ई. (2006–07). *वार्षिक रिपोर्ट.* विद्यालय शिक्षा और साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ सं. 25–27. Http://www.education.nic.in
11. आर. बी. ई. (2005–06). *वार्षिक रिपोर्ट.* विद्यालय शिक्षा और साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ सं. 25–27. Http://www.education.nic.in
12. चटर्जी, जी. (2003). *द मूवमेंट फॉर इंक्लूसिव एजुकेशन.* इंडिया टूगेदर. www.indiatogether.org
13. दास, एन. (2006). इंक्लूसिव एजुकेशन व्हाई इट मेटर?. *एडूट्रेक,* वॉ. 5 (*11*), पृष्ठ. सं. 5–10.
14. दास, एन. (2012). *इंक्लूसिव एजुकेशन फॉर चिल्ड्रेन विथ स्पेशल नीड्स.* अटलान्टिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
15. मैथेयु एवं झा. (2015). *इस्सुज, चौलेन्जेज ऑफ इंक्लूसिव एजुकेशन एंड स्ट्रेटजी थ्रो ओ.डी.एल.* मोड. कांफ्रेंस ऑफ एजुकेशन थ्रो ओ.डी.एल. मोड.
16. सिंह, जे. डी. (2016). *इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया– कॉन्सेप्ट, नीड्स एंड चैलेंजेज.* स्कॉलर्ली रिसर्च जर्नल फॉर ह्युमनिटी साइंस एंड इंग्लिश लैंग्वेज, 3 (*13*) .www.srjis.com

कोविड-19 महामारी के दौरान युवाओं के टेलीविजन देखने के व्यवहार का अध्ययन

डॉ. अमिता*

भारत में टेलीविजन लोगों के मनोरंजन का एक मुख्य साधन है। इसने युवाओं की जीवन शैली को काफी प्रभावित किया है। 2011 के सेंसेक्स के मुताबिक भारत में 15 से 34 साल के बीच की आयु के 42.3 करोड़ युवा हैं जो कि कुल जनसंख्या का 34.8% है।[1] ब्रॉडकास्ट ऑडियंस रिसर्च काउंसिल (BARC) के रिपोर्ट के अनुसार भारत में टेलीविजन दर्शकों की कुल संख्या का 33% हिस्सेदारी युवाओं की है।[2] इतनी बड़ी दर्शक संख्यां होने के बावजूद भारतीय टेलीविजन चैनल पर नजर डालें तो पूरी तरह से युवाओं के लिए समर्पित चैनल न के बराबर हैं। कुछ हैं भी तो वो केवल गीत–संगीत, रियलिटी शो और प्यार–मोहब्बत वाले कार्यक्रम ही परोस रहे हैं। कोविड–19 महामारी के दौरान एक लम्बे समय तक लोगों का ज्यादातर समय घर पर बीता। इसने लोगों की आदतों में कई बदलाव लाये। टेलीविजन ने इस स्थिति को भांपकर अपने कार्यक्रमों में कई बदलाव भी किये। चूँकि कोविड–19 महामारी के समय मनोरंजन के अन्य बाहरी साधनों का प्रयोग संभव नहीं था इसलिए लोगों का अधिकतर समय इंटरनेट और टेलीविजन पर गुजरा। प्रस्तुत अध्ययन कोविड–19 महामारी के समय युवाओं के टेलीविजन देखने के व्यवहार पर आधारित है कि युवाओं ने इस दौरान टेलीविजन माध्यम का उपयोग कैसे किया? सबसे बड़ी युवा जनसंख्याँ वाले देश भारत के लिए यह अध्ययन आवश्यक हो जाता है कि युवाओं का टेलीविजन माध्यम के साथ कैसा संबंध है और वो क्या देखना पसंद करते हैं?

पूर्ववर्ती अध्ययन :– इससे पूर्व में भी कुछ शोध इस तरह के विषय पर किए गए हैं जिनमें टेलीविजन दर्शकों के व्यवहारिक तरीकों को भारत में देखने की कोशिश की गई है। मीरा अघी (1987) ने अपनी पुस्तक ''टेलीविजन एंड द इंडियन चाइल्ड'' में बताया कि बच्चों का टेलीविजन देखना माता–पिता की निगरानी में होता है। बच्चे अपनी मातृभाषा में टेलीविजन देखना ज्यादा पसंद करते हैं। उसके बाद उनके स्कूल विद्यालय में बोली जाने वाली भाषा में वे टेलीविजन देखना पसंद करते हैं। बकिंघम और लिविंगस्टोन कहते हैं कि बहुत सारे माता–पिता यह मानते हैं कि टेलीविजन विशेष रूप से युवा बच्चों के लिए यह मुख्य शैक्षिक उपकरण है जिससे कि बच्चों का अच्छा बौद्धिक विकास होता है। व्यस्को द्वारा टेलीविजन कभी–कभार समय काटने के लिए भी देखा जाता है। अग्रवाल (1997), मथियालगान (1995), ई.आर.कंवल गुरलीन और डॉ सुखमणि (2011) अपने अध्ययन में यह पाते हैं कि बहुत सारे कारणों से भारतीय युवा टेलीविजन देखते हैं–जैसे ज्ञान की वृद्धि हेतु, नया सीखने के लिए, आराम करने और समय काटने के लिए। विजयलक्ष्मी (2005) द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार महिला दर्शकों की अपेक्षाकृत युवा पुरुषों की की ज्यादा प्राथमिकता पश्चिमी म्यूजिक जैसे कार्यक्रमों में होती हैं।

युवा की परिभाषा :– 'स्वामी विवेकानंद का मानना था, ''युवा किसी भी देश की वह शक्ति हैं जो उसे विकसित और दुनिया की ताकत बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है''।[3] 'ऑक्सफोर्ड लर्नर्स डिक्शनरी के अनुसार, ''जीवन का वह समय जब कोई व्यक्ति युवा होता है विशेषकर बच्चे के वयस्क होने से पहले का समय।[4] 'कैंब्रिज डिक्शनरी के अनुसार, ''युवावस्था आपके जीवन की वह अवधि है जब आप युवा होने की स्थिति में बेहद अलग किस्म का अनुभव करते हैं यह एहसास एक एसे समय को इंगित करता है जब आप अपने जीवन में अनेक युवाओं के अनंत रहस्यों, ताकतों को महसूस करते हैं यह समय बेहद गर्मजोशी से भरी उर्जा का होता है''।[5] कोलिंस डिक्शनरी के अनुसार, ''किसी की युवावस्था उनके जीवन

*** असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005।**

की वह अवधि है जिसके दौरान वे एक बच्चे हैं इससे पहले कि वे पूरी तरह से परिपक्व / वयस्क हो जाए। यह समय जोश, महत्वाकांक्षा और सपनों से परिपूर्ण होता है''।[6]

कई देश युवाओं के संबंध में उम्र की रेखा भी खींचते हैं। यह उम्र आमतौर पर कई देशों में 18 वर्ष है। एक बार जब कोई व्यक्ति इस उम्र को प्राप्त कर लेता है तो उसे व्यस्क माना जाता है। फिर भी युवा शब्द की प्रचलित परिभाषा और बारीकियां अलग–अलग देशों में अलग–अलग है जो समाजशास्त्रीय, आर्थिक और राजनीतिक कारकों पर निर्भर करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के मुताबिक युवा आयु समूह की सार्वभौमिक रूप से सहमत कोई अन्तर्राष्ट्रीय परिभाषा नहीं है। हालांकि, सांख्यिकीय उद्देश्यों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ 15 से 24 वर्ष के आयु के बीच के व्यक्तियों को युवाओं के रूप में परिभाषित करता है। यह परिभाषा 1985 में दुनिया भर में आयोजित 'अंतरराष्ट्रीय युवा वर्ष' के लिए बनाई गई थी। संयुक्त राष्ट्र के युवाओं से संबंधित सभी आंकड़े इसी पर आधारित हैं। यह परिभाषा संयुक्त राष्ट्र प्रणाली द्वारा जारी जनसांख्यिकी, शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य पर प्रकाशित आंकड़ों की वार्षिक ईयर बुक में परिलक्षित होती है।[7] वहीं ब्रॉडकास्ट ऑडियंस रिसर्च काउंसिल (BARC) के अनुसार भारत में 15 से 30 वर्ष की आयु को युवा माना जाता है।

आखिर युवा ही क्यों? – इस शोध कार्य हेतु युवाओं का चयन किया गया है जिसका मुख्य कारण टेलीविजन कार्यक्रमों की दर्शक संख्या है। देश के सभी चैनलों को देखे जाने के तुलनात्मक अनुपात में युवाओं का अनुपात 33% के साथ सबसे ज्यादा है।[8]

अध्ययन का क्षेत्र :– इस शोध अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी जिला का चयन किया गया है। वाराणसी जिले के अंतर्गत शहरी युवाओं का चयन किया गया है। वाराणसी, उत्तर प्रदेश राज्य में शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहां चार विश्वविद्यालय स्थित है, जिनमें उत्तर प्रदेश सहित देश के अन्य भागों से विद्यार्थी– शोधार्थी शिक्षा अर्जित करने आते हैं। वाराणसी में स्थित दो विश्वविद्यालय काशी हिंदू विश्वविद्यालय और महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ का शोध कार्य हेतु चयन किया गया है। शोध अध्ययन के लिए शहरी युवाओं का चयन इसलिए किया गया है क्योंकि टेलीविजन दर्शकों में ग्रामीण युवाओं की तुलना में शहरी युवा वर्ग की संख्या काफी अधिक है तथा ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहर में डीटीएच व अन्य सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े माध्यमों की अधिक पहुँच है।

शोध अध्ययन का समय :– शोध अध्ययन हेतु कोविड–19 महामारी के दौरान के दो महीनों अगस्त 2020 व सितंबर 2020 का चयन किया गया है।

शोध प्रविधि :– प्रस्तुत शोध पत्र "कोविड –19 महामारी के दौरान युवाओं के टेलीविजन देखने के व्यवहार का अध्ययन" में शोध अध्ययन के लिए सर्वे पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध में प्राथमिक तथ्यों के आधार पर आंकड़ों को एकत्रित किया गया है।

शोध उपकरण :– शोध हेतु 500 युवाओं को चयनित किया गया है जो 15 से 30 वर्ष के बीच के आयु वर्ग से संबंधित हैं। शोध उपकरण के रूप में प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। तथ्यों और आंकड़ों के एकत्रीकरण के लिए गूगल फॉर्म्स की सहायता से प्रश्नावली तैयार कर विद्यार्थियों/शोधार्थियों को भेजा गया और उन्होंने प्रश्नावली के माध्यम से अपनी जानकारी तयशुदा समय में हमें उपलब्ध करायी है। शोध अध्ययन के लिए वाराणसी स्थित दो विश्वविद्यालयों (काशी हिंदू विश्वविद्यालय व महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ) से 500 उत्तरदाताओं का चयन कर जानकारी एकत्रित की गई। साथ ही उत्तरदाताओं के रूप में समानता बरतते हुए 250 पुरुष विद्यार्थियों/शोधार्थियों व 250 महिला विद्यार्थियों/ शोधार्थियों को शोध हेतु चयनित किया गया।

तथ्य विश्लेषण :– 1. जब उत्तरदाताओं से टेलीविजन पर समय व्यतीत करने के बारे में पूछा गया तो 27% पुरुष उत्तरदाताओं ने कहा कि वे औसतन 1 घंटे से कम समय तक ही टेलीविजन से जुड़े रहते हैं। जबकि 21% महिला उत्तरदाताओं का मानना था कि वे 1 घंटे से कम समय टेलीविजन माध्यम पर दे पाती हैं। कुल मिलाकर औसतन 24% का समय टेलीविजन पर 1 घंटे से कम देखने में व्यतीत होता है। साथ ही

38% पुरुष उत्तरदाताओं ने बताया कि वे प्रतिदिन 1 से 2 घंटे तक टेलीविजन माध्यम पर अपना समय व्यतीत करते हैं। वहीं 26% महिला उत्तरदाताओं का कहना था कि वह 1 से 2 घंटे तक टेलीविजन देखने में समय बिताती हैं। साथ ही कुल मिलाकर 32% का समय औसतन 1 से 2 घंटे तक टेलीविजन देखने में लगता है। जब पुरुष उत्तरदाताओं से टेलीविजन पर समय व्यतीत करने के बारे में पूछा गया तो 22% का मानना था कि वे 2 से 3 घंटे तक का समय टेलीविजन माध्यम पर व्यतीत करते हैं। वहीं 36% महिला उत्तरदाताओं का मानना था कि वे 2 से 3 घंटे तक अपना समय टेलीविजन पर व्यतीत करती हैं। वहीं कुल मिलाकर 29% का मानना था कि वे 2 से 3 घंटे तक का समय टेलीविजन माध्यम पर खर्च करते हैं। जबकि 13% पुरुष उत्तरदाताओं का मानना था कि वे 3 घंटे से ज्यादा समय टेलीविजन पर व्यतीत करते हैं। वहीं 15% महिला उत्तरदाताओं का कहना था कि वे 3 घंटे से ज्यादा समय तक टेलीविजन देखने पर खर्च करती हैं। वही कुल मिलाकर 14% का कहना था कि वे 3 घंटे से अधिक समय तक टेलीविजन देखते हैं।

टेलीविजन पर समय व्यतीत करने की अवधि	पुरुष	महिला	कुल
1 घंटे से कम	27	21	24
1 से 2 घंटे तक	38	26	32
2 से 3 घंटे तक	22	36	29
3 घंटे से अधिक	13	15	14

(टेलीविजन पर व्यतीत किया गया समय)

2. जब युवा उत्तरदाताओं से टेलीविजन के प्राइम टाइम को देखने से संबंधित सवाल किया गया तो 7% का कहना था कि वे सुबह में टेलीविजन देखते हैं। जबकि 8% ने कहा कि वे दोपहर के बाद अक्सर टेलीविजन देखते हैं वहीं 33% का कहना था कि वे मुख्यरूप से सांयकाल के समय ही टेलीविजन देखते हैं। साथ ही 52% उत्तरदाताओं का मानना था कि वे रात्रि में टेलीविजन देखते हैं।

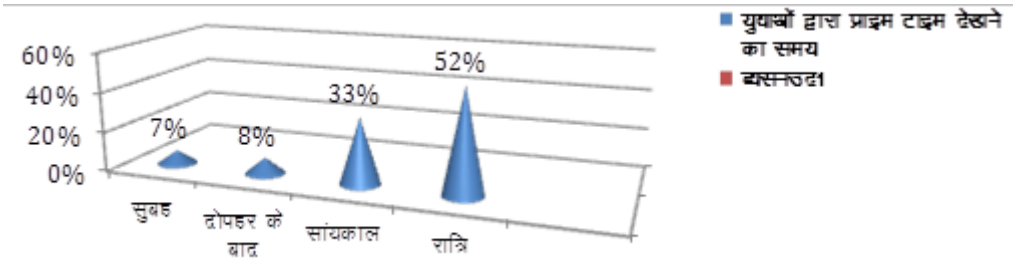

चित्र:(युवाओं द्वारा प्राइम टाइम देखने का समय)

3. जब उत्तरदाताओं से मनोरंजन के रूप में पसंदीदा श्रेणी के बारे में पूछा गया तो 65% पुरुष उत्तरदाताओं ने संगीत को और 48% ने हास्य को अपनी पसंद बताया और 38% का कहना था कि वे फिल्म मनोरंजन के रूप में देखना पसंद करते हैं। वहीं 58% पुरुष उत्तरदाताओं का कहना था कि वे नई जानकारियों से अपडेट रहने के लिए समाचार देखना पसंद करते हैं। 30% का कहना था कि वे सामान्य मनोरंजन हेतु कुछ भी आमतौर पर देख लेते हैं। वहीं 18% का कहना था कि वे इन्फोटेनमेंट के लिए टेलीविजन चैनल देखते हैं। जब यही सवाल महिला उत्तरदाताओं से पूछा गया तो 73% महिलाओं ने संगीत को अपनी पसंद बताया वहीं 62% ने कहा कि वे हास्य / कॉमेडी के कार्यक्रम देखना पसंद करती हैं। जब उनसे फिल्मों के बारे में राय जानी गई तो 42% ने फिल्मों को अपनी पसंद बताया और 40% महिला उत्तरदाताओं का कहना था कि वे देश– विदेश में घटित घटनाओं की जानकारियों से अपडेट होने के लिए समाचार देखना पसंद करती हैं। वहीं 23% का मानना था कि वे सामान्य मनोरंजन के कार्यक्रम देखती हैं वहीं 14% का कहना था कि वे सूचना और जानकारी दोनों ही उद्देश्यों से टेलीविजन देखना पसंद करती हैं।

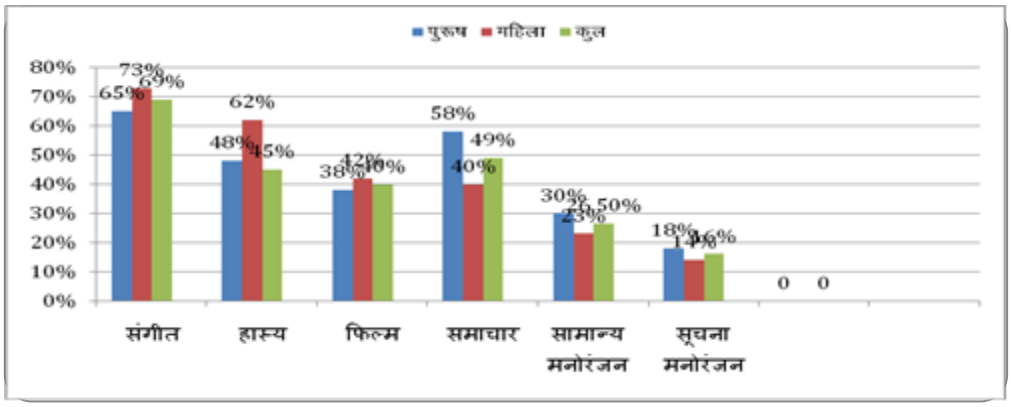

चित्र:(मनोरंजन के रूप में पसंदीदा कार्यक्रम)

4. जब उत्तरदाताओं से टाइप ऑफ कंटेंट प्रेफर्ड यानि कि वे किस तरह की सामग्री को देखना प्रेफर करते हैं, पूछा गया तो 53% पुरुष उत्तरदाताओं ने स्टैंडअप कॉमेडी को देखना अपनी पसंद बताया जबकि 60% का कहना था कि वे करंट हैपनिंग्स एंड सोशल मीडिया गैग्स को जानने के लिए मुख्यतौर पर टेलीविजन देखते हैं। वहीं 38% का कहना था कि वे टॉक शोज और इंटरएक्टिव शोज देखना ज्यादा प्रेफर करते हैं। 42% का कहना था कि वे एडवेंचर बेस्ड रियलिटी शोज देखना उनकी प्राथमिकता में होता है। वहीं 36%का मानना था कि वे एडवांस गेम से संबंधित जानकारियों को ज्यादा प्राथमिकता देते हैं। 6% ने डेली टीवी सीरियल्स को अपनी प्राथमिकता बताया। साथ ही 18% के लिए माइथोलॉजीकल आधारित कार्यक्रम देखना ज्यादा प्राथमिकता में होता है। 16% का कहना था कि उन्हें बायोपिक ड्रामा देखना ज्यादा पसंद है। वहीं महिला उत्तरदाताओं ने डेली टीवी सीरियल्स को 43% के साथ सबसे अधिक अपनी प्राथमिकता बताया। 36% ने स्टैंडअप कॉमेडी को अपनी प्रेफरेंस बताया। वहीं 13% ने करंट हैपनिंग्स एंड सोशल मीडिया गैग्स को अपनी प्राथमिकता बताया। जबकि 31% महिला उत्तरदाताओं ने एडवेंचर बेस्ड रियलिटी शोज को अपनी प्राथमिकता बताया। 28% ने गेम शोज को अपनी प्रेफरेंस बताया। साथ ही 16% ने टॉक/ इंटरएक्टिव शोज को देखना अपनी प्राथमिकता माना। 4% का कहना था कि वे माइथोलॉजीकल आधारित कार्यक्रम देखना ज्यादा प्रेफर करती हैं और 11% का कहना था कि वे बायोपिक ड्रामा देखना पसंद करती हैं।

पसंद की गई सामग्री	**पुरूष**	**महिला**	**कुल**
करेंट हैपेनिंग्स – सोशल मीडिया गैग्स	60%	13%	36.5%
एडवेंचर बेस्ड रियलिटी शोज	42%	31%	36.5%
स्टैंड – अप कॉमेडी	53%	36%	44.5%
गेम शोज	36%	28%	32%
डेली टीवी सीरियल्स	6%	43%	24.5%
टॉक /इंटरैक्टिव शो	38%	16%	27%
माइथोलॉजीकल	18%	4%	11%
बायोपिक ड्रामा	16%	11%	13%

(टाईप ऑफ कंटेंट प्रेफड)

5. जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि वे किस भाषा में संगीत देखना पसंद करते हैं तो 58% पुरुष उत्तरदाताओं का कहना था कि वे हिंदी भाषा में संगीत देखना पसंद करते हैं। जबकि 18% का कहना था कि वे अंग्रेजी संगीत देखने को ज्यादा प्राथमिकता देते हैं। वहीं 24% का कहना था कि वे सभी तरह का संगीत देखना प्रेफर करते हैं। 68% महिला उत्तरदाताओं ने कहा कि वे हिंदी संगीत को सुनना ज्यादा प्रेफर करती हैं। जबकि 26% का कहना था कि सभी तरह का संगीत सुनना उनकी प्राथमिकता में होता है। वहीं 6% का कहना था कि वे अंग्रेजी संगीत सुनना ज्यादा प्रेफर करती हैं।

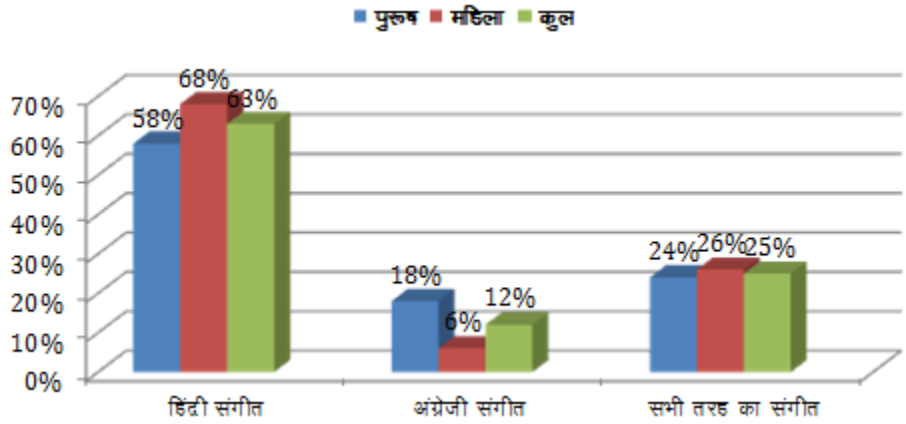

चित्र : (भाषा आधारित संगीत की पसंद)

6. जब उत्तरदाताओं से संगीत में उनके प्रेफरड शोज के बारे में पूछा गया तो 64% पुरुष उत्तरदाताओं ने रैंडम लेटेस्ट हिट्स को अपनी प्राथमिकता बताया। जबकि 24% ने कहा कि वे अनप्लग्ड म्यूजिक शोज देखना ज्यादा प्रेफर करते हैं। जबकि 22% का कहना था कि वी जे / एंकर्स आधारित शोज देखना ज्यादा प्राथमिकता में होता है। 13% ने कहा कि वे म्यूजिक शोज टीवी पर देखना प्रेफर नहीं करते हैं। वहीं 8% ने ऑर्केस्ट्रा को अपनी प्रेफरेंस बताया। महिला उत्तरदाताओं में 56% ने रेंडम लेटेस्ट हिट्स को अपनी प्राथमिकता बताया। वहीं 16% ने अनप्लग्ड म्यूजिक को अपनी प्राथमिकता स्वीकारा। जबकि 22% महिला उत्तरदाताओं ने वी जे / एंकर्स आधारित शोज को अपनी प्रेफरेंस बताया। जबकि 18% का कहना था कि वे म्यूजिक शोज को टीवी पर देखना प्रेफर नहीं करती हैं। 6% ने ऑर्केस्ट्रा को अपनी प्राथमिकता कहा।

टाइप्स ऑफ म्यूजिक शोज प्रेफरड	पुरूष	महिला	कुल
अनप्लग्ड म्यूजिक	24%	16%	20%
रेंडम लेटेस्ट हिट्स	64%	56%	60%
शोज विद वी जे / एंकर्स	22%	22%	22%
ऑर्केस्ट्रा	8%	6%	7%
टीवी पर म्यूजिक शोज नहीं देखते	13%	18%	15.5%

(टाइप्स ऑफ म्यूजिक शोज प्रेफरड)

7. जब पुरुष उत्तरदाताओं से फिल्म्स देखने की पसंद की प्राथमिकता के बारे में पूछा गया तो 68% उत्तरदाताओं ने अपने पसंदीदा अभिनेता / अभिनेत्री के आधार पर फिल्म देखना अपनी प्राथमिकता बताया लेकिन 32% ने यह भी स्वीकार किया कि वे इसके अलावा कहानी, किरदार, पटकथा इत्यादि के आधार पर भी फिल्म देखना प्रेफर करते हैं। जब महिला उत्तरदाताओं से उनके पसंदीदा अभिनेता व अभिनेत्री के आधार पर फिल्म देखने के बारे में पूछा गया तो 62% का मानना था कि वे इसके आधार पर तय करती हैं साथ ही साथ 38% ने यह भी बताया कि वे फिल्म के दूसरे पहलुओं के आधार पर भी उन्हें देखना पसंद करती हैं।

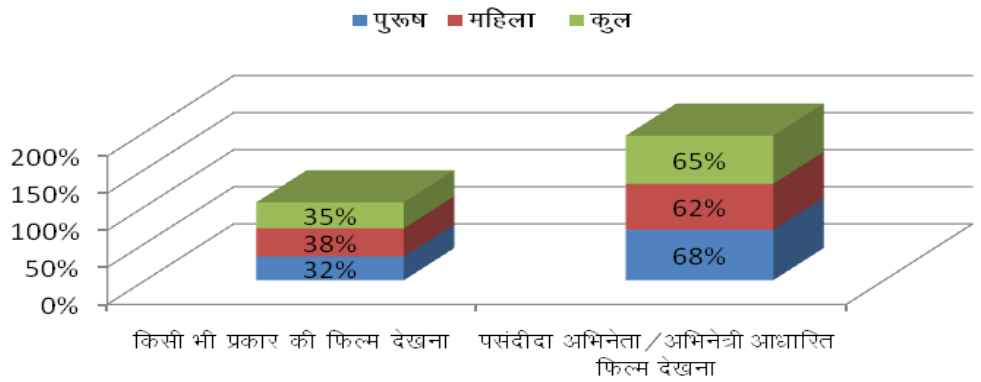

चित्रः–(फिल्म्स देखने का आधार)

8. जब उत्तरदाताओं से एग्जिस्टिंग टीवी चैनलस से किस तरह की उम्मीद उन्हें है के बारे में पूछा गया तो महिला उत्तरदाताओं की तरफ से काफी संतोषजनक उत्तर प्राप्त हुए। 68% महिलाओं द्वारा बताया गया कि टेलीविजन चैनलस द्वारा दिखाई जा रही सामग्री से वे संतुष्ट हैं। वहीं 58% पुरुष उत्तरदाताओं द्वारा टेलीविजन सामग्री से संतुष्ट नहीं होने की बात कही गई।

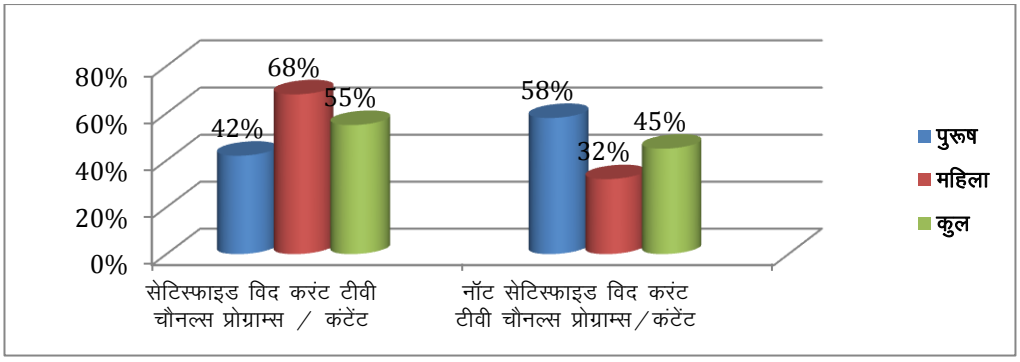

चित्रः– (एक्सपेक्टेशन फ्रॉम एग्जिस्टिंग टीवी चैनलस)

निष्कर्ष :– इस प्रकार कोविड –19 के दौरान युवाओं में टेलीविजन देखने के व्यवहार से पता चलता है कि युवाओं में ज्ञानवर्धक कार्यक्रमों की तुलना में गीत–संगीत और हास्य जैसे कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय हैं। युवा किसी राष्ट्र के निर्माता होते हैं अतः इनका सकारात्मक विकास हो इसके लिए टेलीविजन जैसे सशक्त माध्यम की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। शिक्षा, रोजगार, कौशल विकास आदि जैसे विषयों को लेकर अलग से युवाओं पर केंद्रित चैनलों की आवश्यकता है ताकि युवा राष्ट्र–निर्माण में अपना योगदान दे सके।

संदर्भ सूची :–

1. *Statistical Year Book India 2017 | Ministry of Statistics and Program Implementation | Government Of India*. Mospi.gov.in. (2020). Retrieved 8 November 2020, from http://www.mospi.gov.in/statistical-year-book-india/2017.
2. *Barc* (2020).Retrieved 8 November 2020, from https://www.barcindia.co.in/resources/What%20Young%20India%20Watches.pdf.
3. *राष्ट्रीययुवादिवसःक्याआपजानतेहैंस्वामीविवेकानंदकेबारेमेंयेबातें.*Hindustan.(2020).Retrieved 8 November 2020, from https://www.livehindustan.com/astrology/highlights/story-national-youth-day-2019-know-about-swami-vivekanand-full-details-2357924.html.
4. *Youth noun - Definition, pictures, pronunciation and usage notes | Oxford Advanced Learner's Dictionary at OxfordLearnersDictionaries.com*. Oxfordlearnersdictionaries.com. (2020). Retrieved 8 November 2020, from https://www.oxfordlearnersdictionaries.com/definition/english/youth.
5. *YOUTH | meaning in the Cambridge English Dictionary*.Dictionary.cambridge.org (2020).Retrieved8 November 2020, from https://dictionary.cambridge.org/dictionary/english/youth.
6. *Collins English Dictionary | Definitions, Translations, Example Sentences and Pronunciations*. Collinsdictionary.com.(2020).Retrieved 8November2020,fromhttps://www.collinsdictionary.com/dictionary/english.
7. En.unesco.org.(2020).Retrieved8November2020,from https://en.unesco.org/sites/default/files/tvet.pdf.
8. exchange4media. *33% of television viewers is youth: BARC Report* (2018). Retrieved 24 November2020 from https://www.exchange4media.com/media-tv-news/33of-television-viewers-is-youthbarc-report-89159.html

गृह्यसूत्रेषु वर्णित-ब्रह्मचारिधर्माः (व्रतानि)

डॉ. विश्वा केसरवानी*

गृह्यसूत्रेषु ब्रह्मचारिणः के धर्माः पालयेयुः कथं ब्रह्मचर्यमाचरेयुः कानि कार्याणि कुर्युः काञ्चनमार्गननुचरयुश्च, तेषाम् उल्लेखः विहितः। काठके व्रतशब्दो वर्तते। अत्र व्रतशब्देन ब्राह्मचारीणां कृते विहितधर्मस्य बोधो भवति। विषयोऽमित्थं दर्शयितुं शक्यते– 1.व्रतनिरूपणम् 2. वस्त्रनिर्धारणम् 3. केशवपनम् 4. भिक्षाचरणम् 5. दण्डधारणम् 6. मेखलाधारणम् 7. मधुमांसवर्जनम् 8. क्षारलवणवर्जनम् 9. आचार्यस्यानुकूलः 10. ब्रह्मचारिणो गुरुसेवा 11. स्त्रीस्पर्शकादिवर्जनम् 12. स्नाननियमः 13. सन्ध्योपासना 14. समिदाधानम् 15. ब्रह्मचर्यकालः

अत्र ब्रह्मचारिणा कथं ब्रह्मचर्यस्य पालनं कर्तव्यम्, तस्य कृते किं किं कार्यं करणीयमस्ति किं किमकरणीयमस्ति, तेषां सर्वेषाम् उल्लेखः विहितः।

व्रतनिरूपणम् :– काठकवाराहगृह्यसूत्रयोः कथिमस्ति यत् – यज्ञोपवीतसंस्कारादारभ्य वेदाध्ययनपरिसमाप्तिं यावत् कथितानां नियमानां यः पालनं करोति स एव ब्रह्मचारी वर्तते।[1]

वस्त्रनिर्धारणम् :– काठकवाराहगृह्यसूत्रयोः कथितमस्ति यत् ब्रह्मचारिणा मृगचर्मवस्त्र–रूपेण धारयति।[2] पारस्करगृह्यसूत्रानुसारं ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्यब्रह्मचारिणः विभिन्नवस्तुभिः निर्मितवस्त्राणि धारयेयुः। ब्राह्मणब्रह्मचारी शाणनिर्मितं वस्त्रं धारयेत्, क्षत्रियब्रह्मचारी क्षौमनिर्मितवस्त्रं, वैश्यब्रह्मचारी च ऊणानिर्मितवस्त्रम्।[4] आश्वलायनकौशिकगृह्यसूत्रयोः कथित–मस्ति यत्– ब्राह्मणब्रह्मचारिणः कृते कृष्णमृगचर्म निर्धारितं भवति, क्षत्रियब्रह्मचारिणः कृते रक्तमृगचर्म, वैश्यब्रह्मचारिणः कृते च अजाचर्म।[5] आपस्तम्बानुसारं यद् वस्त्रम् एकस्मिन् एव दिने निर्मितं भवति, तदेव वस्त्रं ब्रह्मचारी धारयेत्।[6] गोभिलानुसारं ब्रह्मचारिणां वस्त्राणि क्षौम–शाण–कार्पास–और्णानि भवन्ति।[7] शरीराङ्गाच्छादनार्थम् ऐणेय–रौरव–अजानिचर्माणि भवन्ति।[8] खादिगृह्यसूत्रे कथिमस्ति यत् कृष्णं वस्त्रं धारयेत्।[9] कौषीतकिगृह्यसूत्रानुसारं ब्राह्मणस्य वासः कषायवर्णस्य भवति[10], क्षत्रियस्य माञ्जिष्ठवर्णस्य[11], वैश्यस्य च हरिद्रावर्णस्य।[12]

केशवपनम् :– काठकवारहगृह्यसूत्रयोः अनुसारं ब्रह्मचारिणः कृते सम्यक् क्षुरेण न तु कर्तर्यादिना हता अपसारिताः केशाः यस्य स तथा संहतकेशः। मुण्डितशिरा एवं मुण्डत्वं धारयेत्।[13] काठकस्य अन्यस्मिन् सूत्रे कथिमस्ति यत् मुण्डो जटिलः शिखी वा। अर्थात् शिखा रहितः जटावान् चूडां वा धारयेत्।[14]

पारस्कर–आश्वलायनगृह्यसूत्रयोः अनुसारमपि ब्रह्मचारी वापिताशिरसः भवेत्।[15] आश्वलायनगृह्यसूत्रे वस्त्रनिर्धारणप्रसङ्गे कथिमस्ति कुशलीकृतशिरसम् अर्थात् वापितशिरसम्। आपस्तम्बगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी केशवपनसमये बालकस्य माता कश्चित् ब्रह्मचारी वा दक्षिणपार्श्वे। भवेत्।[16] खादिरगृह्यसूत्रे केशवपनसंदर्भे कथितमस्ति सलोमं वापयेत्।[17] कौशिकीगृह्यसूत्रेऽपि केशवपनविधिः प्रतिपादितः। तद्यथा येनावपत् इति दक्षिणस्य केशपक्षस्य दर्भविञ्जुल्या केशानभिनिधाय प्रच्छिद्य स्थालरूपे करोति।[18] एवमेवोत्तरस्य केशपक्षस्य करोति।[19]

भिक्षाचरणम् :– काठकवारागृह्यसूत्रयोः अनुसारं ब्रह्मचारी भिक्षान्नस्य सेवनं गुरोः आदेशानुसारं कुर्यात्।[20] ब्रह्मचारिणः भिक्षायाचना कथं कर्तव्यम् एतद् विषयेऽपि पारस्करगृह्यसूत्रे उक्तम्– याः स्त्रियः भिक्षां दातुं स्वीकुर्वन्ति ताः तिस्त्रः अप्रत्याख्यायिन्यः ब्रह्मचारी भिक्षां याचते।[21] अत्र विकल्पः षट् स्त्रियः द्वादशस्त्रियः अपरिमित वा भिक्षां याचते।[22] केचित् आचार्याः आहुः सर्वप्रथमं मातरं भिक्षां याचयेत्।[23]

आश्वलायनगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी अहनि रात्रौ च आचार्यार्थमशनार्थं चान्नं याचते।[24] ब्रह्मचारिणा भिक्षां दातुं ये स्वीकुर्वन्ति तेषां गृहस्थानां गृहे भिक्षायाचनं कर्तव्यम्। अथवा भिक्षां दातुं या स्त्री स्वीकरोति ताम् अप्रत्याख्यायिनीं प्रति कथयेत् – भवती ददातु।[25] गोभिलगृह्यासूत्रानुसारं उपनयनानन्तरं ब्रह्मचारी भिक्षाचरणं कुर्यात्। सर्वप्रथमं मातरं भिक्षां याचते, तदनन्तरं द्वे चान्ये सुहृदौ भिक्षां याचते अथवा तस्मिन् स्थाने यावत्या स्त्रियः

---

* शेधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

उपस्थिताः भवन्ति ताः सर्वाः स्त्रियः याचते।[26] खादिरगृह्यसूत्रेऽपि भिक्षाचरणविधिः प्रतिपादितः।[27] कौषीतकिशाङ्खायनगृह्यसूत्रयोः भिक्षचरणविषये कथिमस्ति यत्– ''तच्चक्षु'' अनेन मन्त्रेण आदित्यस्य उपस्थानं कृत्वा प्रतिसंभ्रम्म ग्रामे भिक्षाचरणं करणीयम्।[28] ब्रह्मचारी प्रथमां भिक्षां मातरं याचते।[29] आचार्याय भैक्षं निवेदयित्वा गुरुणा अनुज्ञातः भुञ्जीत।[30] कौशिकगृह्यसूत्रे कथितमस्ति यत् – ''भवति भिक्षां देहि'' मन्त्रमिमं समुच्चार्य ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षां याचते।[31] ''भिक्षां भवति ददातु'' मन्त्रमिमं समुच्चार्य क्षत्रियब्रह्मचारी भिक्षां याचते।[32] ''देहि भिक्षां भवति'' मन्त्रमिमं समुच्चार्य वैश्यब्रह्मचारी भिक्षां याचते।[33] काठकवाराहगृह्यसूत्रयोः अन्यस्मिन् सूत्रे कथितमस्ति यद् भिक्षायां ब्रह्मचारी यद् सौवर्णादिकम् उपगच्छेत्तत् आचार्याय दद्यात्।[34] यद्यपि ब्रह्मचारी वेद–वेदाङ्गादि ज्ञानार्थं बहून् आचार्यान् उपास्ते तथापि यस्य सन्निधौ निवसन् यानि प्राप्नोति तानि वस्तूनि तस्मै दद्यात्।[35] आश्वलायनगृह्यसूत्रेऽपि कथिमस्ति यद् ब्रह्मचारिणा भिक्षयां यानि वस्तूनि लभ्यन्ते तानि आचार्याय देयानि।[36] गोभिलखादिरादि गृह्यसूत्रेष्वपि भिक्षाचरणनियमः चर्चितः।[37]

दण्डधारणम् :– काठकवराहगृह्यसूत्रयोः कथितमस्ति यत्–ब्रह्मचारिणा वल्कल–सहितदण्डः धारणीयः।[38] पारस्करगृह्यसूत्रे– ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्यानां' पृथक्–पृथक् दण्डधारणस्य विधानं वर्तते। ब्राह्मणस्य ब्रह्मचारिणः पालाशदण्डः भवति।[39] क्षत्रियस्य ब्रह्मचारिणः बिल्वदण्डः[40], वैश्यस्य ब्रह्मचारिणः उदुम्बरदण्डः।[41] आश्वलायनगृह्यसूत्रेऽपि कथितमस्ति यत्– ब्राह्मणस्य पालाशादण्डः भवति, क्षत्रियस्य उदुम्बरदण्डः, वैश्यस्य च बिल्वदण्डः। ब्राह्मणस्य दण्डः केशसंमितः भवति। क्षत्रियस्य ललाटसम्मतिः, वैश्यस्य च प्राणसंमतिः (नासिकासमंमितः)[42] अथवा पालाशादयः सर्वे दण्डाः सर्वेषां भवन्ति।[43] आपस्तम्बानुसारं ब्राह्मणस्य पालाशदण्डः भवति, क्षत्रियस्य न्यग्रोधदण्डः वैश्यस्य च बादरदण्डः उदुम्बरदण्डः वा।[44] केचनाचार्या उपदिशन्ति वर्णविशेषविचारेण विना वृक्षदण्डः भवेत्।[45] गोभिलगृह्यसूत्रानुसारं खादिरगृह्यसूत्रेऽपि उक्तमस्ति ब्रह्मचारिणः दण्डः पालाशस्य, बिल्वस्य अश्वत्थस्य वा भवेत्।[46] ब्रह्मचारी दण्डं धारयेत्।[47] कौषीतकिशाङ्खायनगृह्यसूत्रयोः कथितमस्ति ब्राह्मणस्य दण्डः पालाशो बैल्वो वा भवति[48], क्षत्रियस्य नैयग्रोधः[49], वैश्यस्य च औदुम्बरः।[50] कौशिकगृह्यसूत्रे उक्तं यद् 'मित्रावरुणयोस्त्वा' इत्यादिमन्त्रेण ब्रह्मणाय पालाशदण्डं दद्यात्[51], क्षत्रियाय आश्वस्थदण्डं[52], वैश्याय च न्यग्रोधावरोहदण्डम्।[53]

मेखलाधारणम् :– काठकवाराहगृह्यसूत्रयोः कथिमस्ति, ब्रह्मचारी सप्तमुञ्जां मेखलां धारयेत्।[54] पारस्करगृह्यसूत्रानुसारं ब्राह्मणस्य मौञ्जीमेखला भवति[55], क्षत्रियस्य धर्नुज्यामेखला[56], वैश्यस्य च मौर्वीमेखला।[57] भुञ्जाभावे कुशनिर्मिता मेखला, अश्मतकनिर्मितामेखला, बल्वजनिर्मिता वा मेखला भवति।[58] आश्वलायनगृह्यसूत्रे उक्तमस्ति ब्राह्मणस्य मेखला मुञ्जनिर्मिता भवति, क्षत्रियस्य मेखला धनुषः रशया निर्मिता वैश्यस्य च आवी मेखला।[59] आपस्तम्बानुसारम् आचार्यः त्रिवृत्तां मौञ्जीं मेखलां त्रिः प्रदक्षिणमुत्तराभ्यां मरिवीयाजिमुत्तरमुत्तरया ब्रह्मचारिणः शरीरे बध्नाति।[60] गोभिलखादिरगृह्यसूत्रयोः अपि ब्रह्मचारिणः कृते मेखलाधारणविधिः वर्णितः।[61–62] कौषीतकिशाङ्खायनगृह्यसूत्रयोः कथिमस्ति यत् ब्राह्मणस्य मौञ्जीमेखला भवति[63], क्षत्रियस्य धनुर्ज्या[64], वैश्यस्य च ऊर्णासूत्रम्[65]। कौशिकगृह्यसूत्रानुसारमुक्तमस्ति– 'श्रद्धयादुहिता' इति मन्त्रेण भाद्रमौञ्जीं मेखलां ब्राह्मणाय बध्नाति।[66] मौर्वी धर्नुज्या वा क्षत्रियाय[67] वैश्याय क्षौमिकीमेखलां धारयेत्।[68]

मधुमांसवर्जनम् :–काठकगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी मधुमांसे (मधु च मांसं च माधुमांसे) न भक्षयेत्।[69] पारस्कर–गोभिल–खादिर–वाराह–कौशिकगृह्यसूत्रेष्वपि मधुमांसभक्षण– निषेधसूत्राणि लभ्यन्ते।[70–71–72–73]

क्षारलवणवर्जनम् :– काठक–पारस्कर–आपस्तम्बगृह्यसूत्रेषु क्षारलवणभक्षणनिषेध–विषयकाणि सूत्राणि पठितानि।[74–75–76] क्षारं च तल्लवणं समुद्रिकादि तद्वर्जी, तद्वजर्यति तच्छीलः क्षारलवणवर्जी। आश्वलायनगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वा क्षारं लवणं च न भक्षयेत्।[77] गोभिलखादिरगृह्यसूत्रयोः ब्रह्मचरिणः कृते त्रिरात्रं क्षारलवणभक्षणनिषेधः विहितः।[78] वारागृह्यसूत्रे कथिमस्ति यत् ब्रह्मचारी अयाचितमलवणं भक्षयेत्।[79] एतत्गृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी द्वादशरात्रं क्षारं लवणं च न भक्षयेत्। केषाञ्चित् मते क्षारं न भक्षयेत्।[80] कौशिकगृह्यसूत्रानुसारमपि ब्रह्मचारी लवणं न भक्षयेत्।[81]

आचार्यस्यानुकूल :– काठकगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी आचार्यस्य अप्रतिकूल अर्थात् अनुकूलः हितैषी भवेत्। वाराहगृह्यसूत्रेऽपि काठकगृह्यसूत्रवत् 'आचार्यस्यप्रतिकूलः' इति सूत्रं पठितम्।[82] ब्रह्मचारी सर्वेषु कार्येषु आचार्यवशवर्ती भवेत्। आचार्यस्य अनुज्ञया सर्वाणि कार्याणि कुर्यात्।[83] आश्वलायन–गोभिल–खादिरगृह्यसूत्रेष्वपि 'आचार्याधीनः' इति पदं प्रयुक्तम् अर्थात् ब्रह्मचारी आचार्यवशवर्ती स्यात्।[84–85]

ब्रह्मचारिणो गुरुसेवा :– काठकगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी च भवेत्। पूर्वोत्थायी अर्थात् शयनादिकमाश्रिते गुरौ उत्थातुकामे पूर्वं प्रथमेव उत्तिष्ठेत्। जघन्यसंवेशी पदस्य अर्थः भाष्यकारेण आदित्यदर्शनेन एवं विहितः आचार्ये संविष्टे शय्यागते तस्याङ्गसंवाहनं कृत्वा पश्चात् संवेशनं शीलमस्येति जघन्यसंवेशी।[86] यस्यां शय्यायाम् आचार्यः स्थितः तां शय्यां ब्रह्मचारी नाविशेत्।[87] ब्रह्मचारी रथं नारूहेत्।[88] वारागृह्यसूत्रेऽपि काठकगृह्यसूत्रवत् आचार्याधिष्ठितासन– रथारोहण–निषेधानिर्देशः विहितः। ब्रह्मचारी समानं वस्त्रं न कुर्यात् अर्थात् आचार्यपरिहितं वस्त्रं न परिदधीत।[89]

पारस्कगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी आचार्येण आहूतः उत्थाय प्रतिशृणुयात्।[90] शयानं चेत् आसीनः चेत् तिष्ठन् तिष्ठन्तं चेत् अभिक्रामन् अभिक्रामन्तं चेत् अभिधावन्।[91] कौषीतकिशाङ्खायनगृह्यसूत्रयोः अपि ब्रह्मचारिणो गुरुसेवा सम्बद्धानि सूत्राणि पठितानि।[92]

स्त्रीस्पर्शादिवर्णनम् :– काठकगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी संस्पर्शनिमित्तानि यानि पाणिग्रहणा– भ्यञ्जनादीनि कर्माणि तानि सर्वाण्येव सर्वाभिः स्त्रीभिः सह वर्जयेत्।[93] ब्रह्मचारी नग्नां स्त्रियं न पश्येत्।[94] विहारः क्रीडा तदर्थं परिहासादिकं न वदेत्।[95] पारस्करगृह्यसूत्रे ब्रह्मचारिणः नियमनिरूपणे कथितमस्ति स्त्रीगमना– नृतादत्तादानानि वर्जयेत्।[96] गोभिलखादिरगृह्यसूत्रयोः ब्रह्मचारिणा कृते ये नियमाः प्रतिपादिताः तेषु नियमेषु मैथुनवर्जनमपि अन्यतमः।[97–98]

स्नाननियम :– काठकगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी रुच्यर्थम् अलङ्करणक्रीडनादिकं न संगृह्णीयात्।[99] दीप्त्यर्थं स्नानं शोभाप्रयोजनं न कुर्यात्।[100] नित्यं स्नानं तु कर्त्तव्यम्।[101] यदि मज्जनरूपः स्नानपक्षः तदा ब्रह्मचारिणा दण्डेनेवाप्सु परिप्लवनमात्रं कर्तव्यं न तु कान्त्यादिसिद्धये मलापसारणादिना यतनीयम्।[102] वाराहगृह्यसूत्रेऽपि स्नाननियसम्बद्धानि सूत्राणि प्रयुक्तानि। गोभिलखादिरगृह्यसूत्रयोः अपि ब्रह्मचारिणः कृते सौन्दर्यप्रशाधनानां प्रयोगः निषिद्धः अर्थात् ब्रह्मचारिणा तिलकादिद्वारा मुखस्य अलङ्करणं कदापि न कर्तव्यम्। तुत्थकादिद्वारा दन्तानां रञ्जनं न कर्तव्यम्। अपेक्षितं पादप्रक्षालनं कर्तव्यं न तु सौन्दर्यवृद्धर्यर्थम्।[103–104]

सन्ध्योपासना :– काठकगृह्यसूत्रे सन्ध्योपासनविधिः प्रतिपादितः। सायं प्रातः सन्ध्यामुपासेत् इति सूत्रे देवपालेन सन्ध्यापदस्य अर्थः स्पष्टीकृतः तद्यथ सकलादित्योपलक्षितः कालो दिवसः। आदित्यशून्यः कालो रात्रिः। अर्धोदितेन वा तङ्गतेन वादित्येनोपलक्षितः कालः सन्धिः। सन्धौ भावा सन्ध्या। तामुभयीगमपि प्रत्यहमुपासीत। उपासनं सेवा। ब्रह्मचारी सायंकाले सूर्यास्तसमये प्रातःकाले च सूर्योदयसमये सन्ध्यामुपासीत्।[105] प्रातः सन्ध्यां निवृत्तगतिपूर्वः प्राङ्मुखः उपासीत। प्रातः काले सनक्षत्रकालादारभ्य आ सूर्यज्योतिषदर्शनात्।[106] सायंकाले च सभास्करकालादरभ्य आ तारकज्योतिदर्शनात्। सायंसन्ध्यामुपविष्टः प्रत्यङ्मुखः उपासीत।[107] ओं भूर्भुवः स्वः इत्युच्चारणपूर्वकं तत्सवितुरिति सावित्रीमन्त्रस्य जपः करणीयः।[108] सन्ध्योपासनादिकं सप्तरात्रमकृत्वा अवकीर्णीव्रतं चरेत्। अवकीर्णी पदस्य अर्थः देवपालानुसारं अवकरणमवकीर्णं कामतः ब्रह्मचारिणो रेतस उत्सर्गः। अवकीर्णं विद्यते यस्य सः अवकीर्णी। तस्य व्रतम् अवकीर्णिव्रतम्।[109] वाराहगृह्यसूत्रेऽपि सन्ध्योपासनविषय चर्चितः।[110] कौषीतकि गृह्यसूत्रे सन्ध्योपासनविधिः, वर्णितः, तद्यथा–'भैक्षैराचार्यं स्वस्तिवाच्य, अरण्ये समित्पाणिः सन्ध्यामुपास्ते, नित्यं वाग्यत उत्तरापरमभिमुखोऽन्वष्टमदेशमधीस्तमिते मण्डले आ नक्षत्राणां दर्शनात्। अतिक्रान्तायां महाव्याहृतीः सावित्रीं स्वस्त्ययनानि च जपित्वा।[111] शाङ्खायनगृह्यसूत्रे कथिमस्ति यत् – ब्रह्मचारी प्रतिदिनं ग्रामाद् बहिः अरण्ये समित्पाणिः सन्ध्यामुपास्ते।[112]

समिदाधानम् :– काठकगृह्यसूत्रे उक्तमस्ति यत् – ब्रह्मचारी अनस्तंगते भानौ ग्रामान्निष्क्रम्य अष्टौ समिधः अग्निसमिन्धनार्थं हरितवर्णा आर्द्रा आहरेत्। यः ब्रह्मचारी वेदाध्ययनतदर्थानुष्ठानादिसमृद्धिलक्षणं ब्रह्मवर्चसं कामयते।[113] अग्नीन्धनं सायं प्रातः कर्तव्यम्। चतस्रः प्रातश्चस्रः सायं समिधः होतव्याः।[114] केषाञ्चित् मते न प्रातरग्नीन्धनमपि तु सायमेव।[115] ब्रह्मचारी 'विभुरसि' इति अनुवाकेन अग्निमुपस्थाय 'एधोऽसि' मन्त्रेण समिधमादधाति। 'समिदिति' मन्त्रेण द्वितीयां समिधमादधाति। 'इदमहमिति' मन्त्रेण तृतीयां समिधमादधाति। 'इदमहमग्नौ' इति मन्त्रेण चतुर्थीं समिधमादधाति।[116] 'तेजोऽसि' इति मन्त्रणे अग्निमनुमन्त्रयते। 'तेजो मयि धेहि' इति मन्त्रेण आत्मानं शेषेण उपतिष्ठते।[117] प्रातः अग्निसमन्धिनं कुर्यात्। प्रातः यत् अग्निसमिन्धनं कर्तव्यम् आदित्योदयात् प्राक्।[118]

पारस्करगृह्यसूत्रेऽपि अयं विषय प्रतिपादितः।[119] आपस्तम्बगृह्यसूत्रे समिदाधानविषये कथिमस्ति यत् – उपनयनसमये यो बहिनः भवति ब्रह्मचारी तमग्निम् उपसार्य द्वितीयवघ्नौ समिदाधानं कुर्यात्।[120] गोभिलगृह्यसूत्रे

कथिमस्ति यत् आचार्यः बालकस्योपनयनानन्तरं प्रतिदिनं सायंकाले प्रातः काले चाग्नौ समिदाधानाय बालकं निर्दिशति।[121] सूयास्ते सति ''अग्नये समिधमाहार्षम्'' मन्त्रं पठन् सूर्यास्ते सति अग्नौ समिधामेकां जुहूयात्।[122] आश्वलायनगृह्यसूत्रेऽपि ब्रह्मचारिणः कृते सायं प्रातः काले चाग्नौ समिदाधानस्य विधानं वर्तते।[123] खादिरगृह्यसूत्रेऽपि ब्रह्मचारिणः कृते समिदाधानस्य आवश्यकता निर्दिष्टा।[124] कौषीतकिगृह्यसूत्रानुसारं ब्रह्मचारी ''एषा ते अग्नि समित्'' इति मन्त्रेण समिदाधानं करोति।[125] अथवा विना मन्त्रं समिदाधानं करोति।[126] शाङ्खायने कथितमस्ति यत् – ब्रह्मचारी प्रतिदिनं बहिनं संस्थाप्य तस्य परिसमूहनं पर्युक्षणं कृत्वा दक्षिणं जान्वाच्य समिदाधानं कुर्यात्।[127] कौशिकगृह्यसूत्रे उल्लिखितमस्ति यत्– ब्रह्मचारी प्रतिदिनं समिध आहृत्य सायंप्रातः वह्नौ जुहुयात्।[128]

ब्रह्मचर्यकाल :– काठकगृह्यसूत्रे कथिमस्ति यत्– ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यस्य पालनं कुर्वन् गुरोः आश्रमे द्वादश वर्षाणि, चतुर्विंशति, षट्त्रिंशत्, अष्टाचत्वारिंशत् वा निवसति। एतेन धर्मेण यदधीते साधु भवति। अर्थात् शोभनं भवति। यः ब्रह्मचर्यं चरति स्नात्व स सर्वं लभते।[129] पारस्करगृह्यसूत्रे ब्रह्मचर्यस्य कालावधिः विषये वैषम्यं न दृश्यते। ब्रह्मचारी अष्टाचत्वारिंशत् वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत्।[130] यतो हि तत्र द्वादश वा प्रतिवेदम् इति स्पष्टं कथितम्।[131] यावत् ब्रह्मचारी वेदे पारङ्गतो न भवति, तावत् ब्रह्मचर्यस्य पालनं कुर्यात्।[132] आश्वलायनगृह्यसूत्रे ब्रह्मचर्यकालः द्वादश वर्षाणि निर्दिष्टः।[133] ब्रह्मचर्यस्य नियमाः वेदाध्ययनपर्यन्तं पालनीयाः।[134]

वाराहग्रह्यसूत्रानुसारं द्वादश वर्षाणि यावत् एकस्य वेदस्य ब्रह्मचारिणः अध्ययननियमः निर्दिष्टः।[135] द्वयोः वेदयोः अध्ययनार्थं चतुर्विंशति वर्षाणि। त्रयाणां वेदानाम् अध्ययनार्थं षट्त्रिंशत् वर्षाणि।[136] सर्वेषां वेदानाम् अर्थात् चतुर्णा वेदानामध्ययनार्थमष्टचत्वारिंशत् वर्षाणि।[137] वाराहगृह्यसूत्रेऽपि कथिमस्ति यत् – यावत् ब्रह्मचारी वेदे पारङ्गतो न भवति, तावत् ब्रह्मचर्यस्य पालनं कुर्यात्।[138]

पाद–टिप्पणी :–

1. व्रतशब्दो यमनयिमवाचकः। का0 देवपालभाष्यम् 1/1/1
2. उपनयनप्रभृति–व्रतचारी स्यात्। का0 1/1/1, वा0 6/1
3. मृगवासाः। का0 1/1/2, वा0 6/3
4. वासांसि शाणक्षौमाविकानि। पा0 2/5/16
5. अलङ्कृतं कुमारं कुशलीकृतशिरसमहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वाऽजिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्। आश्व0 1/19/8, कौ0 6/97/10–12
6. वासः सद्यः कृत्तोतमुत्तराभ्यामभिमन्त्र्योत्तराभिस्तिसृभिः परिधात्य परिहितमुत्तरयाऽनुमन्त्रयते। आप0 4/10/10
7. क्षौमशाणकार्पासौर्णान्येषां वसनानि। गो0 2/10/8
8. ऐणेयरौरवाजान्यजिनानि। गो0 2/10/9
9. कृष्णवस्त्रम् खा0 2/5/23
10. काषायं वासो ब्राह्मणस्य। कौषी0 2/1/8
11. माञ्जिष्ठं क्षत्रियस्य। कौषी0 2/1/9
12. हारिद्रं वैश्यस्य। कौषी0 2/1/10
13. संहतकेशः। का0 1/1/3, वा0 6/4
14. मुण्डो जटिलः शिखी वा। का0 1/1/24
15. पर्युप्तशिरसमलङ्कृतमानयन्ति। पा0 2/2/7
16. अलङ्कृतं कुमारं कुशलीकृतशिरसमहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वाऽजिनेन ब्राह्मणं रोरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्। आश्व0 1/19/8
17. वपन्तमुत्तरयानुमन्त्रयते दक्षिणतो माता ब्रह्मचारी वा। आप0 4/10/7
18. सलोमं वापयेत्। खा0 2/5/2
19. येनावपदिति दक्षिणस्य केशपक्षस्य दर्भपिञ्जूल्या केशानभिनिधाय प्रच्छिद्य स्थालरूपे करोति। कौ0 7/53/20
20. एवमेवोत्तरस्यं केशपक्षस्य करोति। कौ0 7/5/323
21. भैक्षाचार्यवृत्तिः। का0 1/1/4, वा0 6/5
22. तिस्रोऽप्रत्याख्यायिन्यः। पा0 2/5/5
23. षड् द्वादशाऽपरिमिता वा। पा0 2/5/6
24. मातरं प्रथमामेके। पा0 2/5/7
25. सायं प्रातर्भिक्षेत्। आश्व0 1/22/5
26. अप्रत्याख्यायिनमग्ने भिक्षेताप्रत्याख्यायिनीं वा। आश्व0 1/22/7
27. अथ भैक्षं चरति मातरमेवाग्रे द्वे चान्ये सुहृदौ यावत्वो वा सन्निहिताः स्युराचार्याय भैक्षं निवेदयति। गो0 2/10/42–44
28. मेखलाधारणभैक्षचर्यदण्डसमिदाधानोपस्पर्शनप्रातरभिवादानित्यम्। खा0 2/5/16
29. ''तच्चक्षु'' इत्यादित्यमुपस्थाय प्रदक्षिणं परिक्रम्य भिक्षते। कौशी0 2/3/13
30. प्रदक्षिणमग्निं पर्याणीय भिक्षते ग्रामम्। शाङ्खा0 2/6/4
31. मातरं त्वेव प्रथमाम्। कौषी0 2/3/14, शाङ्खा0 2/6/5
32. आचार्याय भैक्षं निवेदयित्वानुज्ञातो गुरुणा भुञ्जीत। शाङ्खा0 2/6/7
33. भवति भिक्षां देहीति ब्राह्मणश्चरेत्। कौ0 7/57/16
34. सशल्कदण्डः। का0 1/1/5, वा0 6/6
35. पालाशो ब्राह्मणस्य दण्डः। पा0 2/5/25
36. यदेनमुपेयात्तदस्मै दद्यात्। 1/1/12, वा0 6/9
37. बहूनां येन संयुवन्तः का0 1/1/13।
38. तदाचार्याय वेदयति तिष्ठेदहः शेषम्/आश्व0 1/22/9 सूत्र 3–4।
39. आचार्याय भैक्षं निवेदयति। गो0 2/201/44, खा0 2/4/31, कौषी0 2/3/16, शाङ्खा0 2/6/7
40. सशकल्यदण्डः। का0 1/5, वा0 6/6
41. पालाशो ब्राह्मणस्य दण्डः। पा0 2/5/25।
42. बैल्वो राजन्यस्य। पा0 25/26।
43. औदुम्बरों वैश्यस्य। पा0 2/5/27।
44. पालाशो ब्राह्मणस्य, औदुम्बरः, क्षत्रियस्य, बैल्वो वैश्यस्य, केशसंमितो ब्राह्मणस्य, ललाटसंममितः क्षत्रियस्य प्राणंम्मिता वैश्यस्य। आश्व0 1/19/13।
45. सर्वे वा सर्वेषाम्। पा0 2/5/28, आश्व0 1/20/1
46. पालाशो दण्डो ब्राह्मणस्य न्यग्रोधस्सकन्धजोऽवाङ्ग्रो राजन्यस्य बादर औदुम्बरो वा वैश्यस्य। आप0 4/11/15।
47. वार्क्षो दण्ड इत्यवर्णसंयोगेनैक उपदिशन्ति। आप0 4/11/16।
48. पार्णविल्वाश्वत्थादण्डाः। गो0 2/10/11
49. मेखलाधारणभैक्षचर्यदण्डसमिदाधानोपस्पर्शनप्रातरभिवादानित्यम् खा0 2/5/16।
50. पालाशो बैल्वो वा दण्डो ब्राह्मणस्य। कौषी0 2/1/17, शाङ्खा0 2/1/18।
51. नैयग्रोध क्षत्रियस्य। कौषी0 2/1/18, शौ0 2/1/19
52. औदुम्बरो वैश्यस्य। कौषी0 2/1/19, शाङ्खा0 2/1/20

53. मित्रावरुणयोस्त्वा हस्ताभ्यां प्रसूतः प्रशिषा प्रयच्छमीति पालाशं दण्डं ब्राह्मणाय प्रयच्छति। कौ0 7/56/4।
54. आश्वस्थं क्षत्रियाय। कौ0 7/56/5।
55. न्यग्रोधावरोहं वैश्याय। कौ0 7/56/6।
56. सप्तमुञ्जां मेखलां धारयेत्। का0 1/1/6, वा0 6/7
57. मौञ्जी रशना ब्राह्मणस्य। पा0 2/5/21
58. धनुर्ज्या राजन्यस्य। पा0 2/5/22
59. मौर्वी वैश्यस्य। पा0 2/5/23।
60. मुञ्जाभावे कुशाश्मन्तकबलवजानाम् पा0 2/5/24।
61. मौञ्जी ब्राह्मणस्य, धनुर्ज्या क्षत्रियस्य, आवी वैश्यस्य। आश्व0 1/9/11
62. मौञ्जी मेखलां त्रिवृत्तां त्रिः प्रदक्षिणमुत्तराभ्यां परिवीयानिजमुत्तरमुत्तरया। आव0 3/10/11।
63. अथैनं त्रिः प्रदक्षिणं मुञ्जमेखलां परिहरन् वाचयतीयदुरुक्तात् पिरबाधमानेत्युतस्य गोप्त्रीति च। गो0 2/10/37
64. मेखलाधारणभैक्षचर्यदण्डसमिदाधानोपस्पर्शनप्रातरभिवादनित्यम्। खा0 2/5/16
65. मौञ्जीमेखला ब्राह्मणस्य। कौषी0 2/1/13। शाङ्खा0 2/1/15
66. धनुर्ज्या क्षत्रियस्य। कौषी0 2/1/14। शाङ्खा0 2/1/16।
67. ऊर्णासूत्रं वैश्यस्य कौशी0 2/1/15। शाङ्खा0 2/1/17।
68. श्रद्धाया दुहितेति द्वाभ्यां भाद्रमौञ्जीं मेखलां ब्राह्मणाय बध्नाति। कौ0 7/56/1
69. मौर्वी क्षत्रियाय धनुर्ज्या वा। कौ0 7/56/2
70. क्षौमिकीं वैश्याया। कौ0 7/56/3
71. न मधुमांसे अश्नीयात्। का0 1/1/7।
72. मधुमांसंजनोपर्यासनस्त्रीगमनानृतादत्तादानानि वर्जयेत्। पा0 2/5/12।
73. अमधुमांसाशी स्यात्। खा0 2/5/11, गो0 2/1/23।
74. मधुमांसे वर्जयेत्। वा0 6/29।
75. मधुलवणमांसवर्जम्। कौ0 1/1/32।
76. क्षारलवणवर्जी। का0 1/1/18।
77. अधः शय्यक्षारालवणाशी स्यात्। पा0 2/5/10।
78. क्षारलवणवर्जनं च। आप0 3/11/20।
79. अन्त ऊर्ध्वमक्षारलवणाशी ब्रह्मचर्यधः शायी त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वा। आश्व0 1/22/17।
80. त्रिरात्रं क्षारलवणदुग्धमिति वर्जयेत्। गो0 2/10/47, खा0 2/5/33।
81. अयाचितमलवणम्। वा0 6/27।
82. द्वादशरात्रमक्षारलवणमाशेदक्षारमेके। वा0 5/73
83. आचार्यस्याप्रतिकूलः। का0 1/1/9, वा0 6/8
84. सर्वकार्यास्वतन्त्रः। का0 1/1/10।
85. ब्रह्मचर्यस्यपोन कर्म कुरु दिवा मा स्वाप्सीराचार्याधीनो वेदमधीष्वेति। आश्व0 1/22/2।
86. आचार्याधीनः। गो0 3/1/15, खा0 2/5/25।
87. पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी। का0 1/1/11।
88. नास्य शय्यामाविशेत्। का0 1/1/14, वा0 6/13
89. न रथमारुहेत्। का0 1/1/15, वा0 6/13
90. न संवस्रयेत। का0 1/1/16
91. पा0 2/5/29।
92. पा0 2/5/30
93. अहरहः समिदाधानं भैक्षचरणमधः शय्या गुरुशुश्रूषेति ब्रह्मचारिणो नित्यानि। कौषी0 2/3/18, शाङ्खा0 2/8/8
94. सर्वाणि सांस्पर्शकानि स्त्रीभिः सह वर्जयेत्। का0 1/2/17, वा0 6/13
95. न मुषितां प्रेक्षेत। का0 1/1/18
96. न विहारार्थं जल्पेत्। का0 1/1/19, वा0 6/14
97. मैथुनम्। गो0 3/1/17।
98. मैथुनक्षुरकृत्यस्नानावलेखनदन्तधावनपादधावनानि वर्जयेत्। खा0 2/5/12।
99. न रुच्चयर्थं किञ्चन धारयते। का0 1/1/120, वा0 6/15।
100. न स्नायात्। का0 1/1/21।
101. उदकं वाभ्युपेयात्। का0 1/1/22, नोदकमभ्युपेयात्। वा0 6/18।
102. यदि स्नायाद्दण्ड इवाप्सु परिप्लवेत्। का0 1/1/23, स्नायाद्दण्डवत्। वा0 6/17
103. अवलेखनदन्तप्रक्षालनपादप्रक्षालनानि। गो0 3/129।
104. मैथुनक्षुरकृत्यस्नानावलेखनदन्तधावनपादधावनानि वर्जयेत्। खा0 2/5/12
105. सायं प्रातः सन्ध्यामुपासीत। का0 1/1/25
106. तिष्ठेत्पूर्वाम्। क0 1/1/26।
107. आसीतोत्तराम्। का0 1/1/27।
108. ओं भूर्भुवः स्वरित्युक्ता तत्सवितुरिति सावित्रीमन्वाह। का0 1/1/28
109. भैक्षस्याचरणे दोषः पावकस्यासमिन्धने सप्तरत्रमकृत्वैतदवकीर्णिव्रतं चरेत्। का0 1/1/32।
110. गुरवे निवेद्य वाग्यतः प्राग्ग्रामात् सन्ध्यामुपास्ते। वा0 5/55
111. कौषी0 2/6/3
112. अरण्ये समित्पाणिः सन्ध्यामुपास्ते नित्यं वाग्यत उत्तरापभिमुखोऽन्वष्टमदेशमानक्षत्राणां दर्शनात्। शाङ्खा0 2/9/1।
113. प्रागस्तमयान्निष्क्रम्य समिध आहरेद्धरिणीर्ब्रह्मवर्चसकमा इति श्रुतिः। का0 1/1/29।
114. सायं प्रातः सन्ध्यानिः सरणं भैक्षचरणमग्नीन्धनम्। का0 1/1/30
115. सायमेवाग्निमिन्धीतेत्येके। का0 1/1/31।
116. विभूरसीत्यनुवाकेनाग्निमुपस्थयैधोऽसीति समितिदति द्वितीयामिदमहमिति तृतीयामिदमहमग्नाविति चतुर्थीम्। का0 1/2/1
117. तेजोऽसीत्यग्निमनुमन्त्रयते तेजो मयि धेहीत्यात्मानं शेषेणोपतिष्ठते। का0 1/2/2
118. ततः प्रातः प्रागुदयात्। का0 1/2/3
119. अत्र समिदाधानम्। पा0 2/4/1।
120. एवमन्यस्मिन्नपि सदारण्यादेधानाहृत्त्य। आप0 4/11/22
121. अथैन संप्रेष्यति ब्रह्मचार्यस्यसावेति समिधमाधेह्यपोऽशान कर्म्मकुरु मा दिवा स्वाप्सीरिति। गो0 2/10/33–34
122. अस्तमिते समिधमादधात्यग्नये समिधमाहर्षमिति। गो0 2/1/046
123. सायंप्रातः समिधमादध्यात्। आश्व0 1/22/6
124. मखेलाधारणभैक्षचर्यदण्डसमिदाधानोपस्पर्शनप्रातरभिवादानित्यम्। खा0 2/5/16
125. ''ऐषा ते अग्ने समित्'' इत्यभ्यादधाति समिधम्। कैषी0 2/2/1
126. तूष्णी वा। कौषी0 2/2/17।
127. अग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य पर्युक्ष्य दक्षिणं जान्वाच्य। शाङ्खा0 2/10/2
128. कौ0 7/57/30
129. द्वादशचतुर्विंशति, षट्त्रिंशतमष्टचत्वारिंशतं वा वर्षाणि यो ब्रह्मचर्यं चरति मलज्ञरबलः कृशः सर्वं स विन्दते स्नात्वा यत्किञ्चिन्मनसेच्छत्येतेनैव धर्मेण साध्वधीते। का0 1/2/4
130. अष्टात्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत्। पा0 2/5/13।
131. द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम्। पा0 2/5/14
132. यावद्ग्रहणं वा। पा0 2/5/15।
133. द्वादश वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यम्। आश्व0 1/22/3
134. ग्रहणान्तं वा।
135. एतेन धर्मेण द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत्। वा 6/42
136. चतुर्विंशति द्वयोः षअत्रिंशत्त्रयाणाम्। वा0 6/43
137. अष्टचत्वारिंशत्सर्वेषाम्। वा0 6/44
138. यावद्ग्रहणं वा। वा0 6/45।

साधकतमं करणमित्यत्र तमग्रहणप्रयोजनविचारे कैय्यटश्रीशिवरामेन्द्रमतसमीक्षणम्

सुकान्त मान्ना*

उपोद्घातः- "साधकतमं करणम्" (पा-सू- १-४-४२) इति द्विपदात्मकं सूत्रम्। तत्र साधकतममिति प्रथमान्तं, करणमित्यपि प्रथमान्तं पदम्। कारके इत्यधिक्रियते। प्रथमार्थे सप्तम्याः विधानात् तस्य कारकमित्यर्थः। एवञ्च साधकतमं कारकं करणमिति वाक्यं निष्पन्नम्। तत्र करणमिति संज्ञादलम्। अवशिष्टं साधकतमं कारकमिति संज्ञिदलम्। एवञ्च साधकतमं कारकं करणं भवतीति वाक्यमागतम्। साधकतममित्यत्र साधकशब्दात् "अतिशायने तमबिष्ठनौ"(पा-सू-५-३-५५) इत्यनेन आतिशय्ये तमप्प्रत्ययः। साध्नोतीति साधकम् उपकारकमित्यर्थः। एवञ्च साधकतममित्यस्य अतिशयेन उपकारकम् अथवा प्रकृष्टम् उपकारकमित्यर्थः। एवञ्च प्रकृष्टम् उपकारकं कारकं करणं भवतीति सूत्रस्य सामान्यः अर्थः।

शोधप्रबन्धेऽस्मिन् भाष्योक्तस्य तमग्रहणप्रयोजनस्य विषये विचारः कृतः। तत्र तमग्रहणविषये प्रदीपस्य कर्त्रा कैय्यटेन महाभाष्यसिद्धान्तरत्नप्रकाशस्य कर्त्रा श्रीशिवरामेन्द्रेण च यथा उपस्थापितं तस्य समीक्षणमेव अस्य पत्रस्य मुख्यः विषयः। तयोः विरोधस्थलानि अत्र सरलतया उपस्थापितानि। तयोः कतरः युक्ततरः तदपि अत्र निर्दिष्टम्। स्वकीयम् मतमपि अत्र समीक्षारूपेण प्रदत्तम्।

तमग्रहणं[1] किमर्थमिति भाष्यार्थविचारः- महाभाष्यकारेण भगवता पतञ्चलिना अस्य सूत्रस्य आदावेव पदकृत्यविचारप्रसङ्गे प्रश्नः उत्थापितः यत् "तमग्रहणं किमर्थमि"ति। अस्य प्रश्नस्य सामान्यः अर्थः- सूत्रे यत् साधकतमम् इति पदं विद्यते तत्र तमप्प्रत्ययस्य किं प्रयोजनमिति। तमग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नस्य आशयप्रतिपादनं तु दुष्करमेव। यतो हि प्रश्नकर्तुः मनसि विद्यमानः प्रश्नस्य आशयः तेनैव ज्ञातुं शक्यः, नान्येन। अस्माभिः केवलं प्रश्नाशयः अनुमातुं शक्यते। अत्र यदि भाष्यकारः स्वयमेव प्रश्नोत्तरमाध्यमेन विषयम् उपस्थापयति तदा उत्तरत्र भाष्यपठनेन भाष्यस्य आशयः ज्ञातुं शक्यते। एतादृशप्रश्नः द्विधा भवितुम् अर्हति। अस्य किम् प्रयोजनमिति जिज्ञासामात्रम् अथवा एतेन विनापि सामान्यतः कार्यसिद्धौ किमस्य प्रदाने विशिष्टं प्रयोजनमिति। इदानीमस्य प्रश्नस्य विषये अन्येषामाचार्याणां मतस्य समीक्षां कुर्मः।

कैय्यटोक्ताशयार्थः- आचार्यः कैय्यटः अस्य प्रश्नस्य आशयम् इत्थं प्रतिपादयति यत- "कारकाधिकारात् साधकत्वे लब्धे पुनः साधकश्रुतिः प्रकर्षमवगमयतीति प्रश्नः" इति। अर्थात् प्रकृते साधकं करणमित्येव सूत्रमस्तु। ननु यदि साधकं करणम् इत्येव सूत्रं क्रियते तर्हि साधकमात्रस्य करणसंज्ञा स्यादिति चेन्न, यदि साधकमात्रस्य करणसंज्ञा इष्टा स्यात् तर्हि कारकाधिकारादेव सिद्ध्यति। कथमिति चेत्- प्रकृतसूत्रे कारके इत्यस्य अधिकारः आगच्छति। तस्य च कारकमित्यर्थः। कारकं नाम साधकम्। तेन कारकस्य अर्थात् साधकस्य करणसंज्ञा सिद्ध्यति। अतः कारकशब्दात् साधकम् इत्यर्थे लब्धे पुनः सूत्रे साधकग्रहणात् साधकं साधकम् अर्थात् प्रकृष्टं साधकमित्यर्थः आगतः। तेन प्रकृष्टसाधकस्य तमब्ग्रहणाभावेऽपि लाभात् तस्य च करणसंज्ञाविधानात् तमप्प्रत्ययस्य किम्प्रयोजनमिति "तमग्रहणं किमर्थमि"ति प्रश्नस्य आशयः।

रत्नप्रकाशोक्ताशयार्थः- रत्नप्रकाशकारः भाष्योक्तस्य प्रश्नस्य आशयम् इत्थं प्रतिपादयति यत्- "तमग्रहणं विनापि कारकाधिकारे पुनः साधकग्रहणसामर्थ्येन प्रकर्षलाभात् तमग्रहणं कारकाधिकारेऽस्मिन् न्यायसिद्धप्रकर्षानाश्रयणं ज्ञापयतीति प्रतिपादयितुं विचारमुपक्रमते" इति। अत्र रत्नप्रकाशकारेण आदौ तमग्रहणस्य यत् सिद्धान्तभूतं प्रयोजनम् तदुक्तं, ततः तमग्रहणं किमर्थमिति भाष्योक्तस्य प्रथमप्रश्नस्य आशयः उक्तः। तथाहि प्रकृतसूत्रे कारकाधिकारात् तमग्रहणं विनापि पूर्वोक्तप्रकारेण प्रकृष्टसाधकस्य लाभः भवति। तेन तमग्रहणं व्यर्थीभूय ज्ञापयति यत् अस्मिन् कारकाधिकारे न्यायसिद्धप्रकर्षस्य ग्रहणं न क्रियते। अयमेव सिद्धान्तः। किन्तु तं विषयं सर्वेषां बोधसौकर्यार्थं भाष्यकारः प्रश्नोत्तरमाध्यमेन क्रमेण उपस्थापयति। तस्मिन् उपस्थापनक्रमे आदौ प्रश्नः क्रियते तमग्रहणं किमर्थमिति। अर्थात् यदि केवलं साधकं करणम् इति सूत्रं क्रियते चेत् कः दोषः इति।

---

* शोधच्छात्रः, रामकृष्ण–मिशन्–विवेकानन्द–शैक्षणिक–शोधसंस्थानम्, वेलुड़–मठ, हावड़ा, पश्चिम बंगाल।

कैय्यटखण्डनं समीक्षणञ्च- रत्नप्रकाशकारेण कैय्यटस्य आशयः सर्वथा खण्डितः। तथाहि तेनोक्तम्- "नैतदस्ति प्रयोजनम्" इत्यादिना प्रष्ट्रैव दर्शितं सन्निहितं तदभिप्रायमपहाय व्यवहिताभिप्रायेण प्रश्नोपपादने मानप्रयोजनयोरभावात्"[2] इति। अर्थात् कैय्यटेन उक्तं तमग्रहणं विनापि कारकाधिकारात् प्रकर्षे लब्धे तमग्रहणस्य किं प्रयोजनमिति। तदेव "तमग्रहणं किमर्थमि"ति प्रश्नस्य आशयः। किन्तु "तमग्रहणं किमर्थमि"ति प्रश्नस्य आशयः सः नास्तीति रत्नप्रकाशकारः। किमर्थमिति चेत् यः प्रश्नकर्ता भाष्यकारः अथवा अन्यः तेनैव तमग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नस्य आशयः स्पष्टीकृतः। तथाहि भाष्यकारेण उत्तरभाष्येण तमग्रहणाभावे यदा सर्वेषामेव कारकाणां करणसंज्ञाप्रसक्तिरूपः दोषः उक्तः, तदा तस्य दोषस्य निवारणं कृतं "नैतदस्ति प्रयोजनमि"त्यादिना। तथाह्युक्तम्- "नैतदस्ति प्रयोजनम्। पूर्वास्तावत्संज्ञा अपवादत्वाद्बाधिका भविष्यन्ति। पराः परत्वादनवकाशत्वाच्च" इति। रत्नप्रकाशकारस्य मते अयमेव "तमग्रहणं किमर्थमि"ति प्रश्नस्य आशयः। अर्थात् सूत्रे यदि तमग्रहणं न क्रियते, केवलं साधकं करणं भवतीत्यर्थकं "साधकं करणम्" इत्येव सूत्रं क्रियते तदापि अभीष्टं सिद्ध्यति। तदा साधकमात्रस्य करणसंज्ञाप्रसक्तिः अपि नास्ति। किमर्थमिति चेत् अपादानादिसंज्ञाभिः करणसंज्ञायाः बाधात्। अतः तमग्रहणं विनापि साधकमात्रस्य करणसंज्ञायां दोषाभावात् किमर्थं तमग्रहणं क्रियते इत्येव प्रश्नाशयः प्रश्नकर्त्रा स्वयमेव प्रकाशितः सन्निहितश्च। किन्तु कैय्यटः इदम् आशयम् उल्लङ्घ्य सिद्धान्तभूतम् आशयं गृहीतवान्। किञ्च यदि तमग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नस्य "कारकाधिकारात् साधकत्वे लब्धे पुनः साधकश्रुतिः प्रकर्षमवगमयतीति प्रश्नः" इत्याशयः स्यात् तर्हि साधकं करणमितीयत्युच्यमाने प्रतिवचनभाष्यस्य आशयकथनकाले कैयट्टेन "तदाशयमविद्वन् प्रयोजनविशेषमात्रमनेन पृष्टमिति मन्यमानः आह" इत्येवंरूपेण अवतरणीयम् आसीत्। एवं प्रकारेण रत्नप्रकाशकारेण कैय्यटस्य आशयः खण्डितः।

रत्नप्रकाशकारेण अत्र युक्त्या कैय्यटस्य यत् खण्डनं कृतं तत्तु युक्तमेव। प्रकरणादेव प्रश्नाशयः निर्णेयः। उत्तरभाष्येण प्रश्नाशयप्रकटनात् तस्यैव ग्रहणमुचितम्।

भाष्योक्तस्य तमग्रहणस्य प्राथमिकप्रयोजनार्थः- भाष्ये तमग्रहणस्य प्रथमं प्रयोजनं यदुक्तं तदत्र उच्यते। तथाहि भाष्ये उक्तं- "साधकं करणम् इतीयत्युच्यमाने सर्वेषामेव कारकाणां करणसंज्ञा प्रसज्येत" इत्यादि। अर्थात् तमग्रहणाभावे साधकं करणम् इति सूत्रं स्यात्। तेन यत् साधकं तस्य एव करणसंज्ञा स्यात्। साधकं किञ्च कारकम् इत्यनयोः नास्ति अर्थभेदः। कारकस्यैव अपादानादिसंज्ञाविधानात् साधकस्यैव अपादानादिसंज्ञा विधीयते इति स्पष्टम्। एवञ्च यदि केवलं साधकमात्रस्य करणसंज्ञा क्रियते तर्हि अपादानादिनामपि साधकत्वात् तेषामपि करणसंज्ञा स्यात् इति दोषस्वरूपम्।

यदा सूत्रे तमग्रहणं क्रियते अर्थात् साधकतमं करणमिति सूत्रं क्रियते तदा दोषः नास्ति। कथमिति चेत् तदा न साधकमात्रस्य करणसंज्ञा अपि तु प्रकृष्टसाधकस्य करणसंज्ञा क्रियते। अपादानादिनाञ्च प्रकृष्टसाधकत्वाभावात् न करणसंज्ञाप्रसक्तिरिति न दोषः।

तमग्रहणस्य प्राथमिकप्रयोजनस्य कैय्यटाशयः- तमग्रहणस्य प्राथमिकप्रयोजनस्य व्याख्यावसरे कैय्यटेन उक्तं यत्- "तत्र वचनसामर्थ्यादेकसंज्ञाधिकाराच्च करणसंज्ञायाः संज्ञान्तराणां च विकल्पः स्याद्" इति। अस्यायम् आशयः- साधकं करणमिति सूत्रं क्रियते चेत् साधकमात्रस्य करणसंज्ञा स्यात्। सर्वेषाञ्च कारकाणां साधकत्वात् अपादानादिनामपि करणसंज्ञा स्यात्। तेन ध्रुवमपायेऽपादानम् इत्यादिवचनैः यत् अपादानादिसंज्ञाविधानं क्रियते तस्य वैयर्थ्यम् आपद्यते। किञ्च आकडारादेका संज्ञा इति एकसंज्ञाधिकारे कारकसूत्राणां पाठात् एकस्य एका एव संज्ञा इति ज्ञायते। किन्तु यदि करणम् इत्येका एव संज्ञा भवति सर्वेषां तर्हि एकसंज्ञाधिकारोऽपि व्यर्थः सञ्जायते। अतः ध्रुवमपायेऽपादानमित्यादिवचनसामर्थ्यात् एकसंज्ञाधिकाराच्च करणसंज्ञायाः संज्ञान्तरस्य च विकल्पः स्यादिति आशयः।

तत्र पुनः शङ्का क्रियते यत्- ननु असति विशेषाश्रयणे करणकारकसंज्ञाद्वयोपादानमनर्थकं स्यात्। तर्हि संज्ञाद्वयविधानसामर्थ्यात् करणसंज्ञा कञ्चिदेव विषयं परिहरतीति लभ्यते इति। अर्थात् साधकस्य एव करणसंज्ञा भवति। तेन साधकमेव करणमिति आगतम्। कारकमपि साधकमेव। तेन करणं किञ्च कारकं समानमिति आगतम्। अर्थात् करणस्य यः विषयः स एव कारकस्यापि। तर्हि करणसंज्ञा किञ्च कारकसंज्ञा इति संज्ञाद्वयविधानं किमर्थम्। यदि उच्यते करणसंज्ञाम् आश्रित्य कर्तृकरणयोस्तृतीया इति तृतीयाविधिः फलं तदपि न। तथाहि केवलं कारकसंज्ञामेव कुर्मः। तृतीयाविधायकञ्च शास्त्रं "कारके तृतीया" इत्येवं कुर्मः। तेन कारके तृतीया भविष्यति। एवञ्च संज्ञाद्वयविधानं व्यर्थमिति आगतम्। एवञ्च प्रयोजनाभावेऽपि संज्ञाद्वयविधानसामर्थ्यात् ज्ञायते यत्- करणसंज्ञा कञ्चिदेव विषयं परिहरतीति। अर्थात् क्वचित् करणसंज्ञा न भवतीति। अपादानादिनां करणभिन्नानां कारकाणां यः विषयः सः अनिष्टः, तद्भिन्नः इष्टः। क्वचित् करणसंज्ञा न भवतीति ज्ञातेऽपि इष्टे

स्थले भवति, अनिष्टे न भवतीति इति ज्ञानन्तु कथञ्चिदपि न जायते। अतः तमग्रहणाभावेऽपि वैयर्थ्यप्रतिपादनेन प्रकर्षस्य एव साधकस्य करणसंज्ञा इति प्रतिपादयितुं न शक्यते। अतः तमग्रहणं कर्तव्यमिति कैय्यटस्य आशयः।

रत्नप्रकाशदिशा प्राथमिकप्रयोजनभाष्यस्य तात्पर्यम् :- रत्नप्रकाशकारः भाष्योक्तस्य प्रथमप्रयोजनस्य व्याख्यानमित्थं करोति यत्- "कारकेषु यत् साधकं क्रियायामन्वितं वा यत् साधकं तत् करणसंज्ञमिति सूत्रार्थापत्त्या विनिगमकाभावेन सर्वेषां करणसंज्ञा स्यादिति भावः"। अर्थात् यदि तमग्रहणं न क्रियते किञ्च "साधकं करणम्" इत्येव सूत्रं क्रियते तदा कारके इत्यधिकारात् कारकेषु यत् यत् साधकं तस्य एव करणमिति संज्ञा स्यात्। क्रियान्वयि कारकं भवति। अतः अन्यथापि तस्य अर्थः उच्यते क्रियायाम् अन्वितं यत् साधकं तस्य करणसंज्ञा स्यादिति सूत्रार्थः जायते। तेन कः दोषः इति चेत् उच्यते "विनिगमकाभावेन सर्वेषां करणसंज्ञा स्यादिति"। अर्थात् सर्वेषामपि अपादानादिकारकाणां क्रियां प्रति साधकत्वात् करणसंज्ञानिवृत्तौ युक्त्यभावात् करणसंज्ञा स्यादिति आशयः।

एवं प्रकारेण भाष्यपङ्क्तिं व्याख्याय रत्नप्रकाशकारेण "तत्र वचनसामर्थ्यादेकसंज्ञाधिकाराच्च करणसंज्ञायाः संज्ञान्तराणां च विकल्पः स्यात्" इति कैय्यटवचनं खण्डयति "प्रकरणादिपर्यालोचनं विनैव" इत्यादिवचनेन। रत्नप्रकाशकारेण प्रायः सर्वत्र कैय्यटस्य अयं दोषः प्रदर्शितः यत् कैय्यटः प्रकरणादिपर्यालोचनं विनैव भाष्याशयं प्रतिपादयति। प्रकृते तादृशमेव दोषम् उद्भावयति रत्नप्रकाशकारः। यदि प्रकरणं पर्यालोचयामः तर्हि इदं स्पष्टं भवति यत् अत्र विकल्पप्राप्तिरूपः दोषः नोक्तः अपि तु सर्वेषां करणमित्येका एव संज्ञा स्यादिति दोषः।

समीक्षा :- "साधकं करणमितीयत्युच्यमाने" इति भाष्येण यः दोषः उद्भावितः तस्य कैय्यटदिशा स्वरूपः भिन्नः, रत्नप्रकाशदिशा स्वरूपः भिन्नः। कैय्यटस्य मते अपादानादिसंज्ञाकरणसंज्ञयोः विकल्पः स्यात् इति दोषस्वरूपम्। रत्नप्रकाशकारस्य मते सर्वेषां केवलं करणमिति एकैव संज्ञा स्यादिति दोषस्वरूपम्। अनयोः कतरः युक्तः पक्षः सः प्रकृते विचार्यते।

भाष्यकारेण सामान्यतया उक्तं यत् सर्वेषामेव कारकाणां करणसंज्ञा स्यात् इति। एतेन कथम् इदं स्पष्टं भवति यत् सर्वेषां करणसंज्ञा एव स्यात् अथवा अपादानादिसंज्ञाभिः सह विकल्पेन करणसंज्ञापि स्यात् इति प्रश्नः जायते। जायते च प्रश्नान्तरं कथमत्र न संज्ञाद्वयसमुच्चयं शङ्कितमिति। अत्र मानं प्रयोजनञ्च विचारणीयम्।

प्रयोजनबाधकभाष्यार्थः- तमग्रहणाभावे सर्वेषां कारकाणां करणसंज्ञाप्राप्तिरूपः यो दोषः पूर्वं प्रतिपादितः वस्तुतः सः नास्ति। तदेव प्रतिपादयति भाष्यकारः- "नैतदस्ति प्रयोजनम्। पूर्वास्तावत्संज्ञा अपवादत्वाद्बाधिका भविष्यन्ति। पराः परत्वादनवकाशत्वाच्च" इति। अर्थात् पाणिनिना अपादानं, सम्प्रदानं, करणम्, अधिकरणं, कर्म, कर्ता इत्येवं क्रमेण संज्ञाः निर्दिष्टाः। तत्र अपादानसंज्ञा किञ्च सम्प्रदानसंज्ञा करणसंज्ञायाः अपवादभूता भविष्यति। यतो हि उत्सर्गतः साधकस्य करणसंज्ञायां प्राप्तायां विशेषतः अपाये ध्रुवं यत् साधकं तस्य अपादानसंज्ञाविधानात् तस्य अपवादत्वं भविष्यति। एवं परं याः अधिकरणादायः संज्ञाः ताः परत्वात् अनवकाशत्वाच्च करणसंज्ञायाः बाधिकाः भविष्यन्ति इति भाष्यस्य सरलार्थः।

कैय्यटोक्तः आशयः- पराः अधिकरणादयः संज्ञाः परत्वाद् अनवकाशत्वाच्च करणस्य बाधकाः इत्युक्तम्। अत्र बाधकत्वे हेतुद्वयम् उपन्यस्तम्। तत्र किमर्थं हेतुद्वयम् उपन्यस्तम् इत्यत्र कैय्यटः कथयति- "विषयभेदापेक्षो हेतुद्वयोपन्यासः। सावकाशत्वे सति परत्वं हेतुः, अन्यत्र निरवकाशत्वम्" इति।

अस्य इदं तात्पर्यम्- परत्वं हेतुः तदा भवति यदा उभयोः सावकाशत्वमस्ति। अतः यत्र सावकाशत्वं तत्र परत्वं हेतुः भवति, यत्र निरवकाशत्वं तत्र परत्वं हेतुः न भवति। एवञ्च यत्र परत्वं हेतुः तत्र अनवकाशत्वं हेतुः न भवति। यत्र च अनवकाशत्वं हेतुः तत्र परत्वं हेतुः न भवति। तर्हि भाष्यकारेण हेतुद्वयं यत् उपन्यस्तं तस्य आशयः कः इति चेत् विषयभेदापेक्षः। अर्थात् भिन्नं विषयं प्रति परत्वं हेतुः, भिन्नं विषयं प्रति निरवकाशत्वमिति।

रत्नप्रकाशाशयः कैय्यटखण्डनञ्च- रत्नप्रकाशकारेण कैय्यटस्य मतं खण्डितम्। काश्चन पराः संज्ञाः सावकाशाः सन्ति, काश्चन निरवकाशाः इत्याशयेन भाष्यकारेण हेतुद्वयं न उपन्यस्तम्। यतो हि सावकाशत्वं निरवकाशत्वं वा परत्वस्य विघातकं न भवति। अर्थात् पराः पराः एव भवन्ति। तर्हि किमर्थं भाष्यकारेण हेतुद्वयम् उपन्यस्तमिति चेत् "कृत्वाचिन्तया" परत्वं हेतुत्वेन उपात्तम्। अर्थात् वस्तुतः प्रकृते अनवकाशत्वात् इत्येव हेतुः युक्तः। तर्हि परत्वं हेतुः किमर्थं प्रदत्तमिति चेत् सावकाशत्वम् अङ्गीकृत्य। अर्थात् यदि सावकाशत्वम् अस्तीति अङ्गीक्रियते तर्हि अनवकाशत्वं हेतुः न भवतीति तत्र परत्वं हेतुः। वस्तुतः पराः संज्ञाः सावकाशाः न सन्ति, तथापि यदि अङ्गीक्रियते सावकाशत्वं तर्हि तत्र समाधानम् इदम्।

किञ्च कैय्यटेन यदुक्तं- विषयभेदम् आश्रित्य अत्र भाष्यकारेण हेतुद्वयम् उपन्यस्तं तत् रत्नप्रकाशकारस्य मते अयुक्तम्। कथं तत् अयुक्तमित्युच्यते इति चेत् तादृशविषभेदः एव न सम्भवति। अर्थात् यदा साधकं करणमित्येव सूत्रं क्रियते तदा सर्वेषां साधकानां करणत्वमेव भवति। तेन करणत्वभिन्नस्य विषयस्य अलाभात् विषयभेदापेक्षः इत्यादि कैय्यटवचनं न युज्यते।

यदि एवमुच्यते यत् कारकस्य करणसंज्ञायाम् एव प्राप्तायां कारके विषयभेदः न लभ्यते चेदपि अकारके करणसंज्ञायाः अप्रसक्त्या तत्र काचित् संज्ञा प्राप्ता चेत् तत्र विषयभेदः लभ्येत इति चेन्न, यतो हि कारकभिन्नस्य न कापि संज्ञा विहिता अस्ति, यत्र सावकाशत्वं स्यात्। अतः कैय्यटवचनम् अयुक्तमिति रत्नप्रकाशस्य आशयः।

समीक्षा- रत्नप्रकाशस्य यन्मतं तत् नागेशेनापि गृहीतम्। अतः नागेशेन उक्तम्- "सावकाशत्वे इत्यभ्युपगम्यवादेन" इति। अर्थात् यदि सावकाशत्वं स्यात् तदा परत्वं हेतुः भवतीति। यतो हि तमपः अभावे तत्र करणभिन्ना संज्ञा एव न भवतीति।

अत्र यद्यपि रत्नप्रकाशकारेण प्रदीपस्य खण्डनं कृतं तथापि कैय्यटरत्नप्रकाशयोः अत्र तथा भेदः नास्तीति भावयामि। तथाहि कैय्यटेनापि परत्वरूपस्य हेतोः अङ्गीकारः तदैव कृतः यदा सावकाशत्वम् अङ्गीक्रियते। अतः एव तेन सावकाशत्वे सतीति सतिसप्तम्याः प्रयोगः कृतः। वस्तुतः तत्र विषयभेदाभावेऽपि विषयभेदम् अङ्गीकृत्य भाष्यकारेण हेतुद्वयम् उपन्यस्तमित्येव कैय्यटस्य आशयः।

अत्र कैय्यटस्य मतम् अङ्गीक्रियताम् अथवा रत्नप्रकाशकारस्य तत्र वस्तुतः परत्वस्य हेतुत्वं न सम्भवतीत्येव सिद्ध्यति। तेन वस्तुतः भाष्यवचनस्य अयुक्तत्वमिति सिध्यति। अतः नागेशः तस्य अन्यथैव व्याख्यानं कृतवान्। तथाहि नागेशस्य मते परशब्दः प्रकृते उत्कृष्टवाचकः। परत्वम् अनवकाशत्वे विशेषणम्। अर्थात् अनवकाशत्वस्य उत्कृष्टत्वात् इत्यर्थः। एवञ्च अनवकाशस्य उत्कृष्टत्वात् पराः याः अधिकरणादयः संज्ञाः ताः करणसंज्ञायाः बाधिकाः भवन्तीति आशयः। नागेशस्य व्याख्यानेन प्रकृतं भाष्यमितोऽपि समृद्धं जामम्।

प्रयोजनान्तरभाष्यार्थः- तमग्रहणाभावे साधकं करणमित्येव सूत्रं क्रियते चेत् "धनुषा विध्यति" इत्यत्र दोषः आगच्छति इति। अत्र कीदृशः दोषः इति चेत्- धनुषः अपाययुक्तत्वात् अपादानसंज्ञा प्राप्नोति, साधकत्वाच्च करणसंज्ञा प्राप्नोति। इष्टा तु करणसंज्ञा किन्तु अपादानसंज्ञा प्राप्नोतीत्येव दोषस्वरूपम्। यदा तमग्रहणं क्रियते तदा दोषः न भवति।

कैय्यटाशयः- कैय्यटः भाष्यस्य आशयं व्याख्यानेन इतोऽपि स्पष्टीकरोति। तथाहि तमपाभावे साधकमात्रस्य करणत्वात् प्रकृते धनुषः करणसंज्ञा प्राप्नोति। किञ्च धनुषः वाणः विमुच्य विध्यतीति अपाययुक्तत्वाच्च धनुषः अपादानसंज्ञापि प्राप्नोति। तत्र अपादानं किञ्च करणम् इत्यनयोः मध्ये अपादानं निरवकाशं, करणं तु "काष्ठैः पचति" इत्यादौ सावकाशम्। अपादानसंज्ञायाः निरवकाशत्वात् करणसंज्ञां बाधित्वा अपादनसंज्ञा एव स्यात्। इष्टन्तु करणसंज्ञा। अतः तमब्ग्रहणं कर्तव्यमिति भाष्याशयः। यदा तमग्रहणं क्रियते तदा अयं दोषो न भवति। यतो हि तदा उभयोः विषयः भिन्नः भिन्नः जायते। एकस्य साधकम्, अपरस्य साधकतममिति। तत्र परत्वात् करणसंज्ञा सिध्यति।

रत्नप्रकाशायः- रत्नप्रकाशस्य अत्र विशिष्टं मतं प्राप्यते। तेन आदौ भाष्यस्य सर्वाभिमतं व्याख्यानं कृतम्। ततः धनुषा विध्यतीति वाक्यस्य वास्तविकम् आशयं प्रतिपादितवान्। तथाहि धनुषा विध्यति इत्यत्र यद्यपि शरस्य करणत्वं, किन्तु धनुषः प्रशंसासूचनाय तस्य करणत्वं प्रकृते विवक्ष्यते। यथा स्थाली पचतीत्यत्र स्थाल्याः प्रशंसासूचनाय कर्तृत्वम्। यद्यपि धनुषः शरविश्लेषाश्रयत्वात् अपादानत्वमस्ति किन्तु तदत्र अविवक्षितम्। अत्र सतः अपादानत्वस्य अविवक्षा क्रियते यथा अनुदरा कन्या इति। एवञ्च अपादानत्वस्य अविवक्षणात् करणत्वस्य विवक्षणात् प्रकृते करणत्वम् एव प्राप्नोति, अपादानस्य प्रसक्तिरेव नास्ति। यथा वृक्षस्य पर्णं पतति इत्यत्र वृक्षस्य सत्यपि अपादानत्वे अविवक्षणात् अपादानं न भवति तथैव।

समीक्षा- रत्नप्रकाशस्य मतं यदि वयं सूक्ष्मतया पर्यालोचयामः तर्हि तत्र इदं सिद्ध्यति यत्- प्रकर्षार्थस्य अभावे धनुषा विध्यति इत्यत्र यः दोषः भाष्यकारेण प्रदर्शितः वस्तुतः सोऽपि दोषः न। यतो हि तत्र संज्ञाद्वयप्रसक्तिरेव नास्ति। अतः इह तर्हि धनुषा विध्यति इत्यादिभाष्यस्य किञ्चित् सूक्ष्मेक्षिकतया आशयः विचारणीयः इति चिन्तयामि। यतो हि रत्नप्रकाशकारोक्तस्य मतस्य युक्तत्वात्, तस्मिन् अङ्गीकृते उत्तरभाष्यस्य सङ्गतिः न भवति। अतः एव भाष्यसङ्गतिं स्थापयितुं रत्नप्रकाशकारः "अभ्युपगम्यवादेन" इत्युक्तम्। अर्थात् यद्यपि धनुषा विध्यति इत्यत्र दोषो नास्ति तथापि यदि धनुषः अपादानसंज्ञाप्रसक्तिम् अङ्गीकृत्य तत्र तमपः अभावेऽपि कथं प्रकर्षार्थः सिध्यति तत् लौकिकदृष्टान्तेन प्रतिपादयतीति।

आक्षेपसाधकभाष्यार्थः- अत्र भाष्यकारः भगवान् पतञ्जलिः लौकिकदृष्टान्तेन तमग्रहणाभावेऽपि कथं साधकशब्दात् प्रकृष्टस्य साधकस्य बोधः जायते इति बोधयति "एवं तर्हि लोकत एतत्सिद्धमि"त्यादिना। तथाहि लोके अभिरूपाय उदकम् आनेयम्, अभिरूपाय कन्या देया इत्यादिषु उदाहरणेषु तमग्रहणाभावेऽपि यथा अभिरूपशब्दः अभिरूपतमाय इत्येव अर्थं बोधयति तथैव सूत्रे तमपाभावेऽपि साधकशब्दः साधकतमार्थमेव बोधयिष्यति। तेन साधकतमस्यैव करणसंज्ञा भविष्यति अन्येषाञ्च कारकाणां करणसंज्ञाप्राप्तिः न भविष्यति।

कैय्यटोक्तः आशयः- कैय्यटः भाष्योक्तस्य अभिरूपाय उदकम् आनेयम् इति दृष्टान्तस्य आशयं कथयति कन्यादानार्थमिति। अर्थात् उदकानयनस्य प्रयोजनं कन्यादानमिति।

रत्नप्रकाशकाराशयः- "अभिरूपायोदकमानेयम्" इति वाक्यस्य आशयम् अन्यथैव प्रतिपादयति रत्नप्रकाशकारः। तेषां मते पादप्रक्षालनादिना अभिरूपं प्रसादयितुम् उदकम् आनेयमिति वाक्यार्थः। अर्थात् अभिरूपाय इत्यत्र "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" इति सूत्रेण चतुर्थी। तत्र प्रसादयितुमिति अप्रयुक्तस्य तुमुन्नन्तस्य कर्म भवति अभिरूपः। अतः तथार्थः इति आशयः।

रत्नप्रकाशकारेण अत्र कैय्यटमतं खण्डितम्। तथाहि तेन कन्यादानार्थमिति पदस्य अध्याहारेण अभिरूपायोदकमानेयम् इति वाक्यस्य व्याख्यानं कृतम्। रत्नप्रकाशकारस्तु अध्याहारं विनैव वाक्यस्य व्याख्यानं कृतवान्। यदि अध्याहारं विनैव व्याख्यानं सम्भवति तर्हि तत्र अध्याहारः न कर्तव्यः।

समीक्षा- अत्र यदि वयं पश्यामः कैय्यटेन अध्याहारेण व्याख्यानं कृतं, रत्नप्रकाशकारेण अध्याहारं विनैव वाक्यस्य व्याख्यानं कृतम् इत्येव अनयोः भेदः। वस्तुतः अनयोः अत्र महान् भेदः नास्ति। तथाहि उदकानयने अभिरूपतायाः कापि विशिष्टा प्रयोजकता नास्ति, अतः तत्र उदकादाने प्रयोजकतायाः निर्देशं करोति कन्यादानार्थमिति। अर्थात् कन्यादानं भविष्यति। तत्र यः अभिरूपतमः तस्मै उदकम् आनेयमिति।

रत्नप्रकाशकारेण तु प्रसादनम् उदकादाने प्रयोजकमित्युक्तम्। किन्तु प्रसादनं किमर्थमिति प्रश्ने कृते तदुत्तरत्वेन कन्यादानादिकमेव लभ्यते। तदाशयेनैव कैय्यटेन उक्तं स्यात्। वाक्यस्य प्राथमिकव्याख्यानत्वेन कैय्यटेन कन्यादानार्थमित्युक्तम् इत्येव अनयोः भेदः।

किञ्च अभिरूपायोदकमानेयम्, अभिरूपाय कन्या देया इत्यनयोः वाक्ययोः सम्बन्धकल्पनमपि अनुचितमिति मे आशयः। उभयमपि भिन्नं वाक्यम्। तयोः सम्बन्धः अस्त्येव इत्यत्र किमपि नियामकं नास्ति। अतः कन्यादानार्थमेव उदकानयनमित्यत्र किमपि मानं नास्तीति मे आशयः। अतः कैय्यटेन कन्यादानाद्यर्थमिति आदिशब्दस्य ग्रहणं कर्तव्यमासीत् इति भावयामि। उदकानयने प्रसादनस्यैव प्राथमिकप्रयोजनत्वात् तत्प्रयोजनस्य अनेकत्वात् इदमित्थमिति वक्तुमशक्यत्वाच्च।

"न चानभिरूप" इति भाष्याशयः- किमर्थम् अभिरूपाय उदकम् आनेयम् इत्युक्ते अनभिरूपे प्रवृत्तिः न जायते, तत्र कारणं कथयति कैय्यटः- दृष्टादृष्टप्रयोजनत्वात्कन्यादानस्य इति। अर्थात् अभिरूपाय कन्यादानस्य लोके कन्यासुखसन्तानादिकं दृष्टं प्रयोजनं, परलोकप्राप्त्यादिकञ्च अदृष्टं प्रयोजनं विद्यते। अतः अनभिरूपाय प्रवृत्तिः न जायते इति।

रत्नप्रकाशकारमतमपि कैय्यटस्य आनुकूल्यं भजते। तेषां मते यदि अभिरूपस्य एव पादप्रक्षालनं क्रियते अथवा अभिरूपाय एव कन्यादानं क्रियते, तदैव श्रेयः जायते। अतः अभिरूपसम्बन्धिनः एव श्रेयःसाधनत्वात् अनभिरूपे प्रवृत्तिः न जायते।

समीक्षा- कैय्यटस्य मते अभिरूपायोदकमानेयम्, अभिरूपाय कन्या देया इत्युभयोरपि वाक्ययोः कन्यादानसम्बन्ध एव। अतः तेन साक्षात् "दृष्टादृष्टप्रयोजनत्वात्कन्यादानस्य" इत्युक्तम्। रत्नप्रकाशकारस्य मते तु द्वितीयस्य कन्यादानसम्बन्धित्वेऽपि प्रथमस्य वाक्यस्य तत्सम्बन्धित्वे आग्रहाभावात् श्रेयःसाधनत्वरूपं साधारणं प्रयोजनमुक्तमिति भावयामि।

"न चानभिरूपे" इति वाक्यं भाष्यकारेण किमर्थम् उक्तमिति शङ्का जायेत। यतो हि अभिरूपाय इति कथनात् अभिरूपे एव प्रवृत्तिः जायते, अनभिरूपे न इति अभिरूपशब्दस्य साक्षात् ग्रहणेनैव ज्ञायते। तर्हि किमर्थमिदमुच्यते न च अनभिरूपे प्रवृत्तिरस्तीति।

अस्य इत्थं समाधानं भावयामि यत्- अभिरूपानभिरूपव्यवहारः अपेक्षिकः। एकस्य अपेक्षयाः अन्यः अभिरूपः। सः एव अन्यस्यापेक्षया अनभिरूपः। अतः अयं व्यवहारः आपेक्षिकः। न कोऽपि अनभिरूपः, तथापि आपेक्षिकाः अनभिरूपाः भवन्ति। अतः न चानभिरूपे इत्यत्र अभिरूपतमापेक्षया यः अनभिरूपः, तत्र प्रवृत्तिः न भवतीति आशयः इति भावयामि।

ज्ञापकभाष्यार्थविचारः- तमग्रहणाभावेऽपि दोषाभावात् तमग्रहणं निष्प्रयोजनमिति जातम्। तच्च व्यर्थं सत् ज्ञापयति- कारकसंज्ञायां तरतमयोगो न भवतीति। अस्य तात्पर्यन्तु इदं यत्- कारकसंज्ञायां शब्दसामर्थात् तरबर्थस्य तमार्थस्य अर्थात् प्रकर्षस्य बोधः न भवति। अर्थात् यदि प्रकर्षार्थः बोधनीयः तर्हि तमादीनां प्रकर्षबोधकानां प्रयोगः कर्तव्यः। तेषां प्रयोगं विना शब्दसामर्थ्यात् प्रकर्षार्थस्य ग्रहणं न कर्तव्यम।

ज्ञापकभाष्ये कैय्यटादीनामाशयः- भाष्यकारेण यत् तरतमयोगो न भवतीत्युक्तं तत्र तरतमशब्दौ वस्तुतः तरतमप्रत्यययोः अनुकरणम्। अनुकरणञ्च अनुकार्यं बोधयतीति तस्मात् तरतमप्रत्यययोः बोधः भवति। ततः तयोः अर्थस्य प्रकर्षस्य प्रतीतिः लक्षणया जायते। तेन तरतमयोगो न भवतीति वाक्यस्य प्रकर्षयोगो न भवतीति अर्थः। तस्य तात्पर्यमुक्तं कैय्यटेन- "प्रकर्षप्रत्ययग्रहणमन्तरेण अस्मिन् प्रकरणे सामर्थ्यगम्यः प्रकर्षः नाश्रीयते" इति।

समीक्षा- अत्र कैय्यटोक्ते तात्पर्यवाक्ये सामर्थ्यगम्यः इति पदं न देयमिति भावयामि। प्रकर्षप्रत्ययग्रहणमन्तरेण अस्मिन् प्रकरणे प्रकर्षः नाश्रीयते इत्येव पर्याप्तम् उचितञ्च। तावता एव यदि प्रकर्षार्थः आश्रयणीयः तर्हि प्रकर्षार्थकप्रत्ययग्रहणेनैव आश्रयणीय इति बुध्यते। तद्भिन्नेन अन्येन केनापि उपायेन प्रकर्षः नाश्रयणीयः इति स्वयं सिद्धो भवति। तेन शब्दसामर्थ्यगम्यरूपस्य उपायस्य तद्भिन्नत्वात् तस्य आश्रयणं न भवतीति ज्ञायते।

अपि च वाक्ये सामर्थ्यगम्यः इति पदस्य ग्रहणे कदाचित् कस्यापि अस्मिन् प्रकरणे सामर्थ्यगम्यः प्रकर्षोऽपि प्रकर्षप्रत्ययग्रहणैव आश्रयणीयः इति अनिष्टार्थस्य बोधशङ्काऽपि जायेत। अतः सामर्थ्यगम्यः इति पदं निष्प्रयोजनमिति बालानां भ्रान्तिकारकञ्चेत्यहं चिन्तयामि।

तमग्रहणप्रयोजनविचारः- किमस्य ज्ञापने फलमिति चेद् यत्र प्रकृष्टः अपायः नास्ति तत्रापि अपादानसंज्ञा सिद्ध्यति। यथा "सांकाश्यकेभ्यः पाटलिपुत्रकाः अभिरूपतराः" इत्यत्र सांकाश्यकाणाम् प्रकृष्टस्य अपायस्य अभावात् अपादानसंज्ञा न स्यात्। कथमिति चेत् "ध्रुवमपाये अपादानम"त्यत्र बहुविधेषु अपायेषु सत्स्वपि अपायशब्दात् प्रकृष्टस्य एव अपायस्य ग्रहणं भविष्यति। तेन वृक्षात् पर्णं पतति इत्यादौ एव अपादानसंज्ञा स्यात्। सांकाश्यकेभ्यः इत्यत्र बुद्धिस्थापायसत्त्वात् प्रकृष्टापायाभावात् अत्र अपादानसंज्ञा न स्यात्। किन्तु "साधाकतमं करणम्" इत्यत्र तमपः ग्रहणात् कारकसंज्ञायां शब्दसामर्थ्यगम्यस्य प्रकर्षस्य अनाश्रयणात् अपायशब्देन सर्वविधस्य अपायस्य ग्रहणात् सांकाश्यकाणामपि अपादानसंज्ञा भविष्यति।

एवम् आधारोऽधिकरणमित्यत्र प्रकृष्टस्य अर्थात् सर्वावयवव्याप्तस्य आधारस्य एव अधिकरणसंज्ञा स्यात्। तेन तिलेषु तैलम् इत्यादौ एव अधिकरणसंज्ञा स्यात् न तु गंगायां गावः इत्यादौ गङ्गायाः। तस्य गौणाधारत्वात्। किन्तु यदा कारकसंज्ञायां तरतमयोगो न भवतीत्युच्यते तदा सर्वविधस्य आधारस्य अधिकरणसंज्ञा भविष्यतीति गङ्गायाः अपि अधिकरणत्वं सिद्धम्।

उपसंहारः- अस्मिन् विषये आचार्याणां तथा मतविरोधाभावात् प्रबन्धविस्तारात् विरतम्। एवं संक्षेपेण यथामति सर्वेषाम् आचार्याणां मतं पर्यालोच्य "साधकतमं करणम्" इत्यत्र तमग्रहणस्य प्रयोजनविचारः कृतः। तत्र सत्सु बहुषु सिद्धान्तेषु युक्ततरस्य उल्लेखोऽपि अत्र कृत। तत्र तत्र यथामति स्वकीयः आशयोऽपि उपस्थापितः, यस्य युक्तायुक्तत्वे विद्वांसः प्रमाणमिति शिवम्।

सन्दर्भ-सूची :-

1. तमप्ग्रहणमिति पाठान्तरमपि विद्यते।
2. महाभाष्यप्रदीपव्याख्यानानि। चतुर्थभागः। रत्नप्रकाशः, पृष्ठम्- ३०५

परिशीलिताः ग्रन्थाः

1. *महाभाष्यप्रदीपव्याख्यानानि(प्रथमः भागः)*। १९९७। एम्- एस्- नरसिंहाचार्यः(सम्पा०)। पण्डिचेरी : फ्रेन्च इन्स्टिटिउट्।
2. *महाभाष्यप्रदीपव्याख्यानानि(चतुर्थः भागः)*। १९९७। एम्- एस्- नरसिंहाचार्यः(सम्पा०)। पण्डिचेरी : फ्रेन्च इन्स्टिटिउट्। पृष्ठम्-३०४
3. पतञ्जलिः। २०१४। *व्याकरणमहाभाष्यम् (द्वितीयभागः)*। जोशी, भार्गवशास्त्री(सम्पा०)। दिल्ली : चौखम्बा-संस्कृत-प्रतिष्ठानम्। पृष्ठम्- २०५
4. भट्टोजिदीक्षितः। २०१०। *वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (बालमनोरमा-तत्त्वबोधिनीसहिता)*। गिरिधरशर्मा(सम्पा०)। दिल्ली : मोतिलाल बनारसीदास। पृष्ठम्-६३३
5. नागेशभट्टः। २००२। *लघुशब्देन्दुशेखरः (कारकप्रकरणम्)*। तेजःपालशर्मा(सम्पा०)। वाराणसी : सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः। पृष्ठम्- १६४
6. नागेशभट्टः। २००७। *लघुशब्देन्दुशेखरः (कारकप्रकरणम्)*। सत्यनारायणमूर्तिः(व्या०)। तिरुपतिः : राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्। पृष्ठम्-१२८
7. भट्टोजिदीक्षितः। १९३३। *प्रौढमनोरमा*। चन्द्रशेखरमिश्रः(सम्पा०)। बनारस-सिटी : संस्कृत पुस्तक भाण्डार। पृष्ठम्- ५१४
8. कौण्डभट्टः। २०१३। *वैयाकरणभूषणसारः*। द्विवेदी चन्द्रिकाप्रसादः(सम्पा०)। दिल्ली : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान। पृष्ठम्- १४७
9. पाण्डेयः, गोपालदत्तः(सम्पा०)। *संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास*। २००१। लखनउ उत्तरप्रदेश : संस्कृत संस्थान।

Cultural Transformation and Covid

Dr. Sushma Mishra*

Introduction :- Culture is an integral part of a society. Every society has its unique culture and can be differentiated by other societies on that basis. Culture represents the beliefs, practices and artifacts of a group and refers to the way, we understand ourselves both as an individual and as a member of society, and includes stories, religion, media, rituals and even language itself. India has diversity in unity. Indian culture and tradition are an example of one of the oldest culture in the world. Many religion, caste, creed and income groups, people with different faith, and rituals live here together. *Marriage and Family in India* book by *K M Kapadia* describes that Hindu marriage is a valid relation formed between male and female, and the purpose is to fulfill the religious and spiritual needs of society. *Gandhi ji* was in favor of *gram swarajya* and see village as a self-sufficient entity, but in the light of development and globalization, it became dependent on urban set up for employment and industrial productions.

Key Words : Digital, online, behavior, culture, psychology.

Uncertainty brings opportunity and in the present time the stark uncertainty looming large Infront of us is covid-19. Covid stands for corona virus disease. Starting from a lab in Wuhan in November 2019 it spread across the globe to become the biggest challenge to humanity. The challenges brought in covid pandemic has an impact on our culture in a big way. Our attitude towards society and social norms are altered. Our routine behavior and psychology itself is changed due to pandemic. The behavioral and psychological challenges of covid has deeply affected our culture. It made on impact on every sphere of our life and living.

Around the world, media has played a very significant role in transforming societies. Print media and electronic media are medium to spread change to persons in personal. It has an impactful reach to people. Real interaction is one to one interaction among individual, group, offices, schools, players etc. In these interactions we face each other, interact and behave. Reality is unprogrammed and unrecorded. It is experienced with our five senses, while being in proximity. The virtual may be very close to reality, even the experiences can be vivid but the concept of physical proximity is missing. Our behavior in every situation varies. We behave in a different manner in family setup, in social setup and in online environments.[1]

Behavioral changes :- The pandemic has brought the family together, children with online classes were fulltime in home with their parents. Some children, along with the adults were unable to take the stress produced by the uncertainty of Covid-19 infection. The loss of lives and job, due to Covid-19, has also induced stress. All this is reflecting upon in their behavior. The parents and child interaction often becomes negative due to the stress accumulated and growing uncertainties. Children throw temper tantrums, ask for illegitimate demands and do not want to be interfered all the time, by their elders. Late hour online activities have further curtailed sleep and had brought behavioral changes. Excess monitoring of children during pandemic often resulted in verbal conflict, physical violence on children and similar other negative interactions. Now a days behavioral issues of all age groups is big challenge to mitigate. In a social setup of school and workplace an individual is usually well behaved. Some people are developing addiction and

*** Assistant professor, Department of DAV PG College, B.H.U. Varanasi.**

constant dependence on screen devices affecting their interpersonal relations. All this affects their behavior and makes them stubborn, shy, withdrawn, depressed and with other alterations.[2]

Psychological changes :- The commonest psychological effects of covid-19 are anxiety, worry and insecurity. This anxiety could be arising from surroundings. The news channel and media were filled with negative outcomes of the disease as well as future negative outcomes. This constant bombardment of negativity is taking its toll on the psyche of young children. They are also affected by their parent's concern about the disease. The loss of job and lives has also generated immense psychological pressure. Also, the excessive exposure to digital devices has developed anxiety. Some children are going through post-traumatic stress disorder (PTSD) due to death of their near and dear ones. Deprivation, lack of socialization, over digital device use, verbal spat with parents, may be the reasons for depression in children. Some people are showing obsessive-compulsive behavior for the use of mobile/digital devices as well as the use of hand sanitizer and hand wash. Sleep disorder is also commonly encountered due to day time sleeping or late-night usage of devices. Stress and anxiety may also be the reason for insomnia. Psychiatrists are coming across patients with digital device dependence disorder as well as obsessive compulsive disorder. Suicides are result of depression and pressure. Number of suicides had increased. Eating disorder is also commonly prevalent among children. Long term impact of stress and other disorders may lead to overall personality disorder in these children. A new generation of Covid-19 affected is coming up which may pose future challenge to the society.[3]

Social effects :- The development of children is also getting affected. The lockdown and social distancing being advocated during covid to prevent infection is taking its toll. The students have increased number of virtual friends but hardly any real friend. This pandemic induced isolation is affecting social skills of children to the level of turning them into rude, selfish and self-centered. The ethical and morality issues are lacking in children because they are experiencing a whole new atmasphere where they can produce false arguments easily and teachers have to accept it, because there is no other way. Challenges have increased manifolds for wards of the parents who lost their jobs during pandemic. Many children were forced to discontinue the education as parents could not provide digital device or did not have enough money to pay school fee.[3]

Art, music, cooking and dance :- Corona lockdown and restrictions and the free time which everyone got at home, motivated many to learn new skills. Some of the commonly learned skills were related to learning and practicing singing. Some started online painting, drawing, craft, music, dress designing, jewelry designing and other art forms. Digital media accompanied them in accomplishing their learning's. The leisure time in covid enhanced and upgraded creativity. Many new books and literature were written, social media and specially YouTube got flooded with creative and self-help videos. This online information and learning material further helped others to hone their skills.[4]

Consumer culture :- The growing consumerism transformed into online purchase of products. Fast digitization has impact on economy. Online shopping has changed the whole market economy and with restriction on movement, online shopping became more prominent with vendors supplying the items at doorstep. Online shopping has changed the fortune of small street vendors, labors, and daily wage workers of unorganized sectors. Either they migrated to their neighboring places or got stranded in inhumane condition, starved, dependent for daily food help at longer duration. Consumer goods specially the electronic items were in high demand. Industry like Tourism were halted for some time, but people thronged out as soon as they got an opportunity.[5]

Belief and Rituals :- Prayers and worships are matter of belief, blended with rituals. The prayers at temples, mosques were stopped, festivals have passed without any celebrations. Covid has impact on life as well as on death. Due to lockdown and Covid protocol the Prayers and worship at temples, mosques were stopped, festivals have passed without any celebrations. Sixteen samskaras are prevalent in Hindu mythology. The death ceremony is one of them but was restricted. In many cases one, two or more members of a family died due to Covid and even the dead bodies were not given to family members, by hospitals for last rituals. The negative consequences of covid has changed the thinking to save more for future. Covid times changed the way we marry. Our society was already moving towards live-in relations. Many families have experienced marital spat and discord among spouses. People had enough time during lockdown to interact; some of the interactions became negative. Staying for long hours together had resulted in population rise and on the other hand increased violence against women and post covid increase in number of divorce cases. The condition of females became more pathetic, they have to work harder for daily needs of family at home. The cultural practices and rituals regarding samskaras have changed. People used to help needy without discrimination of caste and religion. Many video shares regarding helping others motivated people and helped them to stay safe. Puja rituals have started darshan, aarti, offerings and worship online. Even marriages, birth samskaras performed through instruction and mantras via tape recordings and relatives joined them from social platform links. Rajasthan government introduced a free scheme by roadways bus in the year 2020 named Moksha kalash yojana for performing asthi visarjan at Haridwar Ganges. [6]

Cultural Transformation in society due to Covid :- Although Covid has grasped many lives before time and created atmosphere of terror and turmoil. The biggest mantra of covid times is mask, social distancing and hand sanitization. The fear of spread and acquiring infection and subsequent social distancing has brought separation in the societies. Covid 19 induced lockdown resulted in sudden growth in usage of internet and digital devices like mobile, laptop, tab etc. even small children got access to these devices, which was required by them, to join their online education.

Online education has changed the traditional education system to newer one. Distance learning is the way for keeping learning process on for students during pandemic. Online admission, exams, evaluation are new cheaper and convenient ways proven during Covid. E-resources and E-books are easily available and became inseparable part of the educational system. Online lectures from senior academicians, administrators, doctors, entrepreneurs, and spiritual lectures have increased the available online resources of knowledge [7]

Covid has created opportunity of work from home for employees. Offices also went online. With the online platforms like zoom, Microsoft team, google meet etc. had large scale subscription new ed-tech platforms/digital meeting and office platform too started and flourished. People had enough leisure time at homes, this resulted in growth of OTT platforms. Overall, the digital screen time of adults as well as children increased significantly with major part of the day, was on these devices. The stress, fear generated and the death and disability due to covid made people to remain in touch and share their feelings. Mobile devices, internet and various apps and sites/ social media platforms brought people closer and made them share their feelings.[8]

The whole ritual of showoff, via light, sound, food, decoration and other expenses in marriage has changed. The marriages occurred with only closed family members and simple ceremonies. Now families are working hard towards household chores and adjustment of works and support of family members are increased leads to self-sufficiency at house hold chores. Dance, drama, movie,

theater, mall, shopping center, gym, spas, beauty salons were closed for longer duration and people never thought earlier that it can happen or they can live without these amenities. People got to recognize their newer talents and on social media they express it and within few minutes got popularized. Online net banking through payment apps like Bhim, UPI, Google and Amazon etc. has changed the money transfer and bill payment in faster and secure ways. Environmental degradation caused by humans is not irreversible but during lockdown period, clean air and atmosphere is witnessed. Lesser number of road accidents happen. Doctors, nursing staff, police, sanitation workers, have saved life and became real heroes.[9]

Conclusion :- In the light of Covid, cultural transformation has accelerated its speed, the family relations have grown in a newer way. Our education, offices, family relations, thinking, behavior, psychology, our rituals and traditions, our outlook towards consumerism has all transformed. Cultural change, which is technology driven, may bring about a change in the social structure and an ideological shift which will last forever. It has suddenly accelerated our cultural journey and growth. Fight from covid for survival has occurred due to uniqueness of Indian culture. Long hours in ppe kit by health workers and sanitation staff for saving life, special permissions for drug testing, use of kadha, and ayurvedic items for immunity boost and yoga practices were the basis to be winner from covid. Everybody has given his bit to save others from covid. Pendemic has taught us lesson that by uniting, we can fight from covid. Having been through the stresses and uncertainties of life and loss of lives and job, also initiated the thought and practice of minimalistic approach in life. An approach in which we limit our desires of physical belongings and turn towards spirituality. The wide implications of social and cultural changes brought by the pandemic can be evaluated only at a larger scale and the changes are here to stay. Conflict of interest: no conflict of interest to declare

References :-

1. Singh RP, Javaid M, Kataria R, Tyagi M, Haleem A, Suman R. Significant applications of virtual reality for COVID-19 pandemic. Diabetes Metab Syndr. 2020;14(4):661-664. doi:10.1016/j.dsx.2020.05.011
2. Moore, S.A., Faulkner, G., Rhodes, R.E. et al. Impact of the COVID-19 virus outbreak on movement and play behaviours of Canadian children and youth: a national survey. Int J Behav Nutr Phys Act 17, 85 (2020). https://doi.org/10.1186/s12966-020-00987-8
3. Idoiaga N, Berasategi N, Eiguren A and Picaza M (2020) Exploring Children's Social and Emotional Representations of the COVID-19 Pandemic. Front. Psychol. 11:1952. doi: 10.3389/fpsyg.2020.01952
4. Kapoor H, Kaufman JC. Meaning-Making Through Creativity During COVID-19. Front Psychol. 2020;11:595990. Published 2020 Dec 18. doi:10.3389/fpsyg.2020.595990
5. Mehta S, Saxena T, Purohit N. The New Consumer Behaviour Paradigm amid COVID-19: Permanent or Transient? Journal of Health Management. 2020;22(2):291-301. doi:10.1177/0972063420940834
6. Kowalczyk, O., Roszkowski, K., Montane, X. et al. Religion and Faith Perception in a Pandemic of COVID-19. J Relig Health 59, 2671–2677 (2020). https://doi.org/10.1007/s10943-020-01088-3
7. Alghamdi AA (2021) Impact of the COVID-19 pandemic on the social and educational aspects of Saudi university students' lives. PLoS ONE 16(4): e0250026. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0250026
8. Beby Masitho Batubara, The Problems of the World of Education in the Middle of the Covid-19 Pandemic. Budapest International Research and Critics Institute-Journal (BIRCI-Journal) Volume 4, No 1, February 2021, Page: 450-457 e-ISSN: 2615-3076 (Online), p-ISSN: 2615-1715
9. Pokhrel S, Chhetri R. A Literature Review on Impact of COVID-19 Pandemic on Teaching and Learning. Higher Education for the Future. 2021;8(1):133-141. doi:10.1177/2347631120983481

Happiness : An Analytical Study of Aristotle and John Rawls

Dr. Subhankari Pati*

The primary objective of this paper is to provide broader idea about the concept of happiness and its importance in human life. Everyone wishes to live a happy and contemplative life, which necessitates effort, focus, and hard work. It is completely reliant on human actions, as humans are the most capable creatures on the planet. In the conventional sense, a good life entails a happy and prosperous existence. Money, prestige, and position are the temporal components that can be used to make life more enjoyable, but the reliability of these qualities, as well as the enjoyment gained through these means, is limited. As a result, we must concentrate on those aspects of life that might make it meaningful and worthwhile. For a better understanding, I am consulting two political philosophy legends: Aristotle, the ancient Greek philosopher, and John Rawls, the liberal political philosopher. Both Aristotle and Rawls firmly believe in the route of justice as a means of preserving peace and happiness. This study not only underlines the importance of preserving men's dignity but also argues for the need of community in creating a prosperous existence in general. Finally, an attempt is made to justify the necessity of community, as advocated by Aristotle and MacIntyre, in achieving happiness through tradition and social practices.

Aristotle's Perspective on a fulfilling Existence :- Aristotle is without a doubt the first political philosopher to understand the rational aspects of human life. The very first sentence of Aristotle's *Nicomachean Ethics* begins with a positive remark that, "Every art and every investigation, and similarly every action and pursuit, is thought to aim at some good; for this reason, the good has been rightly declared to be that at which all things aim."[1] A person can examine the true nature of human life with this teleological viewpoint. The ultimate goal of human life, according to Aristotle, is *eudaimonia*, or happiness. Happiness is a condition of perfection apart from wealth, fame, or pleasure. Relationships are also equally important for a good life because it is the feeling of love, co-operation and fellow feeling that bridges a unique bond between two individuals. Aristotle classifies relationship into three main categories, such as, friendship of utility, pleasant, and mutual admiration. The first two partnerships are instrumental in nature, whereas the third is intrinsic in character, necessitating a unique tie between individuals. Perfection can be possible only insofar as one can satisfies the both the needs (intellectual and bodily) in a moderate form. Aristotle points out that the highest goal can only be perceived through action.

Virtue ethic of Aristotle is deeply concerned about the wellbeing of rational person and it can be achieved through noble deeds. About Virtues of character he says, "It is concerned with individual capacities of perception and desire."[2] Virtue of character arises through habit but intellectual excellence can be possible through teaching and experience. Aristotle has discussed about the significance of intellectual virtue in the Book Six of *Nicomachean Ethics*. Wisdom is the guiding factor for the determination of deliberative faculty. Wisdom is only concerned with practical wisdom rather than theoretical. Regarding practical wisdom Aristotle says:- Now it is thought to be a mark of man of practical wisdom to be able to deliberate well about what is good

*** Assistant Professor, School of Philosophy, G.M. University, Sambalpur, Odisha.**

and expedient for himself, not in some particular respect, e.g., about what sorts of things conduce to health or to strength, but about what sorts of things conduce to good life in general.[3]

Here we come to know the basic principle through our deliberate faculty can be judged. The virtues of practical wisdom contemplate both the universal and particular aspects. Aristotle's ethics shows the direction to human being in order to achieve his ultimate goal. As a science of character, Aristotle's ethic motivates individual to cultivate the virtue of excellence in order to meet their final goal, i.e., good life (flourished life).

Aristotle describe the chief characteristics of final good, i.e., self-sufficient. Self-sufficient, according to Aristotle, "That which is in itself worthy of pursuit more complete than which is worthy of pursuit for the sake of something else."[4] Ultimate good is to be pursued for its sake not for the sake of any higher end. Aristotle repeatedly mentioned the concept of good life (happiness) in both the Book I and Book X of *Nicomachean Ethics* but their way of approach is different from one book to another. Book I signify the chief objective of human life and it can be pursued through virtuous character. There is highest kind of happiness which is mentioned in in his Book X that is contemplation. Aristotle believes that, "It is the most pleasant activity we can engage in."[5] The life of contemplation does not need any help from external goods (friends, family and fortune or luck). He has mentioned that, "The life of intellectual contemplation is a divine activity."[6] The reasoning indicates that in order to achieve contemplation, we must first fulfil our divine attitude. Only by acting in conformity with divine laws human beings can achieve contemplation.

Aristotle's Ethics is concerned with the improvement of individuals and argues that they achieve a decent existence through moral virtues. But in the case of *Politics*, meaning of good life is primarily depends upon the welfare of community rather than the isolated individual. In this contest Aristotle reminds the real place of human being by saying that: "man is by nature a political animal who can be free and self-realizing as a substance only within the greater substance of the polis."[7] Public is not at all a vacuum entity rather it is based upon shared feeling, mutual co-operation, respect, obligation and trust upon one another. Highlighting the significance of community Aristotle mentions that, "the common interest is a factor in bringing them together, insofar as it contributes to the good life of each. The good life is indeed their chief end both communally and individually."[8] The Aristotelian way of life is ideal because it is founded on his principle of justice, which necessitates virtuous actions.

Contented life : An Attitude of Liberals :- Liberal thinkers are entirely dissatisfied with Aristotle's definition of social good, which ignores the rights of its members. John Rawls is one of the most ardent proponents of individual rights theory in current philosophy, emphasizing individual needs over merits in his theory of justice. Rawlsian basic structure of society is primarily introduced for the maintenance and preservation of unity as proposed by justice as fairness. It has two important features which regulates individual behavior. First of all, it is a public coercive institution which operates according to rules; and we are morally bound to justify these rules to one another.[9] The principle of basic structure is not directly applicable to private institution due to its strict rules and regulation. Secondly, the basic structure as the primary subject of justice derives from its profound and pervasive influence on the persons who live under its institutions.[10] Basic structure mainly focuses the contingencies of the individual which gives him the status of marginalized form the mainstream society. Rawls proposed there are mainly three kinds of contingencies namely, social class, natural assets (talent and abilities), and good fortunes. Rawls introduced an impartial and unique theory whose sole aim is to treat all individual in an equal manner irrespective of their cast, creed and religion. This universal principle of Rawls is

called as ‘original position’ and like other agreements it demands from their members that they have to forgo their true nature before enter into contract, then only the real purpose of this contract can be easily fulfilled. The greatness of Rawls lies in his attempt to base his hypothetical contract on public reason. Members in the modern contract theories are disinterested towards each other’s affair. This thought making approach of Rawls is known as ‘veil of ignorance’. In the words of Rawls, " No one knows his place in society, his class position, or social status; nor does he know his fortune in the distribution of natural assets and abilities, his intelligence and strength, and the like. Nor, again, does anyone know his conception of the good, the particulars of his rational plan of life."[11]

The concept of right, liberty and equality are meaningless for him because he does not know the necessity of all things in life. In spite of putting man into a difficult situation Rawls is quite sure that by using these two moral powers (reason and rationality) one can efficiently get rid of his difficulties and simultaneously able to create a social status. Reasonable power develops strong determination capacity and the power of rationality helps them to realize the real purpose of human existence. Adhering these two powers one can effectively participate in the developmental activity of the community of which he/she can belongs. Rawlsian good life exclusively talks about individual rights apart from social responsibilities, obligations and burdens as a result to ensure a stressed free life. Rawlsian two principles of justice, i.e., liberty and difference are the clear example of superiority of individual right over communal good and by doing this he seems to justify the importance of human. In the support of this statement Rawls provide two arguments in the following manner, "First, the right is prior to the good in the sense that certain individual rights “trump”, or outweigh, consideration of the common good. Second, the right is prior the good in that principle of justice that specifies our rights do not depend for their justification on any particular conception of good life."[12]

First and foremost, violations of human rights cannot be permitted for any cause; individuals are prioritized owing to their divine nature, which must be protected. Second, justice principles protect human rights and are completely independent of social good. Rawls advices members in the original position should adhere primary good for their survival. Social good is the important among these goods because it has the potentiality to maintain a fair society. The novelty of Rawls is reflected in the second principle where he allows inequality for the betterment of naturally deprived class people and at the same time gives higher incentive to those who are loyal and committed for reformation of society.

We can infer from the preceding observation that Rawlsian political society is surrounded by individuals and their identities. However, identity as a political concept cannot be understood in isolation from the community. It is necessary to discuss the virtue of community in the words of Alasdair MacIntyre on the line of Aristotle in a concise manner in order to demonstrate Rawls' incompetence in misinterpreting and underestimating the importance of communal life to an individual's identity and integrity. Both Aristotle and MacIntyre admitted the fact that virtue or excellence is the correct method for obtaining a life that is essentially and naturally good. Unlike from Aristotle’s metaphysical biology, MacIntyre defines his notion of modern morality through the help of sociological teleology. He claims human purposes are not determined by their essential nature or soul rather it is to be defined through social practices. In order to make his reconstruction more relevant MacIntyre deploy three central concepts, namely- practices, narrative units of life, and traditions. Goodness is always related to activities and it cannot be obtained by mere engagement rather it is based upon voluntary and habitual participation. Virtue in the words of

MacIntyre, "a virtue is an acquired human quality the possession and exercise of which tends to enable us to achieve those goods which are internal to practices and the lack of which effectively prevents us from achieving any such goods."[13] Human behavior cannot be understood simply as stretches of bodily movement rather their actions are characterized them in relation to the intentions, desires and goals. Within these settings of action, we have the both long term and short relationships with our fellow mate, family members and other creatures of the world including nature. Constraints and uncertainty are the part and parcel of both our lives in the real world and the narrative units but these are the two essential mediums for grooming ourselves to reach at our destiny. Tradition is the medium where social practices are shaped and transmitted its essence over the generation. Thus, we can say that practices, narratives and traditions are the three strongest components of MacIntyre for establishing communal life a good and ideal life.

Conclusion :- Aristotelian approach of good life is seeming to be more desirable because it relies on principle of justice which requires virtuous activities. Virtue or excellence as the prime means for distributing scare resources in a just society. Aristotle rightly pointed out that individual good and political good are complementary to each other, so he suggests that we should always work like a unit and fulfill our duties towards its progress. Community for him is the form of association which minimizes our negative feelings and always inspires us to perform righteous activities so that we can make life noble and good. Its success is purely dependent upon the abilities and efficiencies of its member and ideal community is one where resources are granted on the basis of their inner potentialities (merit). But Rawlsian fair society is very much partial towards the moral development for which basic structure of society give priority to individual rights and subordinated social goods. Rawls commits a mistake in emphasizing a burden free self which seems to be irrelevant and subjective in nature. Rawlsian original position is clear form of bargain which puts its member into an unconvincing situation, instead of compelling them to form an equal sphere we can place them into a community from the very beginning of their life. By doing this we can develop the sense of friendliness and co-operation among them and controls their desires through the principle of mean as suggested by Aristotle. Self-satisfaction and completeness are not possible only though moral development but through social practices and tradition as suggested by MacIntyre.

Reference :-

1. Aristotle. *Nicomachean Ethics*.(1981). (Tr.). J. A. K. Thomson. New York: Penguin Books, p.63.
2. Ibid., p.97.
3. J. L. Ackrill. (1987). *A New Aristotle Reader*. (Ed.). Oxford: Clarendon Press, p.420.
4. Aristotle. *Nicomachean Ethics*. (Tr.) J. A.K. Thomson, p.73.
5. Ibid., p.325.
6. Ibid. p.330.
7. Aristotle. *Politics*. (1998). (Tr.) With Introduction and Noted. C.D.C. Reeve, Cambridge: Hackett Publishing Company, p.4.
8. Aristotle, (1995). *Politics*. Book III and IV. (Tr.) Richard Robinson. New York: Oxford University Press Inc., p.510.
9. Harry Brighouse, (2004). *Justice*. UK: UK Polity Press, p.36.
10. Rawls, John, (2004). *Justice as Fairness: A Restatement*. (Ed.). Erin Kelly. New Delhi: Universal Law Publishing Co., p.55.
11. Rawls, John. (1971). *A Theory of Justice*, London: Oxford University Press, p.137.
12. Sandel, Michael J., (1988). *Liberalism and Limits of Justice*. Cambridge: Cambridge University Press, p.185.
13. MacIntyre, Alasdair. (1981). *After Virtue: A Study in Moral Theory*. London: Duckworth, p.178.

Gandhi and Ambedkar's Idea of Social Justice

Dr. Papia Deb*

Social justice is an important dimension of the concept of justice which represents the organization of society based on the principles of equality, liberty and fraternity. Social Justice means availability of equal social opportunities for the development of personality to all the people in society, without any discrimination by caste, sex or race. No one should be deprived, because of these differences, those social conditions which are essential for social development. State has to take initiatives to remove inequalities and injustice inherent in the social system, it may be said to be related with the ideology of positive liberalism and, therefore, with the concept of the welfare state.

When after the Second World War various countries of Asia and Africa gained independence, then these countries had not only suffered from imperialist exploitation, but also from social imbalances. One section of society which collaborated with the imperialist powers had cornered much of the benefits at the cost of the weaker section.

For this reason, the poor and disadvantaged social classes have naturally turned to the state for social justice. In India, the caste system and the untouchability problem have made matters worse. Both Gandhi and Ambedkar reacted against such evils in their own way. Their end was the same but they differed in their perception of the problem as well as in their approach to seek adequate solution.

Gandhi's Views on justice: Gandhi wrote no single treatise on social justice; all his life, work and published writings contain insights about social justice. They were drawn from his own experiences and observations of injustice as a victim of political oppression, racism and apartheid in South Africa and India. Gandhi's idea of Social Justice is directly related to his doctrines of Satya, Truth, Love, Non-violence, Sarvodaya and Ahimsa which moved hand in hand and was impossible to be separated from each other. If Ahimsa was a means, then the attainment of Truth in itself was the Justice. Gandhi believed in the maxim simple living and high thinking. He was sure that the needs of everyone could be fulfilled but not the greed. Therefore, one should leave aside one's material desires and try to live within minimum resources. His Justice was meant for the whole humanity.

In his notion of social justice Gandhi included the ideas of both positive liberalism and democratic socialism. He, for example, accepted the view that every individual should have the means to secure his freedom and to develop his personality, and he also believed that means of livelihood should not be monopolized by any one section of society.

Gandhi believed in Varnashrama system in the Vedic sense. According to Gandhi, the four Varna system as propounded in the Vedas was based on human nature and on scientific principles. The four divisions he believed, defined a man's calling, but did not restrict or regulate social intercourse. They defined duties but referred no privileges. He, therefore, thought that inter-dining or even inter-marriage did not deprive an individual of his status that his birth had given him. As

*** Assistant Professor and Head, Department of Political Science, Maynaguri College (Affiliated to the University of North Bengal), Maynaguri-735224, Dist-Jalpaiguri, West Bengal**

the four divisions did not confer privileges, it was against the genius of Hinduism to arrogate to oneself a higher status or assign to another a lower. Hinduism did discourage inter-dinning and inter-marriage between four divisions of society. It was, he believed, a religion of renunciation of the flesh so that the spirit must be set free. There was no place for untouchability in Hinduism. Gandhi regarded it as 'an excrescence'. Through it continued from generations, it could not be regarded as an essential part of Hindu social system. Untouchability could not be traced from the Vedas. Its origin might be traced from that particular period when the Hindus were at the lowest ebb. It must be regarded as a curse which must be made a cognizable crime with a suitable punishment.

Gandhi was very much concerned with the economic well-being of the weaker section of society. He, in fact, transformed the character of the Indian National Congress. The Congress prior to his emergence as the national leader was dominated by the middle class interest. Under the leadership of Gandhi it became identified with the masses. He fought, for example, for the cause of poor peasants in Champaran and for the cause of the industrial workers in Ahmadabad. In his speech at the Round Table Conference he identified the Congress with interests of the deprived section of the Indian society. He endeavoured throughout his life to bridge the gap between the rich and the poor and to train the masses to self-discipline. He was against the exploitation of one class by another but wanted to put an end of such exploitation by peaceful means. This was the real purpose of his theory of trusteeship which stipulated that a rich person should be left in possession of his wealth on the condition that he would use only that part of it which he reasonably required for his personal use and would act as a trustee for the remainder to be used for the society. He thus favoured an economic order in which capitalist possessions should be equitably distributed on voluntary basis or if it became necessary through state action.

He was against to large-scale industry because Gandhi believed it was not helpful in the moral development of individuals; rather it destroyed the harmony of life which people in villages enjoyed in their natural surroundings. He was not against machines, but he was against the concentration of wealth in the hands of a few. Economics that ignored considerations of social justice should be opposed and according to Gandhi it could never be regarded as good economics. Gandhi was not against politics. To him, it was a part of human nature to do service to his fellow-men as well as to humanity. But for Gandhi, a man who aspired to attain Truth or God which was the ultimate end of human life could not ignore any field of life. Different fields of life were necessarily related to each other. Politics and religion were, therefore, inseparably related to each other and could not be divorced.

Gandhi was against centralized state as it was not helpful in the moral development of man. From this point of view he favoured decentralized state in which power resided not at one level but at many levels of political organization. He also favoured participation by all in the governance of the country and supported adult suffrage. The authority symbolizing the state must not be a privilege of the few at the cost of the many. If there is abuse of authority it must be resisted with the soul force i.e. Satyagraha.

The problem of untouchability, according to Gandhi, was basically a social problem and could not be solved by special representation. He was prepared to go upto any extent to remove the blot of untouchability from the society and to uplift them and to preserve their right. But as the problem was basically social it would not be solved by granting political rights like the separate electorate.

Thus in all spheres, economic and political, Gandhi was opposed to the idea that benefits and privileges should be monopolized by any one section of the society. Any such tendency was wrong and should be opposed. He was particularly concerned with the poor and the deprived segment of the Indian society and endeavoured throughout his life to make available to them the same privileges which others were enjoying in society. Obviously he wanted to establish in India an egalitarian society based on the principle of social justice.

Ambedkar's Views on justice: Dr. B.R. Ambedkar is known as the man of millennium for social justice. He stood for a social system in which man's status is based on his merit and achievements and where no one is noble or untouchable because of his/her birth. He advocated the policy of preferential treatment for the socially oppressed and economically exploited people of the country.

In his concept of social justice Ambedkar was influenced by the Western liberal ideas and the conditions that prevailed in the Indian Society. Born in a family of Mahar in Maharashtra, he had to face all indignities and discrimination that an untouchable was destined to face. Naturally, therefore, it became the first concern of his life to fight against it and to establish a society based on social justice in India. Ambedkar wanted to reorganize the society on equality and rationality and therefore, opposed the caste based social structure which, he thought, was characterized by graded inequality.

He made a difference between Varna and Caste and thought that while Varna was not hereditary either in status or occupation, caste made them both hereditary. Both connote status and occupation. On the other hand caste implies a system in which status and occupation are hereditary and descend from father to son.

According to Ambedkar, there was a close relation between the caste system and untouchability. It was, therefore not possible to abolish the one without abolishing the other. Untouchability is an extension of the caste system. The two stand together and will fail together. He, therefore, favoured abolition of the caste system and reorganization of society on the basis of equality and justice. Only then social justice could be achieved.

He emphasized the role of the state in protecting the interests of the weaker sections of the society. He said basic industries should be owned and operated by the state or state-owned enterprises. Insurance should be state exclusive and agriculture should be state industry. He felt the need to force the state to plan the economic life of the population to ensure equitable distribution of resources. This obligation should not be left to the will of the legislator, but should be determined by constitutional law.

According to Ambedkar governance of the country should not be privilege of a new persons or any particular section of society. Every section of society should participate in it. It was form this point of view that he favoured adult suffrage. In order to ensure representation of the weaker section he suggested the system of joint electorates with reserved seats. Thus Ambedkar pleaded the cause of the weaker section of society, particularly of the Scheduled Castes, to enable them to lead a life with dignity in the Indian Society. He advocated for them protective discrimination because they had suffered from structural inequality inherent in the Indian social structure. This, he thought, was necessary to reorganize the society on basis of social justice.

The brief discussion shows that both Gandhi and Ambedkar believed in social justice and struggled all their lives to establish a egalitarian society in India based on the principles of equality and rationality. Both believed that the end of the independence movement was not just to gain independence from the British, but to establish a society in India that should be free from evils

such as untouchability and inequality in social, economic and social spheres. Both believed that special attention should be paid to the weaker sections of society and especially those who have been discriminated against in Indian society.

But they had their visions of ideal society and their own approach to achieve it. In the social sphere Gandhi attempted to justify the Varna system. Ambedkar was opposed to it & thought that if social system was attached to birth, status and occupation of the individual would be decided not by merit but by hereditary and it was bound to degenerate the system. In the economic sphere Gandhi favoured decentralized economy and advocated the theory of trusteeship in which the rich would spend only that amount of their wealth on themselves as was required by their needs and for rest of his wealth he would act as a trustee to meet the needs of others who needed such help. Ambedkar, on other hand, favoured industrialization and nationalization of important means of production. The state, according to Ambedkar, should play a leading role in managing the economic development of the country as well to remove economic injustice between different segments of society. In the political sphere Gandhi favoured decentralization of power and spiritualization of politics. He treated all life in one piece in which politics and religion were inseparably related. The ultimate end of man was to attain salvation which could be achieved through performance of duties in society and serving the humanity. But Ambedkar believed in centralized polity. He thought that it was necessary not only for building the Indian nation but also to protect the interest of the weaker section of society. According to Ambedkar, the weaker section should have a share in the governance of the country in order to protect their interests and to give a helping hand in the establishment of a society based on social justice. Ambedkar was very much influenced by Rousseau's words equality, liberty and fraternity and he decided to fight for justice based on equality. Dr B.R. Ambedkar wanted economic and social equalities before political equality; he tried his best to ensure that the downtrodden got a proper place in society. Hence, he gave more importance to social justice than political justice; on equal opportunity with individual liberty were laid much emphasis to root out the differences created by the caste system of the country.

References :-

1. Collected works of Mahatma Gandhi, Vol. IX, New Delhi, 1963.
2. Gandhi, M.K, India of my Dreams, Ahmadabad, 1970.
3. Ambedkar, B.R., States and Minorities, Writings and Speeches, Vol-1.
4. Ambedkar, B.R., The Hindu and His Belief in Caste, Writings and Speeches, Vol-1.
5. The Collected Works of Mahatma Gandhi, Government of India, Publication Division, Vol -V, New Delhi, 1976.
6. Dhawan, Gopinath, The Philosophy of Mahatma Gandhi, Navajivan Publishing House, 1957.
7. Mehta, Chabra, Modern Indian Political Thought, New Academic Publishing House, 1992.
8. Kataria Kanta, Relevance of Ambedkar's Ideology, Rawat Publications, Jaipur, 2015.
9. Keer Dhananjay, Dr. Ambedkar, Life and Mission, Popular Prakashan, Mumbai, 2003.

Impact of Social Media on Women's Self-esteem and Mental Health

Ms. Priya Upadhyay*

Dr. Bhawani Shankar**

Abstract :- The quick advancement of social media somewhat recently has set up another mechanism for human cooperation. Online platforms like Facebook, Twitter and Instagram have permitted individuals to associate day in and day out in each side of the world. By 2021, around 3 billion monthly dynamic social media clients would be there. Insights alone have made social media a basic (and key) part of our lives. Exploration has made a wide proof base supporting the connection between social media use and psychological well-being, however new proof illustrates significant impacts, since the prevalence of social media as a correspondence vehicle for women can assume a more harming part than we suspected. (Naslund, 2020)

Introduction :- Social media is a stage or innovation that advances the sharing of different points of view, thoughts and data. Also, it has become part of our regular routine and every day exercises, individuals go through social media repeatedly. Social media influences our psychological wellness from numerous points of view. Psychological wellness is a condition of enthusiastic, mental and social prosperity. It's with regards to feelings, how individuals feel and act in their day-to-day routines. For some people, it very well might be a cheerful spot and for some, it tends to be a bad dream. Certain individuals can acquire certainty, by posting pictures but some get disappointment with themselves then again, which can assist individuals with decreasing their confidence level. Social media has appeared so that individuals can connect but incidentally, individuals turn up becoming lonely and isolated. It influences the emotional wellness of all kinds of people but I think it influences a women's confidence and psychological well-being and mental health because of the impractical paragon of beauty and that's only the tip of the iceberg.

This corrupts psychological wellness of women; however, these days individuals are posting more genuine stuff. Many individuals are posting on body positivity, skin energy, social media versus reality hashtags. Individuals likewise approach and spread mindfulness about melancholy, uneasiness, stress, and so forth. It additionally helps in strengthening when individuals help each other by sharing their encounters and spreading mindfulness.

Rationale Of Study :- Online media has turned into a vital piece of our lives and presently we can't envision existence without social media collaboration. There are a lot of articles dependent on social media like tension, expanded mental issues, gloom and low confidence.

Review Of Literature :- Humans are social creatures. We need the support and validation of others to flourish everyday throughout our life and the force of our association gigantically affects our emotional wellness and joy (Totaldigitech, 2020). Being socially associated with others can decrease pressure, nervousness and sorrow, increase in confidence, give solace and joy, forestall depression, and even add more years to your life. But the sour truth is, the absence of a solid social association can present genuine dangers to mental and enthusiastic well-being.

*** PhD Scholar, School of Media and Communication Studies, Galgotias University, Greater Noida, Uttar Pradesh, India.**

**** Assistant Professor, School of Media and Communication Studies, Galgotias University, Greater Noida, Uttar Pradesh, India.**

In this age, a large number of us depend on social media platforms like Facebook, Twitter, Snapchat, YouTube and Instagram to discover and interface with one another (Football.xyz, 2020). In spite of the fact that there are many benefits of every social platform, we should keep in mind that social media can't supplant genuine human associations. You need direct contact with others to soothe pressure and trigger chemicals that can cause you to feel more joyful and better (Totaldigitech, 2020). Incidentally, investing an excess of energy in social media for strategies intended to unite individuals can really disconnect them alone, disengaged and disturb psychological well-being issues like nervousness and misery.

On the off chance if you invest a great deal of energy on social media and your torment, objections, disappointment or depression is influencing your life, it's an ideal opportunity to improve your online routines and track down a good arrangement.

Objective Of Study :- Three explicit optional exploration questions will be tended to and along with the principal research question fill in as a layout for getting sorted out with the outcomes:

- Which parts of psychological wellness and prosperity have been the concentration or focus of exploration up until this point?
- Are manifestations of impact on emotional well-being from social media advocated?
- Coordinate and portray the focuses that we can use to stay away from emotional wellness issues that have been recognized by the use of social media.

Methodology :- Various related research studies have been done for this research. To understand the subject, this study has been verified by studying the data available online.

Result :- Social media can advance a negative impact such as insecurity about your life or appearance. Regardless of knowing that the photos you see on social media are controlled, they can in any case have an adverse impact on what you look like or what is going on in your own life for sure. Likewise, we realize that others just offer the features of their lives, and there are some depressing times that everybody experienced. Be that as it may, it doesn't decrease sensations of desire and disappointment while looking through enhanced with photoshop photographs of companions on tropical sea shore occasions or finding out with regards to invigorating new situations at work.

Fear of missing out (FOMO): Fomo exists from a much longer time than social media, yet destinations like Facebook and Instagram start to understand that the possibility of others having a great time than you or a superior life, recalling certain things can influence confidence, creates tension, and fuel your utilization of social media. FOMO can compel you to react to each news, regardless of whether it implies looking at your mobile to actually take a look at refreshes, facing challenges while driving, missing rest around evening time, or focusing on social media connections over the genuine connections.

Separation : A college of Pennsylvania investigation discovered that high utilization of Facebook, Snapchat and Instagram diminishes sensations of forlornness (AnshikiJadia, 2021).

Melancholy and anxiety: People need visual contact to be intellectually sound. Nothing diminishes pressure and lifts your mind-set quicker or more adequately than eye-to-eye connection with somebody who thinks often about you (Silkvancer, 2020). The more you focus on social media collaboration over in-person connections, the more you're in danger of creating or intensifying disposition problems like nervousness and melancholy (AnshikiJadia, 2021).

Cyber bullying: Almost 10% of youngsters are bugged via social media and numerous different clients get hostile remarks, and social media stages like Twitter could be focal points for spreading harmful gossip, lies and misleading information that can leave steady and deep scars.

Different Reasons for Undesirable Social Media Utilization :- The Fear of Missing Out (FOMO) may force you to return to social media over and over again. Some might pause or need a quick reaction, yet FOMO will trust it. Would you be anxious about the possibility that in the event if you miss the most recent news or gossip on social media, you would be barred from school or work discussions? Or on the other hand perhaps you figure your relationship will endure in the event if you don't care for, or react to another person's post right away? Or then again you might miss a greeting or stress that others are making some more preferred memories over you.

A large number of people utilize social media as a "familiar object." At any point we are in a social circumstance and are concerned, of being lonely or isolated, we turn on our phones and sign on to social media. Obviously, discussions on social media just deny up close and personal discussions that can assist us with facilitating uneasiness.

Signs that social media is influencing women's psychological wellness :- Everybody is unique, and the quantity of posts that demonstrate the particular time spent on social media or how regularly they update or check for use is undesirable. Maybe, it has to do with the effect of time spent on social media has on your state of mind and different parts of your life, to utilize it with motivation.

For instance, utilizing social media can be risky in the event that you disregard visual connections, get occupied at work or school, feel desirous, upset, or discouraged. Additionally, in case you are exhausted or forlorn and are spurred to utilize social media or presents on drive others desirous or mad, it very well might be an ideal opportunity to rethink your social media routine.

Signals that social media can adversely influence psychological wellness includes :- Investing more energy on social media than your genuine companions. Using social media has become a great substitutes for disconnected social association. Regardless of whether you are going out with companions, with whom you actually want to continuously look at social media, frequently feeling that others can be enjoying more than you.

Contrast yourself antagonistically with others on social media. You will have less confidence or negative self-perception. Or stressing over that you can't handle what individuals post regarding you.

Interruption in everyday schedule.

Participate in hazardous conduct to get preferences, offers or positive reactions on social media.

Discussion And Conclusion

Stage 1: Decrease time spent online- A college of Pennsylvania study showed a huge decrease in the level of tension, gloom, depression, rest issues and FOMO levels when the utilization of social media diminished by 30 minutes every day. Yet, you don't need to cut radically on your social media use to work on your emotional wellness. A similar report infers that focusing on your social media utilization alone can have advantageous outcomes for your temperament and concentration.

Stage 2: Change centre of focus :- A significant number of us utilizing social media can kill their vacation time habitually or without using our brains. Nonetheless, by focusing on inspiration to logging on, you cannot just lessen the measure of time spent on social media, yet additionally work on your experience and keep away from many negative angles.

Stage 3: Invest more energy with your disconnected companions- We as a whole need others' visual company to remain happy and emotionally stable. Social media is an extraordinary device to work with genuine association in the best case. In any case, if the event permits virtual companions over genuine fellowships in your day-to-day existence, there are numerous approaches to make

significant visual associations without relying upon social media. Separate a week to interact with loved ones. Continuously attempt to make it an ordinary gathering to keep your phone out of sight.

Stage 4: Express gratitude:- Feeling and offering thanks for significant things in life can be a welcome alleviation for the discontent, aggression and discontent that occasionally happens via social media. Invest some energy appearing. Keep your review diary or attempt the review application. Not just track incredible recollections and positive things in your day-to-day existence, yet additionally track things you will recall and you will miss individually, in case you are abruptly missing from your life. In the event that you vent your post or post adversely, you can likewise offer your thanks via social media, yet you can benefit more from private reflections that are not being scrutinized by any other individual.

Stage 5: Practice diligence:- In the event that you experience FOMO and contrast yourself with others, you will be in the failure and dissatisfactions of life. Rather than being completely engaged with the present, we are centered around "uncertainties" and "uncertainties" that keep us from having life predictable with what we see via social media. By rehearsing diligence, you can learn more about life, lessen the effect of FOMO, and work on in general mental prosperity.

Stage 6: Volunteer:- Like people are inborn to seek after friendly associations, we are additionally design to give others, helping other people or creatures not just improve your local area and bring you significant reasons, yet additionally cause you to feel more joyful and more appreciative. Impose "social media" break. For instance, you can design family exercises that limit social media use until your kid finishes his schoolwork in the evening, don't permit mobiles to supper tables or bedrooms, and bar the utilization of telephones or different gadgets. To forestall rest issues, it is constantly asserted that your phone usage stops something like an hour prior to bed.

References :-

1. AnshikiJadia. (2021, 08 17). *Edupub.* From impact of social media on youth: https://edupub.org/2021/08/17/social-media-and-our-mental-health/
2. *Football.xyz.* (2020). From impact of social media on youth: https://footballx.xyz/the-job-social-media-plays-in-psychological-wellness/5f313330
3. Naslund, J. A. (2020). Social Media and Mental Health: Benefits, Risks, and Opportunities for Research and Practice. *Journal of Technology in Behavioral Science*.
4. *Silkvancer.* (2020). From Imoact of social media on youth: https://skillvancer.com/impact-of-social-media-on-youth-positives-and-negatives/

Totaldigitech. (2020). From impact of social media on women: https://totaldigitech.com/complete-guide-on-how-social-media-is-affecting-our-mental-healt.

The Role of social media in creating Political awareness among the Youth

Ms. Divyshikha*

Dr. Bhawani Shankar**

Abstract :- Twitter and Facebook are very popular social networking sites among the youth. Social media is increasingly being used in political contexts. Microblogging services and social networking sites are thought to have the potential to boost political engagement more significantly. Political leaders use social media as a platform to reach out to their supporters, promote policies, and advertise without paying for advertising. While Twitter is an excellent tool for individuals to disseminate not only general information but also political viewpoints to their networks, political organizations have begun to use Facebook pages or groups to engage in direct communication with individuals and encourage more political dialogues. Young people these days are heavy users of social media and are the most accessible to this information. Social media is an important tool for political information, and it has the ability to enhance youth political interest by indirectly affecting it. As of February 2021, 'Twitter' has 17.5 million users in India, 320 million Facebook users.

The goal of this study was to evaluate youth political awareness in social media and to see how social networking sites like Twitter and Facebook influenced young people's interest in politics. The survey was conducted among youth. an online semi structured questionnaire was developed. The findings demonstrated a statistically significant link between Facebook use and political activity among Delhi's youth. 61% of users access political information on Facebook for at least 10 to 15 minutes each day. While 39% use Twitter for at least 10 to 15 minutes every day to keep up with political affairs. social media is playing a key role to create political awareness among youth.

Keywords:- Facebook, Political Communication, social media, Twitter

Introduction :- Social media involves all applications, websites, and blogs that allow people all over the world to interact over the internet, discuss, and share knowledge, as well as a variety of other features. Social networking sites provide a forum for debating hot topics that are often ignored in today's world.

Politicians prefer social media platforms because they provide quick and simple access to voters. They gain one-on-one and personal connection opportunities through social media, offering accurate information to voters and, of course, avoiding rumours. Politicians use various social media channels actively to develop relations with their constituents, exchange ideas, and improve their image. It also gives them a chance to express their views on current events and policies.

Social media has several types of platforms. it can distribute their content by particularly unique forms of communication like: social networking sites, media products community such as

*** PhD Scholar, School of Media and Communication Studies, Galgotias University, Greater Noida, Uttar Pradesh, India.**

**** Assistant Professor, School of Media and Communication Studies, Galgotias University, Greater Noida, Uttar Pradesh, India.**

YouTube, blog services, link sharing services like Digg, information creation community like Wikipedia. It has stretched its wings not just to our daily lives, but even to political life. Twitter and Facebook are the two most popular social media platforms. Political leaders use social media as a platform to reach out to their supporters, promote policies, and advertise without paying for advertising. In terms of analysing people's political knowledge on social media, the youth have made a strong statement. As of February 2021, 'Twitter' has 17.5 million users in India, 320 million Facebook users.

The influence of social media in the formation of the "Me too" campaign aiming at raising awareness about sexual harassment and assault is one of the good examples. Young people participate in a variety of political activities, with a preference for new, alternative forms of political participation. Facebook has many features like 'Marketplace' allows users to post and respond to classified ads online; 'Groups' allows users to publicise events; 'Pages' allows users to create and promote personal or business ideas or engage others in a topic; and 'Privacy' allows users to protect their personal information.

Twitter is a microblogging service that allows users to broadcast and track replies to short posts known as 'Tweets' without requiring authorisation. Twitter is built on Ruby-for-Rails, an open-source web platform with an API available to app developers. Given the phenomenal expansion of social media, particularly Twitter and Facebook, people and political institutions are increasingly using social media in political contexts. The rise of social media is owing to people in the digital era being exposed to massive amounts of information on a daily basis, but little research has been done on the consequences of this exposure on political interest and engagement. Facebook and Twitter are the two most popular social media platforms for political information, ranging from breaking news to political campaigns. According to Browne's social media analysis (Browne, 2014), Indians are quite active on various social networks, with 88 percent of users sharing information on their social profiles and spending more time on various social networking sites.

Literature review :- Christian Fuchs (2014) addresses social media from a critical standpoint in his book "Social Media: A Critical Introduction." Fuchs defines critical as expressly referring to Marxism and neo-Marxism, with power and resource distribution as the central concerns. By researching both the political economy and political communication of social media, a Marxist approach to social media explores exploitation and dominance. This critical viewpoint examines who controls the means of production in both the financial and attention economies, as well as how various media sustain, reflect, or potentially upend an essentially exploitative capitalism. The book "Social Media and Election Campaigns: Key Tendencies and Ways Forward", by Gunn Enli and Hallvard Moe (2017), book is to shed light on future research in the fields of social media and communication during elections e by moving beyond the hype and avoiding the most spectacular and eye-catching cases.

It examines stable democracies that are free of contemporary political instability, tiny countries as well as vast continents, and tiny political parties as well as huge political parties The book "The Internet in the 2016 Presidential Campaign," by Jody C Baumgartner and Terri L. Towne (2017), examines how, though Internet campaigns are now normal fare, there were a number of unique innovations in 2016. This book aims to provide a detailed overview of Internet campaigning advances. How are campaigns organising and mobilising their ground game using the Internet? The book also looks at how citizens used Internet resources to stay informed, follow campaigns, and participate in elections. Contributions also look at how the Internet has influenced

traditional and non-traditional media coverage of the campaign. De elan's article, "(R)evolutionizing Political Communication through Social Media (2016)," discusses how social media has influenced political communication. This book also includes case studies of the elections in Mexico, Greece, and Europe. Taylor & Francis' An Introduction to Political Communication (2011) examines the connections between politics, the media, and democracy. The influence of social media in political campaigns is examined in this book.

Objectives

1) To find the most preferred platform of social media for youth's political awareness.
2) To analyse the attitude of youth towards social media and measure spending time on twitter and Facebook to get political information.
3) To evaluate youth political awareness in social media.

Research methodology :- This study has been done by descriptive method. Both primary and secondary data used to collect information. an online semi structured questionnaire was developed by using google forms. the questionnaire was sent through e-mails, Facebook, twitter and other social media. Participants must be over the age of 15, be able to communicate in English, and be willing to answer questions. A sample of 100 youth was selected from the above population of Delhi youth, using a non-random sampling method to select a sample from the entire population of Delhi youth, both male and female. The initial page of the survey contained information about the nature and purpose of the survey. After consenting to participate, respondents were sent to the first section of the study questionnaire, which included questions about socio-demographic information such as gender, age, and profession. The second section of the survey consisted of 7 questions about the use of Twitter and Facebook, preferred social media platforms, preferred social media platforms for obtaining political information, etc.

Data analysis and interpretation :- The analysis and interpretation of the data that are collected through surveys are covered here. According to the survey, solely 1 percent of the social media users use Twitter, while 35% of all respondents used all types of social media sites, including Facebook, YouTube, twitter, instagram. Only 20% among all respondents use YouTube, while 11% of all respondents use only Facebook. According to the survey, 19% of respondents use Twitter to post and receive updates. 10% to follow favourite groups, 8% to become politically involved, 2% to meet new people, while 63% of the participants don't use microblogging site Twitter. The survey results show that 25% of the participants use Facebook to post and watch stories, 24% to interact with friends, only 2% to meet new people, 47% participants enjoy all the advantages of Facebook while 2% don't use Facebook.

According to the Survey, 61% Respondents don't use twitter to get political information. 24% of participants only access 5 to 10 mins, daily to get political updates. 9% participants daily access 10 to 15 mins while only 6% respondents use twitter more than 15 minutes daily to get political information.

On the other hand, 39 percent of respondents do not use Facebook to obtain political information. 30% of participants use only 5 to 10 minutes per day to receive political updates. 9% of participants reach 10 to 15 minutes per day, while only 22% of respondents use Facebook more than 15 minutes per day to obtain political information. 35% of the youth participants accepted that they share, like, dislike or comment on political issues. 34% respondents don't engage in any political activity on twitter and Facebook while 31% occasionally share, like, dislike and comment.

55% of all respondents think that twitter and Facebook bring political awareness. 38% of users accept that twitter and Facebook bring political awareness while 7% do not agree with it.

Conclusion :- The present study "The Role of social media in creating Political awareness among the Youth" provides insights into the observation of today's youth towards the popular social media platforms Twitter and Facebook. According to the findings of the study Facebook is the most preferred social networking site to get and access political information among youth. Most Facebook users visit the site daily while twitter is not that much preferable for political updates among youth. Data shows 63% participants don't use twitter.

Respondents opine Facebook as their favourite social media form, and then they like YouTube as second popular form of social media.

61 percent of users access political information on Facebook for at least 10 to 15 minutes each day. While 39% use Twitter for at least 10 to 15 minutes every day to keep up with political affairs.

Today's youth are users of social media which are the most exposed to this information. Social media is a key source of political information, and it has an indirect impact on youth's political interest, that has the potential to grow. Majority of the sampled population is agreed with this argument that the use of twitter and Facebook can brought political awareness.

References :-

1. Lister, M., Dovey, J., Giddings, S., Grant, I., & Kelly, K. (2008). *New Media: A Critical Introduction* (2nd ed.). Routledge.
2. E, T. P. (2020, October 28). *Shodhganga@INFLIBNET: Knowledge gap hypothesis in the context of Political participation of youth with reference to social media users*. Shodhganga. http://shodhganga.inflibnet.ac.in:8080/jspui/handle/10603/304660
3. Enli, G. S., & Moe, H. (2015). *Social Media and Election Campaigns: Key Tendencies and Ways Forward* (1st ed.). Routledge.
4. Fuchs, C. (2017). *Social Media: A Critical Introduction* (2nd ed.). SAGE Publications Ltd.
5. Baumgartner, J. C., Towner, T. L., Ancu;, M., Bailey, M. B., Brown, K. J., Conway-Silva, B. A., Druckman, J. N., & Evans, H. K. (2018). *The Internet and the 2016 Presidential Campaign*. Lexington Books.
6. Deelan, T., & Vobi, I. (2016). *(R)evolutionizing Political Communication through Social Media (Advances in Public Policy and Administration)* (1st ed.). IGI Global.
7. McNair, B. (2011). *[An Introduction to Political Communication[AN INTRODUCTION TO POLITICAL COMMUNICATION] By McNair, Brian (Author)Apr-20-2011 Paperback*. Routledge.
8. Abdu, S. D., Mohamad, B., & Muda, S. (2017). Youth Online Political Participation: The Role of Facebook Use, Interactivity, Quality Information and Political Interest. *SHS Web of Conferences*, *33*, 00080. https://doi.org/10.1051/shsconf/20173300080

Exploring The Effect Of Work- Life Balance And Possible Outcomes Among Nursing Community (A Literature Review)

Dr. V. Ramanithilagam*

D. Bhuvaneswari**

Abstract :- 'Work Life balance' though a distant dream in the past, is now incorporated in many work places. It is a constant task to establish a work life balance and many organisations are working on it to make the procedure easier for their workers. The contribution of Health care industry especially during this present pandemic situation is highly commendable. The study aims to discuss challenges met out by nursing community due to increasing work pressure and scarcity of resources. Nurses working in hospital environments are vulnerable because it can be challenging and stressful in the context of nursing practice. The study aims to explore the ongoing issues of nurses in balancing their social roles in work and non-work situations by way of in sighting with the documented literature reviews. This study has been chosen in order throw more light in to the grey areas WLB that would bring the possible outcomes of work-life conflict. The interrelationships between the factors from previous reviews are analyzed for similarity, variance, and correlation in a clear manner to suggest the practical solutions for the betterment of nursing profession. Better work life practices can yield rewards in terms of being motivated, increased productivity and reduced turn over for them.

Keywords: work-life balance, health care industry, nursing community, literature review, work-life conflict.

Introduction :- Working men and women today face a wide range of everyday challenges that often generate imbalances between their working lives and their family lives. The present Global era is to struggle with the epidemic challenges that exacerbate work-life balance of hospital industry especially confines to nursing community. Lack of work-life balance thus impacts the working individual's performance both in work place and in personal life. It is a dual advantage for both individual and organisational while incorporating work-life program. For mutual benefits, a successful work-life practice promotes a symbiotic partnership between the employee and the employer. The Work Foundation states that work life balance can be achieved only: 'when an individual's right to a fulfilled life inside and outside paid work is respected as the norm – to the mutual benefit of the individual, business and society.' Nursing profession is a demanding one with its unique job challenges, the late night shifts, interactions with patients, need for utmost patience, and relationship with doctors and specialists make this job one of its kind. In a developing country like India, with its teaming population, Private Multi-speciality hospitals are fast growing. The service standard over here is on par with the Global standards. Hence there is a need to analyze the working environment of nurses along with their salary, leave benefits, initiatives of flexi work options and career development.

Objectives Of The Study :- To know the conceptual aspects of work- life balance by giving multidimensional rather than a stereotype approach in order to study the different dimensions of work-life balance with the help of review of the literature.

- To explore the possible outcomes with the current work schedules of nursing community

*** HOD, Department of Management Studies, AVS Arts & Science College, Salem, Tamilnadu.**

****Ph.D Research Scholar (Full-Time), Department of Management Studies, Periyar University, Salem – 11, Tamilnadu.**

- To study major research work carried out in Work- life balance area in order to analyze the present level of awareness and existing work environment among staff nurses

India's Health Care Industry :- India's healthcare sector is one of the largest and fastest developing professions in economic terms. In the Indian healthcare industry rendering services, the hospital industry is an essential element of the value chain, recognised as the healthcare delivery industry, which develops at an annual rate of 14%. India's excellence in modern medicine and its ancient techniques for physical and spiritual well-being make it the most convenient and precious destination for good health and peaceful living.

The patients frequently expects how well the staff nurses interact and work together and it is also indicated how happy the staff nurses appears with lots of smiling faces in spite of their issues and challenges, regulatory environment and most importantly quality control which influences the work-life balance of the employees. Research has shown that investment yields a positive return in all of these categories of response to work-life balance and that a relatively reasonable investment in all of them is related with quantifiable increase in productivity, engagement, retention, improved health outcomes and higher shareholder value. In hospitals and other health care facilities, nurses are important to the administration of patient care. Nurses take care of the patients and their family and in turn influence the productivity and performance of hospitals.

Methodology :- The study is entirely based on secondary data and literature review methodology.

- The study would be a qualitative approach to the determinants, intervening variables and their consequences etc.
- Through the analysis of existing literature, an attempt has been made to provide an outline of several facets of this research.
- The original research work carried out by numerous researchers in work-life balance has been carefully analysed to assess the importance of the nursing community and their work-life balance.

Review Of Literature Pertaining To Nursing Profession

Tracy, Patricia, & Jack conducted the study to correlate the psychological symptoms and factor structure of the health professions. The study revealed that the four key factors leading to work-related stress are the Lack of perceived potential for enrichment, patient treatment, interpersonal conflict, and conflict over family engagement (Tracy, Patricia, & Jack, 1995)

Demir A, Ulusoy M and Ulusoy M F conducted a descriptive, cross-sectional and analytical study to determine burnout factors in career life and private life of nurses working in the university and state hospitals in a city. A sample of 333 nurses was reached and data was collected using questionnaire which consists of two parts, in which the first contains data pertaining to socio-economic profile of individuals. From the findings it was found that higher education level, career experience and higher status has decreased the burnout level whereas working in night shifts increases the burnout level. It was also found that nurses who suffer from inter-relationship problems with their team members are not satisfied with their working conditions. It was identified that factors like having difficulty in child care and in doing house chores, children as well as their own health problems, economic hardships and transportation difficulties has increased the burnout level (Demir, Ulusoy, & Ulusoy, 2003)

Richard Jenkins & Peter Elliott undertook a study to compare the levels of stressors among skilled and unskilled nursing staff in acute mental health. The results revealed that qualified nurses experienced higher work load stress than the unqualified one. The study further suggested that higher levels of support from coworkers related to lower emotional exhaustion. (Richard & Peter, 2004)

Pinikahana & Happel undertook a study to measure the level of stress among 136 rural psychiatric nurses working in two rural mental health services Victoria, Australia. The results also suggested that

paradoxically, the majority of rural psychiatric nurses were satisfied with their job (Jaya & Brenda, 2004)

Laura Lin and Bryan in their article analyzed the inter-related issues that impact the nursing care system. The researchers discussed that standardized Educational reform, nursing education at higher level, apt staff ratio laws, and periodic training which includes powers in policy-making can result in nurse empowerment and better patient safety (Laura & Bryan, 2007)

Pal and Saksvik conducted a cross-cultural analysis among 27 doctors and 328 nurses from Norway and 111 doctors and 136 nurses from India. They found that job stress predictors differed in India and Norway. Work- Family conflict was one among the predictor for Norwegian nurses, while in case of Indian Nurses high family-work conflict was one of the predictors of work (Pal & Saksvik, 2008)

Patel et al., conducted a study among 80 female nurses who were working in a government hospital. The researchers investigated the impact of career life on family functioning, its association with job satisfaction and the role of Life partner's support. Descriptive statistics and correlation was used to explore the association among job satisfaction, work-family conflict (WFC) and spousal support. The hypotheses that job satisfaction and WFC would be negatively correlated, that job satisfaction and spousal support would be positively correlated, and that WFC and spousal support would be negatively correlated, were tested. Hypotheses were wholly proved. The study mainly emphasis on the role of spousal support and its relationship between job satisfaction and work - family conflict (Patel, Beekhan , Paruk, & Ramgoon, 2008)

Hiroshi, et al., in their article examined fatigue among 444 married male physicians. He revealed that prolonged fatigue was mainly associated with high strain-based work interference with family. He further suggested that the hospital administrators should take responsible and provide opportunities for doctors to learn how to manage Work-Family conflict and to take measures to improvise the working conditions in hospitals (Hiroshi, et al., 2011)

Ipseeta satpathy and B.Chandra Mohan patnaik made a comparison on Work-life balance of employees in government and private sectors from 337 respondents in total. The study reveals the general perception and impact of work life balance towards the private and career life and influence of demographic factors on WLB (Satpathy & Jena, 2014)

Lilia de Souza Nogueira et al., in their study discussed the associations between the three domains of Burnout and the characteristics of the work environment of the nurse. The findings of this research paper illustrate that emotional exhaustion has been related in a more constant and linear way with the characteristics of the environment. The researchers conclude that autonomy, organizational support and control over the environment which were the characteristics of the work environment were related to Burnout (Lilia de, Regina, Erika de, Mariana, Ruth Natalia, & Dina de, 2018)

Marianna Diomidous investiagted the relationship between health conditions of medical doctors and nurses and their physical activity in their work environment and its impact on patient's health. Data were collected using questionnaire from 204 physicians and nurses. The results of the statistical analysis indicated that there exist a positive relationship between the level of day-to-day physical activites during the work and the free time of the participants with parameters that are related to sleep disorders (Marianna , 2020)

Findings And Suggestions From Literature Review :- In the competitive global scenario, employees in service sectors face many complications with regard to work-life balance. In particular, the nursing community is confronted with heavy challenges especially those who work in critical wards. From the work environment of staff nurses it is specifically found that they are disturbed with their extended work load and night shifts system increase the pressure. Continuously working with patients leads to stress and results in negative impact on family side. In this regard the sex, marital status, and living

style influences the work-life pattern of nurses results in different perceptions. At present the existence of nursing staff and patient ratio is 1:5. But, as per the critical patient ratio's rule it should be 1:1(one staff equal to one bed) because in few private hospitals acute shortage of nursing workforce is realised. Hence low staff patient ratio sometimes results in frequent double duty. In connected to this issue, hospital service rules such as leave policies, work load allotments and promotions can be altered in consulting with staff nurses. Providing adequate resting time between shifts, avoiding permanent night work, limiting successive evening or night shifts to three shifts and using forward or clock wise rotation in rotating systems should be strictly followed for betterment of their work-life balance.

Among the health care workers, Nurses were frontline responders, who firstly recognize and treat novel corona virus patients. Their role has begun even before the pandemic disease has an opportunity to cause widespread destruction. The lockdown situation exacerbated the problem for nurses working in Government hospitals. But government hospitals in India are inundated with lack of resources, facilities, deficit of Personal Protective Equipment (PPE) kit. Government hospital nurses were suffering from irresistible workload, prolonged shifts, shortage of PPEs and panic of carrying virus to home. The government can adopt appropriate welfare measures to nurses like by arranging psychological and as well as skill oriented training programmes for updating themselves, unbiased job rotation, provision of adequate medical equipments and protective devices, and regular intervals.

Conclusion :- From this research, it is found that nurses' work life balance is often difficult. To prevent this, a periodic assessment is important in both in their job and family- life satisfaction; or else they will be exposed to extreme pressure. Private hospitals must also maintain the work-life balance of their workers through their programmes and work policies. It will lead to better performance, enhanced morale and dedication, resulting in greater work satisfaction. Ultimately, this would improve the organization's performance and productivity. Hence, it is highly essential to maintain balance the work and life among nurses. Organizations and nurses conjointly must work together to maintain a better work-life balance and combat this pandemic situation.

References :-

1. Demir, A., Ulusoy, M., & Ulusoy, M. (2003). Investigation of factors influencing burnout levels in the professional and private lives of nurses. *International Journal of Nursing studies, 40*(8), 807-827.
2. Hiroshi, O., Koji, W., Masatoshi, K., Mayuri, A., Toshiaki, H., Toru, Y., et al. (2011). Work-family conflict and prolonged fatigue among Japanese married male physicians. *International Archives of occupational and Environmental Health*, 937-942.
3. Lakshmi, K., Ramachandran T, & Boohene D. (2012). Analysis of Work Life Balance of Female Nurses in hospitals - Comparative study between Government and Private hospitals in Chennai. *International Journal of Trade, Economics and Finanace* .
4. Laura, R. L., & Bryan, L. A. (2007). Addressing the Nursing Work Environment to Promote Patient Safety. *Nursing Forum*, 20-30.
5. Lilia de, N. S., Regina, S. M., Erika de, G. S., Mariana, S. A., Ruth Natalia, T. T., & Dina de, M. L. (2018). Burnout and nursing work environment in public health institutions. *Revista Brasileria de Enfermagem*.
6. Marianna , D. (2020, June). Sleep and Motion Disorders of Physicians and Nurses Working in Hospitals Facing the Pandemic of COVID 19. *Med Arch*, 210-215.
7. Pal, s., & Saksvik, P. (2008). Work-Family conflict and Psychological work environment Stressors as predictors of Job stress in a cross-cultural study. *International Journal of Stress Management, 15*(1), 22-42.
8. Patel, C., Beekhan , A., Paruk, Z., & Ramgoon, S. (2008, March). Work-family conflict, job satisfaction and spousal support: An exploratory study of nurses' experience. *Curationis, 31*, 38-44.
9. Richard, J., & Peter, E. (2004). Stressors, burnout and social support: nurses in acute mental health settings.
10. Satpathy, I., & Jena, S. (2014). A comparative study on Work-Life Balance of Nursing Staff inPrivate and Government Hospitals. *International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology, 3*(1).
11. Tracy, E., Patricia, L., & Jack, M. (1995). Symptom Correlates and Factor Structure of the Health Professions Stress Inventory. *Psychological reports*, 1563-1568.

Anglo-Nyishi Conflicts over the control of Natural Resources

Dr. Tade Sangdo*

Abstract :- Traditionally, the Nyishis only depended upon their own produce from agriculture and forest resources for their livelihood. But during the colonial period, the Nyishis explored the importance of their natural resources which were highly demanded by the British merchants such as natural rubber, coal, ganja (marijuana), elephants, etc. Hence, they control all such natural resources for trade purpose and restricted outsider's for collections. In process of the transactions, there were many disputes occurred between Nyishis and the British merchants but the British settled almost every disputes and allowed transactions of natural resources as per time and situations. Hence, the paper is intent to bring out all those issue related to control over the natural resources and conflicts due to transactions of natural resources.

Keywords: British, Nyishi, Natural-Resources, Conflict and Trade.

Introduction :- The Nyishi is one of the major tribe of Arunachal Pradesh and having settlements in seven districts- Kurung Kumey, Kra-Dadi, Papum Pare, Lower Subansiri, Kamley, Pake-Kessang and East Kameng districts. They are also settled in few pockets of Sonitpur and Lakhimpur districts of Assam (Hina, 2012:14).

Traditionally, the Nyishi had limited access to the outside world for their day-to-day use of commodities. They only depended upon their own produce from agriculture and forest resources. Moreover, people were self-sufficient in view of their limited wants in life and also situations of inter-clannish or inter-ethnic confrontation compelled them to content themselves with their own means and mode of production '(Das, 2005:23)'.

The mutual exchange and barter system was popular practices in the traditional Nyishi economy which was base on goods and services exchanged. All kinds of goods and services could be changeable. The goods to goods exchanges were very common in the Nyishi economy. Popular exchanges commodities were agriculture products, handicrafts, domestic animals, ornaments, forest gathering articles, and food and drinks items. Generally, exchange was done through the inter-family, inter-clan, inter-village and intra-village barter. It was done on the basis of easy access particularly with close friends, relatives and neighbouring villages. Give and take of goods and services could be on the basis of mutual reciprocal benefits of exchangers. The Nyishi traditional economic was a natural economic, which ethnologists and sociologists have termed as 'non-monetary' or 'subsistence economic' '(Showren, 2009: 151)'. Exchange with long distance people was difficult due to various reasons such as inter-tribe feuds, mutual suspicions of attacking, absence of market facilities, lack of transport and communication and absence of modern education or awareness '(Jha, 1985:393)'. During the colonial period, the Nyishis continued to control over the natural resources found in their jungle for trade in the British markets.

***Assistant Professor, Department of History, Rajiv Gandhi University (A Central University), Arunachal Pradesh, India.**

After annexation of Assam, the British found the Nyishis settling in the northern border of Lakhimpur and Darrang districts of Assam. They were an atrocity in nature and constant raids to neighbouring villages for small reasons. There was lack of common law and proper governing system in the Nyishi society. The Nyishis settled in both inside and outside of the British territory and those who reside outside of the Inner Line were independent in nature and followed their own sovereign but those who resided inside of the Inner Line followed the British rule and accepted the sovereignty of British authority. They were treated as British subjects and were protected by the British government against their enemy or hills raiders '(political proceedings: 1908)'. Maximum population of the Nyishi was settled beyond the Inner Line but a few villages were located within the Inner Line which came under the British administration. Throughout the colonial period, the hills Nyishis were repeatedly raids and outrages to the British subject. They blamed to the British subjects for various reasons to raids in the plains, such as blaming to plains people of alluring their women, slave, and criminals and offering them to shelter in the British territory; blaming them for spreading epidemic in hills villages and lose their relatives lives, blaming them to stealing animals and fish of the hills Nyishis, claiming and arguments for right over natural resources; and conflict due to trade activities. Among them, the claiming for right over natural resources and conflicts due to natural resources was one of the major issues for British-Nyishi relations. Hence, the paper is intent to bring out the unrest in between the British-Nyishi due to trade activities.

Objective and Methodology :- The main objective of the paper is to review the questions of control over natural resources found in the Nyishi hills and various conflicts on the process of transactions to natural resources. During colonial period, natural resources available in the Nyishi hills were become an important trade items and hence, both the British merchants and Nyishis were actively involved in the trade activities. As results, many disputes occurred amongst the traders.

In order to construct a systematic analysis and interpretation of the paper, both primary and secondary sources are used. Few relevant books used as secondary sources but primary sources mostly archival materials like the British Survey Reports, Tour Diaries, Official Correspondence and Political Proceedings collected from the National Archives, New Delhi; State Archives, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, Government of Assam, Guwahati and interview with local Nyishis have come to great help to develop this paper.

Conflicts over the control of Natural Resources :- The trade became a centre of attraction in the British-Nyishi relations and the number of natural resources in the hills were also popularised under British markets like, natural rubber, Coal, manjeet (red dying), ganja (marijuana), elephants, etc. but the trade did not flourish in a peaceful manner. The Nyishi people used to resist and restrict the outsiders to acquire anything free of cost from their jungle and instead they charged them for taking any forest resources. Hence, number of disputes had been reported by the plains people to the British authority with the issue related to control the natural resources and its utilities.

The natural rubbers were available in the Nyishi hills and were highly demanded by the British merchants. Hence numbers of conflicts between hills Nyishi with the British subjects had been reported. Many disputes had happened between hills Nyishis and the Kaya traders due to the violation of a commercial agreement concluded before. For example, in February, 1899, a few hills Nyishis concluded commercial agreement with three Nepalese of Borgola from Rai Myising, to tap the rubber in the hills with fixed payment of Rs 3500 (Rs 2000 as salami and Rs 1500 as poll-tax on 300 Nepalese cutters at the rate of Rs 5 per head). But when they reached the Kaya shop at

Borgong and demanded money as agreed earlier, the Kaya traders were reluctant to pay them. There started arguments which led the matter to turn into conflict between hills Nyishis and Kaya shop incharge. Thereafter, on 30th March, 1899 on the way to return to the hills, they saw five plain people tapping rubber and they seized three of them along with three guns and other properties in the encampment which belong to Mr. Chi-holm's elephant Mahals. Later, with intervention of the then Deputy Commissioner of Darrang, Nyishis got their claims amount and case settled peacefully. The then Chief Commissioner of Assam declined to punish the offenders but warned them to take law in their hands and stop the issue of Inner line pass for rubber collection in the hills '(Foreign Proceedings, 1904)'. Similarly, many small conflicts had been reported to the British authority owing to tap natural rubbers in the Nyishi hills.

Hence, the then Chief Commissioner of Assam issued a letter No.412 For.-3402P, dated the 17th August,1899 to the then Deputy Commissioner of Darrang regarding the temporary suspension of the issue of Inner line passes for collection of rubber in the Nyishi hills. In 1900-1901, the relationship between Nyishis and Kayas was still somewhat strained. Therefore, the British government in Assam directed that the hills Nyishi would tap their own rubber and bring it to the market by themselves '(Foreign Proceedings, 1900)'. Thereafter, hills Nyishis started to tap their rubber and resisted against the plains people to tap the same in the hills. As a result, in 1901, Nyishis of Miripathar village detained and captured five Nepali rubbers- cutters who were employed under the firm of Rai Megraj Bahadur of Tezpur. The main cause was tapping rubber beyond the Inner line which was being stopped by the order of the Chief Commissioner of Assam '(Foreign Proceedings, 1901)'.

In compliance with the order of the Chief Commissioner of Assam, the British merchants demanded the rubber from the Nyishis only. Moreover, they were experts at extracting it. Capt. Lightfoot visited Nyishi villages of the hills and instructed them to collect wild rubber but they seemed to be very busy in harvesting their crops. Hence, he told them to tap rubber positively in the last week of December when they finished their harvesting. But everyone was complaining that the rate of twelve *annas* per seer was low and should be raised upto Re. 1/- per seer, although the previous rate was only eight *annas* per seer '(Bor Report,1933)'.

Hunting elephants in the Nyishi hills was another important issue in between Nyishis and British merchants. For example, earlier hunting of elephants was not restricted in the Nyishi jungle but during the British regimes, the Nyishis took charges on hunting of elephants in their areas. Charging for hunting elephants in the Nyishi jungle became a trade for them with the British merchants. Sometimes, conflict occurred due to misunderstanding or cases not getting settled peacefully. For example, in March 1903, some of Miripathar Nyishis had attacked the Chishom's elephant stockade on the Bihmari river due to reported non-payment of fees in lieu of hunting elephants in the Nyishi territory. Therefore, the British government stopped leasing out the Elephant mahals No. 5 and 6 for next year '(Annual Report, 1904,)'. Hence, the Nyishis also refused to give permission for catching elephants in their region. They claimed an extravagant to a half share of the royalty on elephants caught in their territory beyond the Inner line. Also they complained about the bad treatment by the Kaya traders with whom they had dealings on rubber '(Foreign Proceedings, 1907)'.

Sometime, they had conflicts on the process of sell their goods and purchased goods from the British merchants. Trade items were not regulated by the British government and also prices were not fixed. The traders and customers placed their best arguments and bargaining to purchase and sell the goods which led them into conflicts with each other. For example, in November, 1904

some hill Nyishis reached Joyhing garden and bartered their goods to Kaya merchants but were dissatisfied dealing with Kayas. As a result, they knocked down one of the woman's coolie's house and took away her baskets, umbrella and clothes and disappeared into the hills. They wanted to take revenge and recover their loss from whomever they came across on their way back to the hills. Later, British recovered all the articles but could not punish the offenders '(Annual Report, 1905)'. Like that, many times, Nyishi tried to recover their lost from anyone on the plains because of their dissatisfaction to sell their goods and anger due to bargaining. Sometime, they used to get involved in conflict to control the periphery for keeping their goods in the open bazaar for trade activities in the plains. Trade fairs were usually organised in the open place and the shop system did not exist. Hence, many conflicts occurred for area to keeping their goods, for instance, in 1902, some Nyishis had visited the North Lakhimpur bazaar and conflicted with one Nepali Rupnarain, herdsman of a buffalo *khuti* near Silonobari tea estate '(Foreign proceedings, 1903)'. The reason for the altercation was on the ground that the buffaloes were grazed within their jurisdiction. They assaulted Rupnarain and drove his eighteen buffaloes '(Foreign proceedings, 1904)'.

Trade transactions of forest products (caoutchouc, timber, bamboos, canes, etc.) from Nyishi hills to the British subjects were largely practiced and it was registered by the local forest officers under the supervisions of the Deputy Conservators '(Strong Report, 1910)'. The timber imported from hills to plains was 48.2 per cent in year of 2010 which was 2.9 percent less than previous year. The quantity was also decreasing due to the opening up of some new routes in the Jalpaiguri district and some trade passes through these routes but the registration on such cases had not been found proper for them. Hence, a large number of low quantity timbers had been imported to the plains without proper verification. '(Annual Report, 1910)'.

Earlier, the Nyishi did gave much important to coal found their jungle but when they came to know that the coal is an important trade item under British rule, they started to control and transact it with the British merchants. For example, in 1872, Major Trotter with six constables of Helem guard and Nyishi gams of plains had visited the western Nyishi villages in search of coal deposit. The chief of Kaleng and Pareng Nyishi villages came into their camp and informed about the coal deposit in their villages. They asked Rs 200 as rent in case the British government used their coal mine (Michell, 1973:200). Thus, coal also became an important part of the British-Nyishi trade relations. Similarly, Ganja (marijuana) was also largely found in the Nyishi jungle and was regularly transactions with the British subjects. There were many cases of smuggling of ganja from hills Nyishis to Assam were detected. The British government used to warn the Nyishi people for such activities '(Annual Report: 1939-40)'.

Conclusion :- Traditionally, the agricultural produces and natural resources found in the jungle were a great help to the Nyishis for their livelihood. Very limited barter trade was done on the basis of their personal relations and friends. With establishment of British rule in Assam, the trade activities of the Nyishis of the adjacent Assam were largely active due to encouragement of the British government in Assam. Therefore, the Nyishis used to control their natural resources which were highly demanded by the British merchants, for example, collections of natural rubbers, coal, timber, cane, elephant, etc. were restricted to outsiders. They used to charges the amount for collecting such types of natural resources in their jungle. Later, numbers of unrest had started brewing between Nyishi traders and the British subjects due to different reasons i.e., arguments for prices of the items, cheating against promises made before, collection natural rubbers and others goods in the Nyishi territory, hunting elephants without payment, and so on. But unrest due to trade was amicably settled down and trade was allowed to happen continuously with little

interruption in between. Trade was a great help to calm down the British-Nyishi relations. Both the British and Nyishi get benefits. The British was to partially succeed, to control natural resources of the Nyishi hills through trade and also partially exposed the resources available in the Nyishi hills. Large numbers of the Nyishis regularly come to the British markets to sell their goods and purchase the British goods. Similarly, the Nyishis also get benefits like selling their natural resources to the British merchants; explorer the important of trade items in their hills, and so on. Hence, to question of control over the natural resources of the Nyishi hills and its utilisations became an important part of the study to the British-Nyishi relations.

References :-

1. Assam State Achieve, Guwahati, *Foreign Proceeding-B*, May 1903, Nos. 79-84.
2. Assam State Archive, Guwahati, *Annual Report on the Native States and Frontier Tribes of Assam, 1904-05*, Printed at the Assam Secretariat Printing Office, Shillong, 1905.
3. Assam State Archive, Guwahati, *Annual Report on Trans-Frontier Trade 1909-10*, Printed at the Eastern Bengal and Assam Government Printing Office, Shillong, 1910.
4. Assam State Archive, Guwahati, F. W. Strong, Esq., ICS, Officiating Director of Agriculture, Assam" *Report on the Trade between the Province of Eastern Bengal and Assam and the adjoining Foreign tribes and Countries*, 1909-1910.
5. Das, Smriti. *Assam-Bhutan Trade Relations 1865-1949*, Anshah Publishing House, Delhi, 2005.
6. Hina, N. N. *Customary Laws of Nyishi Tribe of Arunachal Pradesh*, Authors Press, New Delhi, 2012.
7. Jha, S.D. *The Wealth of Arunachal Pradesh*, Mittal Publications, Delhi, 1985.
8. Michell, John, F. *The North East Frontier of India (A Topographical, Political and Military Report)*, Vivek Publishing House, Delhi, 1973.
9. National Archive of India, (NAI), New Delhi, *Foreign Proceeding*-A, March, 1900, Nos.1-4.
10. National Archive of India, New Delhi, *Foreign Proceeding*-A, September, 1904, Nos.1-60.
11. National Archive of India, New Delhi, *Foreign Proceeding*-B, May 1907, Nos.7-10.
12. Showren, Tana. *The Nyishi of Arunachal Pradesh: An Ethno-historical Study*, Regency Publications, Delhi, 2009.
13. State Archive of Arunachal Pradesh, Itanagar, *Annual Report on the Native States and Frontier Tribes of Assam, 1903-04*, Printed at the Assam Secretariat Printing Office, Shillong, 1904.
14. State Archive of Arunachal Pradesh, Itanagar, *Foreign Proceeding*-B, May 1901, Nos.1-12.
15. State Archive of Arunachal Pradesh, Itanagar, *Tour Diary of N.L. Bor, Political Officer, Balipara Frontier Tract, 1933.*
16. State Archive, government of Arunachal Pradesh, Itanagar, Annual Report on the Frontier Tribes of Assam, 1939-40, Printed at the Assam Government Press, Shillong, 1940.
17. State Archive, Government of Assam, Guwahati, Political Proceedings-A, May 1908, Nos. 1-4.

Media Trial and its Effects on Indian Judiciary

Tarun Goma*
Dr. Bhawani Shankar**

Abstract :- The Judiciary and Media both are supreme pillar of Indian Democracy, Due to TRP media begin coerce the Judicial proceeding, The Media get freedom in under the "Article 19 (1) (a) of Indian Constitution" it provide "freedom of speech and expression". Under "Freedom of press", Media continued to report and publishing articles build on interviews with Testimonies and other parties pending before the Court and in so doing may pre-judge the case and influence the administration which can cause miscarriage the justices. The judge has to pass judgment based on the facts and evidence, produced a fair judgment, but the tendency of the media affects the opinion of the judges and forces the judge to passing the judgment on the against of the accused even though accuse is not guilty. This study focus on how such "media trial" effect on the ongoing clash between the "Freedom of Press under Article 19" of the "Indian constitution" and "Right to Fair Trial under Article 21 of the Indian constitution".

Key words: Media Trial, Fair Trial, Democracy, Judiciary, Free and Fair Journalism, Human Rights. Article 19.

Introduction :- Media is always considered as a watchdog of the society. It's immensely predominant free and fair media in every countries. Its vast, diversified and representative democracy in India. The media must work without partiality or bias in any way given that the media often takes on the Oppositions role. "Media is backbone of Indian democracy". The roots of India media is very deep and versatile. In society the media has wide positions. Media is important in shaping the society's opinions and can shift the whole viewpoint from which people view different events. The media communicates information on a range of topics such as politics, cultural affairs, foreign events and crimes, government policy, culture, the environment, scientific technologies and development. The freedom, independence, and power of the media, especially in a highly diverse society such as India, constitute the cornerstone of the democracy.

"Freedom of speech and expression" is immensely important for an effective democracy. "I would prefer to see an absolutely free press that poses the dangers of misuse of that freedom than an exploited & controlled press," said "Former Prime Minister Jawaharlal Nehru" Only a fair media will create a good democratic culture. ""The survival and bloom of Indian democracy is very much due to the expression and power of our press.". The development of groundless opinions in a case that directly affect a credibility of the individual irrespective of the decision of a court, such as the newspaper, TV, Radio, Instagram or Facebook, is called a social media trial. In a media trial there is no legality. "Media Trial is a contempt of court" and must be punished journalists. However, it's an investigative journalism, in simple terms, in the nation which is completely legal. Even before the Court of law may pronounce its decision, media trial can be represented as a foresight of innocence or of a person's guilt. On High publicity court cases, Media have also been accused of creating a public climate of hysteria which makes it almost difficult to obtain a fair trial. Many times, it is not possible for the defendant to live his or her entire life without constant media scrutiny, even though the accused is found innocent. In

*** PhD Scholar, School of Media & Communication Studies, Galgotias University, Greater Noida.**
**** Assistant Professor, School of Media & Communication Studies, Galgotias University, Greater Noida.**

Criminal case law "accused has rights to a "fair trial and innocent", unless there is reasonable doubt that they are found innocent. Exclusive access media coverage goes a long way to reporting and publishing witness interviews, family and victims' statements, legal fraternity etc. The judicial mind in particular can be detrimental to the trial process.

This really affects public opinion, as the mass media hits the public opinion, Trial through the media means an effect on the image of a person's newspaper and TV coverage, which creates a wider sense of guilt independent of any decision in the case. "Freedom of the media" seen as "freedom of the Peoples" in today's world. Media overlooks the core concept behind the trials in India that is "guilty beyond reasonable doubt" & "innocence until proven guilty". The media inevitably maligns and tarnishes the reputation of merely suspect. By emphasizing one-sided statements and following the simple path to simply nurture public insults without attempting to discover the truth, the media can be very harmful. "Freedom of speech and expression" is strongest lead to help the media performs it's perform.

Review of Literature :- "Media Glare or Media Trial Ethical Dilemma between two Estates of India Democracy Ray & Dutta" (2015) this analysis is empirical. Results suggest that often judges are obliged to take decisions according to media public opinion. Most of the times Media don't obey the Article 19(2). The research aims at exploring the importance of the participation of the mass media. It reveals that mass media play a leading role in the establishment of Justice People. "Kumar & Saxena Human Rights Media Freedom and Media Trial in India". The findings show that the media operates on human rights and for the country's constitution. The outcome reveals that privacy regulation competes with freedom of expression and speech. The study concluded that media play an important role in protect to the constitutional right. "Media Trial: A Threat to Fair Trial" Mahecha (2016) the outcome shows that the role of the media is changing from the last so many years. Media intervenes illegally in judicial proceeding. Most of the times, in the high-profile cases media tries to influence the judiciary. The media often handled themselves as judges and ruled in media hearings. Finally, the freedom to write honestly and the right to a fair prosecution dispute. "Impact of Media on Trial", Kapoor (2020) explain the impact of media trial on a judicial decision. Some cases, which are considered high profile, have been given more intent by the media, this is called media trial. In public consideration of a particular view in society, media plays a major role. Media does not show Positive aspects of society but it hindered the society with its negative opinion.

Influence of Media on Accused :- The defendant's severe bias could be where the media portray a suspects or accuse as though has already been proven "Guilty" long before the "courtroom". While the perpetrator is eventually acquitted in court after the due process, this acquittal cannot allow the accused to restore his damaged reputation in society. Excessive media coverage characterizing him as a criminal suspect equates to an unfair involvement of justice in the course of disrespect by the media.

Influence of Media on Witness :- When the names of the testimony are released, there is a risk that from the accused and the police will put their witnesses under pressure. The witnesses want to retract in the early stage to get out of the mystery. Protection of witnesses is then a grave victim. This show that the question about whether hostile evidence is admissible.

Influence of media on Lord Justice & court :- Judiciaries are not "immune" to "criticism" over their legal conduct or purely private capacity. However, there is concern where criticism of them is ill-informed or completely baseless and may threaten to damage public confidence in the judiciary. A judge must defend himself from such pressures. Media publication unintentionally, may affect judge or juries' whether human beings are not receptive to those indirect effects. Therefore at the Court Lord Denning divulge that the judge will not be influenced by media trial.

Objective :- The aim and the Objective of the present research is ultimately through the following interpretation. (i) Exploring the influence and expression of public opinion on the media. (ii) To study the impact of media trial on Victim and Judiciary. (iii) To study the Violation of Human Rights and Fail Trial. Hence the objective of study that, media is influential mode to utterance of public opinion and its impact on Fair Media Trial.

Methodology :- In this study I selected content analysis and case study, the research question has been analysis through content and case study. The analysis of media is critically influential mode to utterance of public opinion, the various new report, Information and dispersal & media trial on "sub-judice" cases have been study comparatively, hence the literature of reviewed has been considered during drawing the conclusion, Suggest action to improve media efficiency as the "Last pillar of democracy".

Case Study in Indian Scenario and the Debate :- On September 14, 2020 around 9:30am, the country was shocked by recent rape of a nineteen-years-old "Dalit girl" allegedly by four "Upper cast" men. That incident was known as the infamous Hathras rape case. The victim & her mother went to work in the areas of the "Boolgarhi village" in "Hathras district" at around 9:30am. He worked in the areas of Thakur villagers. Often families used to visit these farms to cut grass for their livestock. Her mother was 100 meters far away from her daughter and heard squeal and scramble to find her body. She saw her body lying on the ground, her tongue was cut out. She enfold the body, Relative claims that the police delayed the registration of an "FIR" and even ordered them to get the victim out from the police station. Police noted the victim's testimony: "*Gala daba diya* (They strangled me)." Asked why, she said, "*Zabardasti Na karne de rahi taiku* (Because I did not let them force me)."

The dying declaration of victim was recorded before the "District magistrate" at "JNMC hospital" victim mentioned the three accused Sandeep Singh 'Luvkush Singh', 'Ravi Singh'& 'Ramu Singh' - accusing for sexual assault and Gang rape. The autopsy report was released the same day and more information was given. As a result of prolonged strangulation, the woman's spine was fractured. The study refers to an "indirect blunt trauma and resulting sequelae" fracture to her cervical spine (neck). The ligature on the neck is associated with an attempt to strangle. Qualify Dying declaration of victim ambit "Section 32 (1) of the Indian Evidence Act". The victim's mother announced that police had cremated the victims violently around 2:30 pm without the permission of their families, Victim's mother said- After the cremation of victim body this case was gaining national moment, peoples demanding the justice for the victims and Raise questioning on the 'Uttar pradesh' government and the government's intention- The "Sexual Assault of forensic Report'' released on 22 September 2020 Clearfield that "Complete penetration" in the vagina by the penis'' all the lines about ejaculation of semen as started as "DNK'' (Do not know) that time Victim was in unconscious mind that time.

On 25 September FSL Report confirm did not trace any semen or sperm cell in the vaginal swab. Vaginal swab was accumulate after the 8 days incident of alleged rape. In the "biological fact sperm" and cell cannot alive more then 2-3 days after ejaculation outer surface of the body. It was also confirmed that before the body of victims was cleaned by water, her genital area of body was washed and her undergarments changed before being hospitalized. In the "Section 375 Indian panel code" Little penetration of the vagina or any place or object contrary to a woman's will and consent "enough to establish the rape offence''. "How will the FSL team find evidence 11 days after the rape? After 2-3 days, sperm will not survive. They take hair samples, shoes, nail beds and vaginal anal pores; due to urination, defecation and menstruation; cannot display semen involvement" On December 18, 2020 CBI Filed the charge sheet against all four accused. "Allahabad high Court" allowed to monitoring all aspect CBI Investigation by the Supreme Court. All the Victim and case are under Trial yet. Case is Under Jurisdiction.

Discussion and Conclusion :- Freedom of speech is in every democracy an imperative right. Media also enjoy the same right and they doing the same for welfare of society from the broad perspective. The news sensation is not a new phenomenon, but it is important to play the role of police and judiciaries through investigation, evidence collection and decision making is major concern. In India, the criminal justice system follows the principle that accused haves right to a "fair trial" and is "innocent until proven" beyond "any reasonable doubt". However press have great experience to cover and print fraternal comments from witnesses & relatives of the victims, and lawyers that could damage the trial proceedings in a particular judicial mind due to special media coverage, in recent decades, in many cases of corruption, rape, sexual harassment, murder etc.

The activism of the press puts direct force on the adjacent authority to provide justice to the victims can involve and injure the accused and prove his innocence. The media begins to play an investigative role and exposes the person's guilt, which can result in suspicion in the person's normal mind and is often at risk of coercing the innocent. The situation raises some important legal issues before the person is accused of authority. "Media trials is a contempt of court", careless reporting and publicity stunt during the investigation phase "Sub-judice" matters. "Media Trial", where a separate investigation is being conducted by the media, public opinion is framed against the accused, let the public and the judges know in advance so that they are aware of the case. The tendency of investigative journalism contributes to crimes, criminal acts, prosecution, legal hearings, acquittal or prosecution of accused, which affects fair trial. The media trial affects the evidence, testimony will alter its claims due to media coverage and media considerations. The concept of equal justice, again an important consideration of the judiciary, has been underestimated by the media.

References :-

1. Nehru's speech on 20th June 1916 in protest against the press Act, 1910.
2. Amartya Sen, "The glory and the blemishes of the Indian news media," The Hindu, April 25, 2012..
3. Tata Press Ltd. v. Mahanagar Telecom Nigam Ltd.
4. State of Kerala and Anr.v. N.M.Thomas and Ors.
5. Justice R.S.Chauhan Trial by Media: AnInternationalPerspective,(PLOctS-38,2011), http://www.supremecourtcases.com/index2.php.,last visited on June 28,2016.
6. AbolishRather&KonicaSatan, Judicial InterventionintheSub-judice-The emerging issues of Trial by Media, Bharati LawReview, (2015).
7. Ray, A., & Dutta, A. (2015). Media Glare or Media Trial Ethical Dilemma between two Estates of India Democracy. Online Journal of Communication and Media Technologies, 5(2), 92.
8. Kumar, A., & Saxena, P. Human Rights, Media Freedom and Media Trial in India. SHODH PRERAK, 34.
9. Mahecha, M. (2016). Media Trial: A Threat to Fair Trial. Amity Journal of Media & Communications Studies (AJMCS), 5(3).
10. Supra note 3.
11. American Bar Association (Legal Advisory Committee on Fair Trial and Free Press), The Rights of Free Trial and Free Press, (Chicago, Ill.:1969)
12. Justice M. Jagannadha Rao, Law Commission of India, August, 2006
13. Does victim's oral evidence demolish forensic report: A study on hathras case. (n.d.). Retrieved 16 March 2021, from https://www.ijalr.in/2020/11/does-victims-oral-evidence-demolish.html
14. *Hathras gang-rape and murder case: A timeline*. (n.d.). The Wire. Retrieved 16 .
15. March 2021, from https://thewire.in/women/hathras-gang-rape-and-murder-case-a-timeline.

Problematising the Aesthetics of Tradition: A Reading of the R. K. Narayan Oeuvre

Dr Anju K. N.*

Abstract :- The works of R.K. Narayan exhibit the inherent values embedded in the spiritual, cultural, social and religious psyche of India. An analysis of his novels reveals his commitment to the ideals and beliefs of ancient India. The present paper attempts to explore the prominence of tradition in the social and cultural life of India as depicted in the Malgudi novels. In the constructed realm of the conservative South Indian society of Malgudi, tradition remains inviolable. It acts as watchword guiding the lives and actions of the Malgudians sometimes constraining them and many a time providing a safe and secure haven. In Narayan's Malgudi, those who uphold tradition lead a balanced life whereas those who digress are fated to lead a miserable, lonely existence. As Camus observes, the concept of tradition offers no scope for rebellion for the Indians. Consequently, even those who rebel end up just where they began.

Keywords: Tradition, culture, rebellion, digression, return

R. K. Narayan, the great Indian writer, through his works, has brought India accessible to the Western world. As Graham Greene, Narayan's mentor and friend rightly remarks, unlike Rudyard Kipling and E. M. Forster, Narayan offered him a second home. "Without him I could never have known what it is like to be Indian" (Introduction, *BA* i). Truly, Narayan's Malgudi presents a replica of the Indian society, more precisely the South Indian society. In "The Fiction Writer in India," Narayan makes a critical observation with regard to the role of a writer in the society. He contends that the fiction of the time was greatly coloured by the nationalist agitation gaining momentum in the country. "[T]he mood of comedy, the sensitivity to atmosphere, the probing of psychological factors, the crisis in the individual soul and its resolution and above all the detached observation, which constitute the stuff of fiction, were forced into the background" (qtd. in Iyengar 360). Narayan prefers to depict through his works "the way of life, of the group of people with whose psychology and background he is most familiar" (qtd. in Iyengar 360). He brings to light through his simple narrative style the oddities and angularities of a group of people caught in the most commonplace situations of life. No wonder Greene comments in admiration: "Whom next shall I meet in Malgudi?" (Introduction, *FE* 1).

The Hindu culture and philosophy form the bedrock on which Narayan's fictional realm is erected. The author's belief in the concept of world as 'maya' or 'lila', his karmic world view, passive acceptance of life all get replicated in his characters and their perception of life. The power of myths and epics in the social and emotional life of the Malgudians too is pervasive. Morality and ethics as well as tradition and customs occupy a predominant position in Narayan's Malgudi.

The present paper attempts to analyse the role of tradition in the conservative and conformist society of Malgudi. The Narayan novels explicitly bring out the impact of tradition in the Indian society. In the Indian social and cultural context, tradition remains sacrosanct. The karmic world view adhered to by the people of Malgudi plays an integral part in maintaining the inviolability of tradition. The law of cause and effect advocated by the principle of karma reduces man to a nonentity at the mercy of the universal forces. Man, as a mere object acted upon by the

*** Associate Professor of English,T.M. Jacob Memorial Government College, Manimalakunnu, Ernakulam.**

forces outside his control limits his possibilities and potentials. Acceptance becomes the norm when nonconformity is futile, pointless and self-defeating.

The significance of tradition is dexterously explored through the nonconformers—those who attempt to strike a dissonant note and thereby display their urge to assert their individuality and supremacy over the conventional, decadent codes. But we find that nonconformity is vehemently condemned in Malgudi. The religious minded, custom abiding people of Malgudi voice their discontent at the flagrant violation of the sacred customs and practices. Rebellion is thus viewed a cultural aberration and regarded meaningless in the constructed realm of total acceptance. Camus' observation is poignant in this regard. He states that the sociocultural make up of India makes it unable for the Indians to rebel: "The problem of revolt never arises, because it has been solved by tradition before they had time to raise it – the answer being that tradition is sacrosanct" (25-26).

The Narayan novels substantiate this claim. The conformists of Narayan's Malgudi seemingly enjoy the greater bliss of a rather peaceful and serene existence whereas the nonconformers, those who disregard the codes, are fated to go through a tumultuous, chaotic existence. It is seen that those who rebel, those who try to assert their individuality, after their minor stint with revolt come back remorseful to the secure fold of family, customs and traditions. And the adamant or the unrepentant are depicted as paying the price for their impertinence. They are either fated to lead a secluded, deserted existence or are doomed. This predicament of the Narayan characters has made Dnyate remark that the tradition abiders in Malgudi lead a balanced and contented life in comparison with the deviants, who head towards an isolated and frustrated existence. The Narayan oeuvre limits individual freedom to the extent that it preserves unruffled the norms, mores and beliefs of the traditional South Indian society of Malgudi.

An analysis of the Narayan novels will state this contention true. In *The Bachelor of Arts*, Chandran the young graduate is the rebel who raves, "To the dust-pot with your silly customs" (*BA* 70). Interestingly, the novel traces the growing up of Chandran from a rebellious youngster to a mature, compromising adult valuing his parents and their decisions as well as the customs and traditions of Malgudi. Chandran's adamant decision to marry Malathi, an absolute stranger sets the whole house in turmoil. The 'rebellious' youngster lacks the courage to go and talk to the girl for fear of public scandal and is even unsure if she has ever seen him but is obstinate that the marriage should take place! He rants against the silly customs and practices when Chandran's parents are shocked at the unconventionality of his demands. But they are ready to forego all the time-honoured customs just for the sake of Chandran. They set aside the question of social status, the age of the girl, dowry and even the longstanding practice of the proposal coming from the bride's side by arranging a marriage broker to act as a middleman. But astrological predictions play a greater part in the arranged marriage system of India. Here too, the mismatch in the horoscopes hinders the prospect of the alliance. The girl's father though no more than a head clerk, dismisses the alliance as it may threaten his daughter's longevity as per the astrological predictions. The dejected Chandran once again turns rebellious. His defiance now takes the form of renunciation. He resolves to become a "'sanyasi'' – one who had renounced the world and was untouched by its joys and sorrows" (*BA* 107). Ironically, the renunciation is not inspired by spirituality, rather it is a "revenge on society, circumstances, and perhaps, too, on destiny" (*BA* 108). But as per the Hindu concept of 'ashramadharma' one is to follow the course of 'Sanyasa' only after completing the successive stages of 'Brahmacharya', 'Garhasthya' and 'Vanaprastha'. However, donning the ochre rob only augments his grievances. His self vivisection makes him realize that he was only a

counterfeit. Throwing away the garb of the sanyasi, he returns home contrite. Towards the end of the novel we find him settling down comfortably as a householder earning a job and marrying a girl of his parents' choice. The disquiet and guilt at deviating from the predetermined course of life, and the solace and relief at following convention says much about the mental makeup of the ordinary Malgudian.

In Narayan's woman's novel *The Dark Room*, there is a sharper conflict between individuality and tradition. Here it is the constructed world of the androcentric society which poses threat to Savitri. Her husband's liaison evokes in Savitri the feelings of dejection and helplessness. Ramani has no qualms about the righteousness of his action but he is struck by his wife's effrontery in questioning him. The humiliated wife leaves her husband's house of authority but is nagged by serious concerns about the morality of her rash action. The irony is so poignant when the husband can throw to the winds the sanctity of the institution of marriage but the wife, by talking back, is being insolent. The greater irony is that Savitri herself firmly believes that she has sinned: "In Yama's world the cauldron must be ready for me for the sin of talking back to a husband and disobeying him" (*DR* 121). Unlike Nora who closes the door on her husband and family, we find Savitri meekly returning to the safety of the house. What results in the failure of the rebellion is Savitri's mental makeup which is strongly nurtured on the social codes of conduct subtly perpetuated through highly eulogised stereotypical images of the ideal woman who is submissive, obedient, docile and caring, a shadow of the husband:

A woman's primary duty (also a divine privilege) was being a wife and a mother and what woman retained the right of being called a wife who *disobeyed* her husband? Didn't all the ancient epics and Scriptures enjoin upon woman the strictest identification with her husband? (*DR* 141)

Hariprasanna's observation is accurate: "The very values that she nurtures make her weak and […] her defiance against her husband and her rebellion against society is much too feeble […] that she has no alternative but to go home" (92).

While Savitri in *The Dark Room* views the institution of marriage with utmost sacredness Rosie, Daisy or Shanti the female characters in Narayan's *The Guide*, *The Painter of Signs* and *Mr Sampath* respectively, indulge in the trivial pleasures of life which ruin their hope of a serene contented existence thereafter. The transgressors realize sooner or later that a miserable, desolate existence awaits them. In *The Guide* Marco the scholar husband is enamoured only of cave frescoes, not the real live woman he has as wife. Frustrated at his indifference and his nipping away of her identity as a dancer Rosie finds her attention channelled to Raju who admires the woman and the artist in her. So long trapped in the façade of a wifely role, Rosie seeks to find rejuvenation through Raju.

However, essentially nurtured in a social and cultural ambience where adultery is a morally repulsive, unpardonable sin, Rosie is troubled by a gnawing conscience. "Is it not a wife's duty to guard and help her husband, whatever the way in which he deals with her?" (105-6), Rosie sighs. The shock and despair on the otherwise blank face of the cuckolded man speaks volumes of the concept of wife in the Hindu society. Chastity is viewed a woman's most precious possession and once she violates marital fidelity she is 'tainted' and is to be abhorred.

Raju's mother voices the society's attitude to marital infidelity. Steeped in tradition, she considers Rosie a 'snake-woman' out to beguile her son. Alluding to the mythical heroines like Savitri and Seetha she suggests that whatever the circumstances, a married woman should be with her husband: "it was always the wife, by her doggedness, perseverance, and patience, that brought

him round" (137). But having outstepped the norms of sexual propriety Rosie is aware that she has reached a dead end. With a penitent heart Rosie lives with Raju and gets acclaimed as a renowned dancer but is late to realise his materialistic attitude. Raju utilises Rosie and uses her as a money minting machine. His forgery lands him in prison and Rosie has to lead the rest of her dreary life solely committed to her art.

Raju, once out of prison, shifts to the role of a fake sadhu which ensures him exalted status as well as free supply of food. Here too we find the fraud resulting in his own undoing. As a 'holyman', Raju is chosen by the village folk of Mangala to save the village from the severe draught and Raju is forced to face the ordeal and give up his life. Both the transgressors here meet with their own fate.

Daisy in *The Painter of Signs* is Narayan's New Woman with iconoclastic notions regarding the role of a woman, family, the institution of marriage, sexual propriety and motherhood. A social worker and an ardent devotee of population control, Daisy chooses her own path at a very young age. Contemptuously ignoring the age-old values of the traditional society, she engages in premarital sex with Raman the signboard painter. For the Malgudians, Daisy too is a 'snake-woman' but unlike Rosie who seeks forgiveness, Daisy cares little for sexual morality. She finds no significance in the institution of marriage either. Daisy's concept of motherhood too is quite unconventional. She states that if she ever has a child by mischance it will be given away so that it does not become a hindrance to her work. Though Daisy agrees to Raman's persuasion of marriage, mistrusting her own ability to lead a fruitful married life she leaves him. Unable to reconcile with Raman's passion for the unorthodox woman, Raman's aunt too leaves for Benares. Raman the rationalist is thus left lonelier in his world, divorced both from the traditional self represented by his aunt and the modern self represented by Daisy, once again substantiating the Narayan thesis.

In *The Vendor of Sweets*, it is Mali the sweet vendor Jagan's son who is depicted as snubbing the customs and traditions. Mali derides the ancient Indian heritage of the epics the *Ramayana* and the *Mahabharata* and goes to America to learn the technique of story writing. He returns with Grace, a half Korean-American girl introduced as his wife. Mali a Brahmin by birth, resorting to eating meat is dismaying for Jagan but still greater is the shock awaiting him when he learns that Mali was only cohabiting with Grace. A spokesperson of the new generation, Mali finds no validity in the institution of marriage. Jagan is horrified at the thought that his ancient home is defiled by 'people living in sin'. The ancient Indian tradition elevates motherhood, but for Grace having no issue is a relief when Mali washes his hands off her: "The only good part of it is, there is no child" (134). Sneering at Indian tradition and deeply immersed in all the evils of Western civilization, Mali's degradation is nearly complete. Flouting of the age-old conventions and traditions does not do well for the westernized Mali. Towards the end of the novel we find Mali imprisoned for his erratic ways.

In *The Man Eater of Malgudi*, Vasu the taxidermist is the villain who scoffs the beliefs and practices of the Malgudians and attempts to kill the temple elephant Kumar. Malgudians firmly believe that an elephant has a protected life and that no harm can come to Kumar. Sanctioning their faith in the mythic episodes, Kumar remains unharmed whereas the devilish taxidermist is found dead the next morning. Squashing a mosquito which had descended on his forehead had resulted in the death by concussion of Vasu. Analysing the novel, M.K. Naik observes that Narayan's "questioning solutions are firmly rooted in his own cultural ethos" (*Dimensions* 142). When transgression goes off the tangent, the result is equally forbidding.

In *The Financial Expert* and *The World of Nagaraj*, we find the younger generation greatly influenced by Western civilization. Balu and Tim – the recalcitrant sons in the novels, in sheer display of their independence and self-reliance, engage in wayward actions ignoring customs and tradition. But broken and defeated by the unpleasant realities of life, they are shown as returning to the secure haven of the family.

Haydn Williams rightly contends: "The pattern of a Narayan novel frequently takes the form of a character's departure from his normal life and his return to it at the end" (51). The social, religious and cultural context of Malgudi endorses the sacredness of traditions. We find the transgressors returning to the world of values, beliefs and customs. Subversive thinking, indulgence or moral digression is not tolerated in Malgudi. As Scott states, "The warning is loud and clear that those who transgress … may not find reintegration so easy (74). Denouncing the age-old traditions lead to the undoing of the individual. Malgudi finds its soul in the serene flow of the inherent values and the moral order which asserts itself. In the midst of all trivialities, it is the hold of the traditional values which uphold the reality of Malgudi and urge the Malgudians to move on.

References :-

1. Camus, Albert. The Rebel. Trans. Anthony Bower. Harmondsworth: Penguin, 1951.
2. Hariprasanna, A. The World of Malgudi: A Study of R.K.Narayan's Novels. New Delhi: Prestige Books, 1994.
3. Iyengar, K.R.S. Indian Writing in English. New Delhi: Sterling Publishers, 1985.
4. Naik, M.K. Dimensions of Indian English Literature. New Delhi: Sterling Publishers, 1984.
5. Narayan, R. K. The Bachelor of Arts. Chennai: Indian Thought Publications, 1999.
6. The Dark Room. Chennai: Indian Thought Publications, 2002.
7. The Guide. Mysore: Indian Thought Publications, 1987.
8. The Financial Expert. Mysore: Indian Thought Publications, 1993.
9. The Vendor of Sweets. Chennai: Indian Thought Publications, 2002.
10. Scott, D.P. "R.K. Narayan: The Reinvented Traditionalist." Perceiving India through the Works of Nirad C. Chaudhari, R.K. Narayan and Ved Mehta. New Delhi: Sterling Publishers, 1988.
11. Williams, Haydn Moore. Galaxy of Indian Writings in English. Delhi: Akshat Publications, 1987.

Evaluation of Digital India Scheme

Mallikarjun Chandrakant Budge*

Dr. Vijayalaxmi Biradar**

Abstract:- The much-anticipated "Digital India" campaign was launched by Narendra Modi. Previously, it was known as the National E-governance Plan (NeGP). The goal is to build a participative, transparent, and responsible government in India that reaches out to citizens in order to develop digital literacy and support electronic services. In India, for example, cloud computing and mobile applications have arisen as tools to demonstrate economic success and empower residents. As a result, the goal of this article is to look into India's digital vision as well as the Indian labor government, their implications, and potential solutions. Historical and observational methodologies were used in this research. Secondary data was used in this investigation. To explain concepts, students' remarks, interviews, and articles published in various newspapers and magazines have all been utilised. The primary goal is to clarify India's digital vision, as well as its application and economic influence in the country.

Key words: Digital india, e- governance, cloud computing, Economic growth

Introduction:- On July 1, 2015, Prime Minister Narendra Modi inaugurated the "Digital India" program with the slogan "Power to Empower." The purpose of Digital India is to create a government that is participatory, transparent, and accountable. It aspires to supply all online services and promote digital learning in India through the use of digital technology, which incorporates the notion of cloud computing and mobile applications. As a result, companies from all over the world are interested in investing in Indian digital equipment. The Modi Digital India project was supported by Sundar Paki, Satya Nadella, and Elon Musk, among others. It's a modest stride forward to promote an e-or m-step. "I envision a digital India," Narendra Modi stated, "where knowledge is a source of strength and empowerment." Digital India was introduced to major entrepreneurs like RIL Chairman and Managing Director Mukesh Ambani, Wipro Chairman Azim Premji, Tata Group Chairman Cyrus Mistry, and others at the Indira Gandhi Indoor Stadium in Delhi. The purpose of the gathering was to talk about digitalization and the rise of the internet. The Indian government has taken initiatives to promote digital land development. The campaign, which spans 600 locations, attracts a large number of information technology companies. The government has put over a lakh crore on various projects. These activities include the national learning environment, e-health, digital lockers, e-education, and e-sign. The government of Bharat Broadband Network Limited is in charge of the project (BBNL).

Objectives:-

- Recognize how e-governance improves people's lives by utilizing technology and communication.
- Innovative ideas are required to discover how government institutions can collaborate effectively on real-world initiatives and translate India's digital vision.
- Gain a better understanding of the advantages of digital India and its economic impact.
- Make recommendations for making Digital India a success.

*** Research Scholar, Dept. of Sociology, Gulbarga University, Kalaburagi-585106, State: Karnataka.**

**** PG Centre chairman, Dept.of Sociology, Govt. First Grade(Autonomous) College, Kalaburagi-585106, State: Karnataka**

- A safe and dependable digital infrastructure that connects all of the country's regions.
- The general public has a high level of digital literacy.

Review Of Literature:- "The influence of the digital India project on the Indian subcontinent was explored by Gupta and Arora (2015). According to the research, "several attempts have been launched in digital India to strengthen the agriculture sector and commercial development in rural areas." According to Rani Suman (2016), India's digital system provides a great chance to restructure Indian industry channels using cutting-edge technology. "While digital India is a fantastic plan for developing India's future of knowledge," said Midha Rahul (2016), "its misuse owing to inaccessibility and incompatibility of services could lead to its failure." We have a promising future ahead of us. As a result, we Indians must collaborate to create a knowledge economy. "

Research Methodology:- Both historical and observational methodologies were used in this investigation. Secondary data was used in this investigation. To explain concepts, students' remarks, interviews, and articles published in various newspapers and magazines have all been utilised. The primary goal is to clarify India's digital vision, as well as its application and economic influence in the country.

Discussion / Analysis :- The initiative's fundamental premise is organized into three broad areas, according to the government: digital infrastructure, such as basic citizen support, administrative and demand services, and digital citizen empowerment. In addition to improving internet access in rural areas, the effort intends to grow existing economies. Since its beginning, the government has been cutting down on the Digital India program, with spending for the fiscal year 2020-21 growing by 23% to Rs. 3,958 crore. This expansion is intended to aid the growth of our electronics industry, as well as enable research and development and boost cyber security and data protection policies.

The project also aims to improve the capabilities of a digital start-up system, with India having the third largest tech ecosystem implementation system in the world, with 9,300 startups. Artificial intelligence, block chain, analytics, and cyber security are just a few of the specialized areas of technology where these startups are engaged. To promote traditional technology and create a suitable atmosphere, MeitY has launched initiatives such as TIDE (Technology Incubation and Development of Entrepreneurs), ESDM (Electronics System Design and Manufacturing) Skills Development, and the creation of dentistry facilities. The rise of the e-commerce industry, which is estimated to reach $54 billion by 2020, reflects government efforts.

This Digital India program, which is based on our esteemed Prime Minister Narendra Modi's vision and goal, intends to give a much-needed boost to the country's nine development pillars. The nine pillars of India's growth and development are as follows:

1. **Broadband connection and service:-** By December 2016, the Indian government hopes to have built a countrywide information infrastructure employing 2.5 million fiber-optic panels. It will make it easier to connect rural and urban areas. This will allow anyone to access information online at any time and from any location.
2. **Mobile accessibility:-** In order to change the work of Digital India, India needs a wireless data connection that can be delivered by mobile phones. Prior to 2018, the Indian government was working to ensure that mobile communications are available throughout the country. According to official figures, a fiber network is still needed in 44,000 villages.
3. **Job-related IT training:-** Knowledge is useless without technology and technology. As a response, India has created the Skill India programme, which seeks to train 10 million individuals in the IT sector over the next five years in major cities and towns. It also intends to train 0.3 million agents in order to establish profitable IT service businesses. In addition, the

initiative calls for the training of 0.5 million local IT personnel over the course of five years, as well as the development of BPOs in each Northeast province.

4. **Electronic manufacturing:-** The Prime Minister has urged the manufacture of zero-effect, zero-defect products as part of the Make in India program. As a result, it is striving to achieve international acceptance for Indian goods. As a result, there will be a greater focus on importing equipment from other countries. As a result, the government is following in the footsteps of Digital India, aiming to deploy smart energy meters, mini ATMs, cell phones, and medical devices.
5. **Provide public Internet access:** Over the next two years, the Dream of Digital India program aims to provide internet access to 2.5 lakh villages, including one panchayat, and 1.5 lakh posts. People will be able to earn digital money through this article, such as in Multi-Service Centers.
6. **E-Government (Electronic Government):-** The use of biomatrix technology in sales and communications with Adhaar and bank accounts will be mandated due to the disadvantages and impediments to digital payments and transactions. The Indian government intends to improve service performance and delivery through UIDAI, payment systems, EDI, and mobile platforms. Digital is designed to create a seamless experience by providing school certificates and online voting ID cards.
7. **The Digital Revolution:-** Digital Knowledge is a non-profit that educates individuals about the advantages and practices of electronic government. People will be able to access electronic services in the fields of health, education, agriculture, justice, security, investing, and other themes through the service.
8. **Global Information:** The Digital India mission's purpose is to integrate governance forums and manage online data. It also intends to provide cloud data management services so that citizens can quickly access and secure their personal information.
9. **Simple harvesting strategy:-** Wi-Fi would be installed in all cities, train stations, colleges, and universities across the country, according to the administration. GPS devices in automobiles and helmets are used in cities and metropolitan areas. All government offices and the province employ the biometric viewing system, which is recorded online.

Conclusion:- The concept of Digital India is a fantastic one. It is a significant step toward transforming the world into a really empowered nation. Citizens' access to multimedia information, content, and services will be altered if the project is successful. However, the target remains a long way off, as several of India's digital pillars face substantial implementation challenges. Through e-governance and governance, India has begun the transition to a monetary economy and greater governance transparency. The importance of empowering citizens through global digital literacy and worldwide access to digital resources. It is also important to translate the books into additional Indian languages in order to make them available on the internet.

Reference :-

1. Rani Suman(2016). Digital India: Unleashing Prosperity. *Indian Journal of Applied Research, volume-6, Issue 4, pp187-189* Retrieved from https://www.worldwidejournals.com/indian-journal- of-applied.
2. Midha Rahul (2016). Digital India: Barriers and Remedies. *International Conference on Recent Innovations in Sciences, Management, Education and Technology*. Retrieved from http:// data. Conference world .in/ICISMET/P256-261. Pdf.
3. Gupta Neeru and Arora K irandeep (2015). Digital India: A Roadmap for the development of Rural India. *International Journal of Business Management ,vol(2)2, pp1333-1342*. Retrieved from www. ijbm. Co.in
4. Kadam Avinash (2015). Why cyber security is important for digital India. Retrieved from http://www.firstpost.com/business/why-cyber-security-is-important- for-digital- india-2424380.html
5. Digital India. Unlocking the trillion Dollar Opportunity: ASSOCHAM-Deloitte report, November 2016.Retrieved from www.assocham.org.
6. https://en.wikipedia.org/wiki/Digital_India.

Ideal of Equality and Poor Participation of Women in Electoral Politics of India

Dr. Jayanta Baruah*

Abstract :- The Constitution of India confers every citizen Justice, Liberty and Equality. All citizens are equal in the eyes of law. No one can discriminate among the citizens on the basis of caste, creed, religion, sex or place of birth etc. But in reality it has been observed that the basic ideal 'Equality' has been violated in India, especially in matters of political rights of women. Women have been considered voting rights in India at the time of India's independence. They have equal political rights with their male counterparts. As equal partners they take membership of political parties; take part in political rallies, take part in campaigns and votes for their candidates. But the basic principle of equality violates when they express their wish to contest election as candidate. The patriarchal setup of our society does not want women to have political power or to become more powerful. This type of negative thinking has greatly impact on the very notion 'Women Empowerment' which India tries to achieve since 1970s. India is a democratic country and the success of a democracy is largely depends on peoples participation in the decision or policy formation process of the government. But still our politicians and political parties are not in a position to share equal political rights with women. In this paper we will try to highlight how political rights of women have been violated by depriving or minimizing their active participation in the parliamentary politics through a case study of the electoral process of five states of India such as Assam, West Bengal, Tamil Nadu, Puducherry and Kerala where electoral process has recently been ended on May 2, 2021.

Key Word - *women, election, candidate, result, won, participation.*

Introduction :- India is a Democratic Republic with a Parliamentary form of government. The basis of Indian democracy is the principle of political equality. Article 14 of the Constitution of India says that "The State shall not deny to any person equality before the law or the equal protection of the laws within the territory of India". Article 15 prohibits discrimination on the grounds of caste, creed, sex, religion and place of birth. Again, the Indian Constitution assures all the citizens Justice, Liberty and Equality. Hence, all citizens are equal to enjoy all the constitutional rights conferred to them by the constitution. It has been observed that there has been gross violation or discrimination of political rights of women in India. Women in the country are deprived their equal share to participate in the parliamentary politics though women community of India consists half of the population in the country. In the patriarchal style of thinking women should remain busy with their domestic work, family care etc. They should not come out for the control of political power, run of administration. These are the prime duties of men. This type of negative thinking has barred our women folk from their active participation in politics since independence. Though the governments in the Centre as well as in the States have been working for women empowerment since long but empowerment of women cannot be achieved in its real sense by depriving them from equal enjoyment of political rights in the society. Women have been considered a little share in the political sphere of India. They get party membership; take part in party activities such as participation in rallies, distribution of leaflets, and works as polling agent, votes for their candidates. But the picture of deprivation of women in matters of equal enjoyment of political rights comes to the limelight when they express their wish to contest election as

*** Associate Professor, Department of Political Science, T.H.B. College, Jamugurihat, Sonitpur, Assam, India.**

candidate. They have rarely been considered party tickets to contest elections. A clear picture of the deprivation of women in enjoying their political rights equally with their male counterparts has also been depicted by the electoral process of five states of India where assembly election has been ended on May 2, 2021.

Objectives Of The Study :- The main objective of our study is to examine the level of deprivation caused to women in the enjoyment of their political rights. How the women community of India, though their equal contribution for the development of the nation, been deprived by not considering their appeal to give them tickets to contest in the elections. The poor or negligible picture of representation of women in parliamentary politics will be highlighted in our research.

Methodology :- The methodology use in the preparation of this paper is empirical one. Primary data has been collected from various websites such as ECI, Websites of ECI of various states, Party websites, Portal News, News papers and Journals etc. Secondary data has been collected from published books, thesis etc. To make our research more fruitful and relevant, we have verified all data related to the assembly elections held in five states namely Assam, West Bengal, Kerala, Tamil Nadu and Puducherry in between March 27, 2021 to April 29, 2021. Results of the five state assembly election was declared on May 2, 2021.

An Outline Of Women Participation In Politics :- It has already been mentioned that women have been given voting rights in India with the achievement of India's independence. But their participation in parliamentary politics is very low. The following table will show the rate of participation of women in Lok Sabha (Lower House of Parliament) since 1952 to 2019.

Table-1: No and percentage of women representation in Lok Sabha

Sl. No Lok Sabha	No of Women Elected	%
First (1952-57)	22	4.4
Second (1957-62)	27	5.4
Third (1962-67)	34	6.7
Fourth (1967-70)	31	5.9
Fifth (1971-77)	22	4.2
Sixth (1977-79)	19	3.4
Seventh (1980-84)	28	5.1
Eight (1984-89)	44	8.1
Ninth (1989-91)	28	5.29
Tenth (1991-96)	36	7.02
Eleventh (1996-98)	40*	7.36
Twelfth (1998-99)	44*	8.07
Thirteenth (1999-2004)	48*	8.8
Fourteenth (2004-2009)	45*	8.1
Fifteenth (2009-2014)	58	9.57
Sixteenth (2014-2019)	6	12.15
Seventeenth (2019-24)	78	14.4

Including one nominated member Source: Election Commission of India

The data discussed in the table above clearly reflects that women have been deprived in enjoying political right equally with their male counterparts in India since India's independence. Data have clearly revealed that the highest percentage 14.4 percent of women representation in Lok Sabha achieves after 67 years of India's independence, which is very unfortunate. It is not a good sign for a healthy democracy. A democratic government cannot be successful ignoring its half of the population, the women community. It is also to be noted that a bill was prepared namely the Women's Reservation Bill (The Constitution 108th Amendment Bill, 2008) to consider equal political rights to women by reserving one-third or 33 percent of seats for women in the parliament and also in the state legislatures. But due to lack of good will of the politicians of our country the

bill has not been passed yet. If the bill passed in the parliament than 179 women across the country can represent in the national parliament of India. So, our politicians are not ready to sacrifice a huge number of seats in the name of women empowerment. But it is also to be mentioned that by passing the 73rd and 74th Constitutional Amendment Acts in 1992 and 1993, women of our country have been given a chance to participate actively in the lower level of democracy i.e., Panchayati Raj Institutions. In these acts 33 percent seats have been reserved for women in the PRIs which have been increased up to 50 percent in some states. Finally, to make our discussion more effective we have put some data in the table given below.

Table-2: Gender wise break up of contestant to Lok Sabha in General Elections. (Sixth 1977-79 to Seventeenth 2019-24)

General Election	Total Contestant	Men	Women
Sixth	2439	2369	70
Seventh	4629	4486	143
Eight	5492	5330	162
Ninth	6160	5962	198
Tenth	4831	4517	314
Eleventh	13952	13353	599
Twelfth	4750	4476	274
Thirteenth	4648	4364	284
Fourteenth	5435	5081	355
Fifteenth	8070	7514	556
Sixteenth	8251	7590	661
Seventeenth	7207	6491	716

Results And Discussion :- A picture of gender biased and gender discrimination has been clearly reflected in the assembly elections held recently in five states of India namely Assam, West Bengal, Kerala, Puducherry and Tamil Nadu. Data of election of all the states have shown that women are still depriving in enjoyment of their political rights.

West Bengal :- It has been observed that in the West Bengal assembly election, women constitute only 11.25 percent of all candidates, and only 8.5 percent of all members of the legislative assembly (MLAS). In the state 240 women candidates were in the fray out of the total 2132 candidates contesting for 292 seats. In the state only Trinamool Congress (TMC) led by Mamata Benarjee considered 50 seats to women out of 291 assembly seats. The percentage of women participation in parliamentary politics in West Bengal was only 16.7 percent.

Another major player in the state election was BJP which considered 38 tickets to women candidates contesting in 283 seats in the state. The percentage of women candidature was 13.9 percent. The Indian National Congress considered 6.59 percent of seats to women (6 out of 91) in the election. In the state a total 40 women candidates came out with flying colours of which 33 from TMC tickets and 7 from BJP tickets. It is pertinent to mention that ratio of women in National Parties increases to 13.5 percent but state parties considers more share to women (14.4 percent). It is praise worthy that in the last General Election of 2019, 41 percent women candidate was considered by TMC to contest election (Verniers, 2021).

Tamil Nadu :- In the Tamil Nadu assembly election women were considered negligible percent of tickets to contest in the election. Only 5.12 percent (12 out of 234) women were represented in the assembly though the percentage of female voters are high 50.8 percent (3,19,39,112) than their male voters 49.18 percent (3,09,23,651) in the state (Service, 2021). The dominant AIDMK and

DMK in the state of Tamil Nadu considered 14 and 16 tickets to women respectively in the state assembly election. BJP considered 3 tickets to women while contesting only 20 seats (15 %). Now, out of the total 12 women MLAs, 6 won election on DMK tickets, 3 AIADMK, 2 BJP and 1 won election on the ticket given by Indian National Congress. Among all the political parties, Amma Makkal Munetra Kazhagam or the Desiyo Murokku Dravida Kazahgam has done better by giving 9.7% and 11.7% tickets to women candidates. The percentage of women representation was not very high in the assembly since long. Women representation was high 14% in 1991, with Jayalalitha's first term. In that period 32 women candidate were elected, 27 on an AIDMK ticket. After a dip in 1996, when the DMK gained power, women representation has been on a downward trend. In the assembly election of 2021, 12 women have been won in the assembly election. This is the lowest representation of women in Tamil Nadu since 1996, and one of the lowest rates in the country (Gilles Verniers, 2021).

Kerala :- The situation of Kerala is worst as compared to the other four states of India. Report has revealed that in the last six decades women MLA in the Kerala assembly never exceeded 10 percent (Surya, 2021). It was seen that in 1957 the percentage of women representation in the assembly was 5.3%. In 1967 and in 1977, only one representative was elected to the assembly. The women MLA were highest in 1991 and the number was 13. In 2016 assembly election, CPI considered 16% women candidates, CPI (M) 14% and INC considered 10% women candidates. But it is noteworthy that since 2001, there will be double digit women representative in the Kerala assembly as 11 women elected to 140 assembly seats. In the last assembly election of 2021, LDF considered 15 tickets to women. In the coalition CPI (M) considered 12 tickets to women contesting 77 seats, CPI given 2 contesting 23 seats and Kerala Congress considered one tickets to women contesting 12 seats in the Kerala assembly election. The coalition UDF also considered 12 tickets to women. The UDF consisted with INC considered 10 tickets to women contesting election in 83 seats. It was praise worthy that Revolutionary Marxist party considered their lone contesting candidature to women. As like that Indian Union Muslim League for the first time gave a ticket to women contesting 25 seats in the assembly. The NDA led by BJP considered 13.9% seats to women in the assembly. BJP selected 16 women candidates contesting 115 seats in the assembly election. But no one could succeed in the fray. A few 9 percent (11 out of 140 seats) representation of women is in the Kerala legislative assembly this time. The majority 10 women won on the tickets of LDF which formed the government in Kerala and one woman won in the ticket of Marxist Revolutionary party and she is the lone women MLA in the opposition (Shaji, 2021).

Assam :- In the Assam assembly election the percentage of women representation was not so appreciable. The percentage of women representation in the 126 house is only 4.76 percent. In the last assembly election only 7.82 percent (74 out of 946) women were in the fray among 946 candidates. Among the total 74 women candidate 23 women candidates were independent candidate. Major political parties like BJP considered 7 tickets contesting 93 seats (7.52%), AGP 2 contesting 29 (6.89%), Indian National Congress considered 8 tickets to women while contested in 95 seats (8.42%). Other political parties such as Assam Jatiyo Parishad considered 7 women candidates, Raijaor Dal 1, BPF 1 and AIUDF considered one woman candidate.

At present a total 6 women MLAs are in the 126 Assam legislative assembly and the percentage is very negligible 4.76%. Among the 6 winning candidates, 3 women have elected on BJP tickets, 2 on INC tickets and a lone woman candidate won election on the ticket given to her by AGP.

Puducherry :- In Puducherry, the percentage of women participation in last assembly election was 11 percent. In the 30 seats assembly 324 candidates were contested election among them 36 were female and 287 were male candidates. The lone woman candidate in the house is representing on a ticket of All India NR congress. It is very interesting that only 7 women MLAs have represented in the assembly since 1963 (R. Sivaraman, 2016).

Suggestions And Conclusion:- It is a recognized fact that a democratic government cannot be successful without the active involvement of people in the decision or policy formation of the government. The Constitution of India also considers equal rights to its all citizens. No one can

decriminate among the citizen of India. But the thing is that to implement or exercise this in practice our citizens should have knowledge about the constitution, the political system and about their rights and duties. The following steps should be taken by the governments as well as by the civil society of our country to make our women community fit to enjoy equal share of political rights.

1. The study has proved that women in our country are being deprived in the enjoyment of political rights equally with their male counterparts. The spread of education is the only way to make their rights fulfilled. Though the government in the Centre as well as in the states formulates policies for women education but still a section of our parents are ignorant about female education. This is mostly true in the rural and remote areas rather than urban areas. But it is very encouraging that enrollment of women in higher education increase of over 18% since 2015-16 to 2019-20 (Gohian, 2021). If women educate themselves in its real sense then they will raise their voice to get equal political rights one day.
2. Awareness regarding the rights and duties as the citizen of India must be created among the women community to enjoy equal rights with their male counterparts.
3. Public opinion must be created by the civil society to pass the long pending Women Reservation Bill to give women their justice. In this concern all political parties may come into one platform irrespective of their political ideology to pass the bill. It has been observed that our politicians are not interested to pass the bill. They want to remain aloof from this issue by citing the example of passing the 73rd and 74th Amendments where provisions are made to reserve 33% seats for women in PRIs.
4. The politicians of India and the supporters of patriarchy should change their mindset that women cannot win elections and are not fit to run administration. So, there is no way other than reservations of seats to improve gender balance in legislative bodies. We must remember that Sarojini Naidu, Indira Gandhi, Pratibha Devi Singh Patil, Jayalalitha, Mamata Benarjee, Mira Kumar are some famous politicians who will be ever memorable for their leadership in politics.
5. At present, seeing the performance of women athletes of our country in the Tokyo Olympics 2020, no one can dare to say that women can not lead the country. In the list of seven medals won by India, 3 medals won by Mirabai Chanu, Lovlina Borgohian and P.V. Sindhu. The women hockey team fought bravely and ranked fourth in the Olympic. The other four medals are won by Indian Hockey team, Ravi Kum Dahiya, Bajrang Punia and finally Neeraj Chopra won a gold medal for India in the Olympic 2020. Today the women of India make India proud in the world community. Women of India are empowered now and they should not be under estimated. This is the time to consider equal political rights to women to give them the chance to participate equally and actively in the parliamentary politics in India.

References :-

1. Gilles Verniers, V. K. (2021, May 10). Tamil Nadu's new assembly in 33 charts: Lowest women representation in 25 years, OBC dom. *Scroll.in*.
2. Gohian, M. P. (2021, June 11). 18% more women in Higher Education in 5 years. *The Times of India*.
3. R. Sivaraman, S. P. (2016, March 8). Only 7 women MLA since 1963. *The Hindu*.
4. Service, E. N. (2021, April 10). Tamil Nadu Election: More Women Voted this time than men. *The New Indian Express*.
5. Shaji, K. A. (2021, May 13). Women in Kerala Assembly poorly represented despite inheriting legacies like KR Gouri. *Down to Earth*.
6. Surya, J. (2021, April 1). In last Six decades women MLA in Kerala never exceeded 10%. *Scroll.in*.
7. Verniers, A. J. (2021, May 5). Decoding Women's Representation in the 2021 state elections. *Hindustan Times*.

Psychic Benevolence in the selected Short Stories of Daniyal Mueenuddin's *In Other Rooms Other Wonders*

M. Aarthi Priya*

Abstract :- As the Ocean formed by degassing the Earth's interior, a successful person can be made by degassing the negativity inside him or her. Optimistic thinking acts a magnet in the universe to achieve the desired goal if one is more ardent in getting it. As per the Greek saying, "Great minds think alike, though fools seldom differs", the thought process of a person acts like a powerful force attracting the same waves of the person's thinking. It is proven that a person's subconscious mind stores everything he or she thinks. It also triggers the person to achieve his goal in his life. Daniyal Mueenuddin's short stories make the common readers of English to taste varied flavours of Pakistani Literature. The article deals with "Nawabddin Electrician" and "About a Burning Girl" from the collection. The protagonists of the above two short stories do not have any belief in themselves. But once subjected to some hard situations, they realise their inner strength. Through their psychic benevolence they achieve their life goals even in their traumatizing situations.

Keywords*:* varied flavours, inner strength, traumatizing situations.

Objectives:- The article is an attempt,

1. To ensure that it is not necessary for a problem to have only one solution it can have nine others too.
2. To ensure that if a person change their perspective of a problem, one can solve it with no trouble.

Full Article:

In this article the researcher enhanced the power of positivity considering it as one of the essential factors of the modern era. The article discusses the psychological perspectives of the characters in the selected short stories to prove that one can survive in any situation with their inner strength instead of giving up or succumbing to the situation. The article deals not with the persons with super powers but the common people who face success and failures in their life and how they handle it.

Let us start with a common introduction to Pakistani literature and the author selected. Pakistani writing in English is now a part of the literature of Pakistan. Pakistani literature is one among the youngest literatures all over the world. Daniyal Mueenuddin is a Pakistani-American Writer and categorized under Diasporic writers. He won the Rosenthal Family Foundation Award from the American Academy of Arts and Letters. The short story "*Nawabddin Electrician*" was selected by Salman Rushdie for the Best American Short Stories of 2008. The collection includes, *Nawabbdin Electrician, Saleema, Provide, Provide, About a Burning Girl, In Other Rooms, Other Wonders, Our Lady of Paris*, *Lily* and *A Spoiled Man*.

The short story *Nawabdin Electrician* depicts the story of an ordinary middle-class electrician whose works are considered to be the best in the whole province. As one day he was travelling in his bullet through the dark forest he was stopped by a stranger and attacked Nawabdin

*** Research Scholar, Department of English, Sri Sarada College for Women (Autonomous), Salem-16**.

to loot his belongings. He brutally attacked Nawabdin and Nawabdin was severely wounded. He was rescued by the nearby people after heeding to his shrieks. They caught hold of the thief and informed the policemen. Both were taken to the hospital and there at the nook of his last breath the stranger confesses to him that he has done for him is wrong. He also asks for his forgiveness. When the doctor treated him, he was already dead. Nawabdin cannot help the situation and the only thing he can do is to cherish his luck as he escapes the thief's attack nearly six times. Nawabdin in this story portrays the character of a typical mindset of a middle-class man who at the traumatizing situation thinks only about himself and his family.

The short story *About a burning girl* depicts the pathetic condition of women. The storyline is so simple that if a girl is born and married into a highly sophisticated family, she has the full authority over her husband. But the condition is worse on the other side of women. In this short story a woman is burnt alive just to save her husband, making the readers clear that she has no authority over her husband. The story clearly portrays the pathetic condition of women in society.

In the words of Charles R. Swindoll "Life is 10% what happens to you and 90% how you react to it" (1). A person who uses extrasensory perception to get hidden information apart from his normal senses is termed as a psychic. In other words, a person "who performs acts that are apparently inexplicable by natural laws" (Psychic 1). Psychic abilities are nothing but a belief which makes the person behave in a different way. There is no scientific proof for the existence of such powers within a person.

In the short story *Nawabddin Electrician* the protagonist is a typical middle-class man who is capable of doing things in an easy way. He is very well dedicated to his work but sometimes wants to get profit without giving his hard work. He is a kind of person who is strong inside but looks somewhat sleek outside but dedicated to his work on any accord. His family includes his wife and a complete set of twelve girls. He has a sufficient and satisfied life but even then, he cheats others. This is because as a father he worried about his daughters' marriage. For a mechanic and an electrician there seems no question of marrying them all. But there would be a shortage in money for their marriage. Another man would have thrown up his hands but not Nawbddin. Nawabddin gets help from his master K.K. Harouni and sometimes he takes advantage of whoever tries to help him. He manages to get a motorcycle from his patron Harouni and he also manages to extract an allowance for gasoline.

Once he was travelling towards his home from his workplace. A man steps from behind one of the pillars motioning Nawab to stop. He asks for his favour and Nawabddin asks him to get on his bike. Only then he noticed his behaviour which resembled a thief. Halfway there the man asked Nawab to stop his bike. Nawab cannot understand what is going wrong with him. Nawab asked, "What's wrong?' (11). The man does not give any reply to him but he jabs the pistol hard into his ribs.

Nawab panicked and he got away from his motorcycle leaving it on one side which made the robber knock the ground. This made him much furious and started threatening him. He did not expect this sudden blow from the stranger and he totally collapsed. He tries hard to explain his situation but the man does not respond to any of his words. Without any concern the man shot him. Nawab at once thought that he was dead but he was not.

He is ardent that he should not let go of his property in the hands of anyone. Nawab manages to attack him and the man is severely wounded. His only thought is to survive. The

universe helps him by sending some people in that way. The way where Nawabddin lies is an abandoned place where people will not be seen frequently. With the help of the nearby people, they both have been hospitalized but unfortunately the thief died.

At the climax it is evident that a common man can also be turned to be a superman if he/she is very ardent in doing so. "Yet Nawab's mind caught at this, looking at the man's words and his death, …. Six shots, six coins thrown down, six chances, and not one of them killed him, not Nawabdin Electrician" (17). The story suggests that even when one is in a traumatizing situation, the person can come out of it with their presence of mind and survival skills. The psychic benevolence of Nawabdin of not giving up the situation helped him to gain success in his approach.

On the other hand, the author has given the pathetic condition of women in Pakistani society where two ways of treating women are exposed. If a woman is dependent on her husband, she has no rights to raise her voice against her husband even if she is burnt alive and on the other side if a woman is independent and enriched with her family properties her husband gives her full authority over him and she turns to be the decision maker even of her husband's activities. He has to safeguard the criminal if his wife wants him to. He thinks that, "My wife, to put in the clearest terms, is a shrew" (91).

Among the servants in the house, Khadim, the bearer, is his wife's favourite. He has no personality of his own. The judge comments that, "He has no opinions and no dissipations, …. In short, he is the ideal servant" (92). None of the servants in the house are allowed to take leave but when Khadim asked for leave, his wife agreed. The Judge is surprised by their relationship. After two days of his departure the judge receives a phone call from Khadim's brother. He says that Khadim is in jail for murdering his wife. The case is he has been arrested for pouring kerosene over her and setting it on fire. The judge thinks that it is some sort of old story. He asks the judge to help him to release his brother.

Khadim's brother assures him that he is not the one who kills his wife. But as a judge, he cannot take up the words of Khadim's brother as evidence. Khadim's brother tells him, "There was a robbery in my family's house, Your Honor…All my father's money" (95). The money sums up to three hundred thousand rupees and four sets of gold jewellery. Khadim's brother also assures him that the money is not stolen, rather, his father gets it as a reward from the owner to whom he has been working as a cook for more than fifty years.

After the family gathering, Khadim's brother proclaims that his wife sets herself on fire, and soon the police arrive. When she is about to die, she gives a false statement to the Police that Khadim set her on fire, and so he has been arrested and taken to the jail. But the judge cannot understand why Khadim is being blamed. Khadim's brother tells him that his wife and her brother steal the money. He says, "My wife and her brother, who lives in the next village, stole the money. I wouldn't have thought it of her, sir …. Khadim has eaten you salt" (97).

The judge gave a second thought to the words spelled out from Khadim's brother. Khadim's brother has given him only a one-way story; he has to find what actually happened that night. When he returns home, his wife enquires about Khadim's case. When he says that there is strong evidence against him, she does not believe in that evidence. She is ardent that Khadim is innocent.

After further investigation, Mian, his reader, informs the judge that the victim does not commit suicide, she is surely murdered, and Khadim is not the murderer. He also continues that

Khadim, his brother and his wife plan to loot the father's money as they think that they get only a small amount of share. So, they decide to visit his father's place at night. He also says that they are in need of a victim, so the husband decides to kill his wife and blames his brother as he is his father's favourite and can get the whole amount as his own. He decides to kill his wife because she has been stammering in the police enquiry about the theft. "That evening the boys decided to kill her. Not only must silence her, they also needed a victim, someone to who they could ascribe the theft, and who would not talk… The husband was the prime mover"(103-104).

Khadim is not actually the murderer, but he is one among the criminals. He takes up the blame because he is very sure that he will get the help of the judge's wife and also the judge to come out of the prison. But with no other option, he helps Khadim as his wife needs the service of the boy. The doctor who treated the dead woman said that the woman's body is covered with ninety percent of the burnt, her cheeks, lips, tongue, teeth, and even her gums are burnt, so she does not have a chance to speak. And this evidence is accepted by all, and he gives the judgement. But the nature of the case changed when the new Judge arrived. He easily found out the truth. The author left the climax to the readers. The readers are not sure whether the judge is going to favour the dead woman or the living one. That is whether the poor or rich.

Even the judge occupies the major role of the short story, his wife controls the whole plot. Through this short story the author reveals the typical mindset of the woman who wants to control her husband and who fails to rule her husband's mind. If at all the wife of Khadim's brother curbed him in all his wrong doings she also has been saved, and if at all the judge's wife let him to do his duty, he might have not lost his job.

Among the two, the heroine of the short story is the burned woman. She might have failed as an authoritative wife but tried to be humane at her deathbed. Even after ninety percent of burns she is more ardent to reveal the truth to the police man. It is because of her psychic benevolence even at the end of the judgement she has been saved from her immoral activities.

The writer has compartmentalized the society from rich to poor in this collection. The author has not only discussed the problems faced by the poor and ordinary people but also, he has given a complete picture of the problems faced by the rich also. The author uses the ripple effect in his short stories, "The ripple effect is emotional contagion in groups, which is more precisely the transfer of moods among people in a group" (Barsade). However, the strong emotions of the protagonists in the above two discussed short stories influenced the moods of the other characters. This is quite evident with the character of Nawabdin in *Nawabdin Electrician* and the wife of Khadim's brother in *About a Burning girl* by whom the whole plot changed.

Reference :-

1. Barsad. *The Ripple Effect: Emotional Contagion in Groups.* Reflectd.co, 25 March 2013. https://reflectd.co/2013/03/25/the-ripple-effect-emotional-contagion-transferring-moods-to-others/
2. Mueenuddin, Daniyal. *In Other Rooms, Other Wonders*. Random House India, New Delhi, 2010.
3. *Psychic* . Wikipedia, 20 November 2020. https://en.wikipedia.org/wiki/Psychic#:~:text=A%20psychic%20is%20a%20person,apparently%20inexplicable%20by%20natural%20laws.
4. Swindoll, Charles R. *Charles R. Swindoll Quotes*. BrainyQuote, accessed 7 September 2021. https://www.brainyquote.com/quotes/charles_r_swindoll_388332.

Delicensing the Licensed Bangladeshi Women in Rizia Rahman's *Letters of Blood*

Dr. Breez Mohan Hazarika*

Abstract :- Human rights are entitlements enjoyed by individuals because of their birth as human beings. These rights help in protecting a person from any form of discrimination and exploitation. However, these entitlements have remained for a few, causing codification of the rights for one and all. The United Nations takes the lead and adopts the Universal Declaration of Human Rights and other covenants like the International Covenant on Civil and Political Rights and the International Covenant on Economic Social and Cultural Rights, for safeguarding human rights. Despite the safeguards, the human rights of women are violated. It compels the UN to legislate the Covenant on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women for protection of their rights. But human rights of female sex workers across the world have no protection. Bangladesh is a rare Islamic country allowing girls above the age of eighteen to join prostitution in licensed brothels. Except for the permit, the state has failed to protect their human rights. Rizia Rahman, the famous Bangladeshi novelist, short story writer, and poet, exposes the human rights violation in the whorehouses of Bangladesh in her work, *Letters of Blood*.

Keywords: Human Rights Violation, Prostitutes, Brothels, Bangladesh, Rizia Rahman

Human Rights are inherited entitlements of individuals because of their status as a human being. They work in realising a person's potentiality and secure him/her from discrimination, abuse, deprivation, privation, seclusion, among others. However, these entitlements have remained as prerogatives of the privileged few. This caused for codification of the rights for one and all. The United Nations (UN) takes the lead and adopts the Universal Declaration of Human Rights (UHDR) in 1949. To strengthen the UDHR, covenants like the International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR) and the International Covenant on Economic Social and Cultural Rights (ICESCR) have been incorporated. All the members of the UN have the obligation to ratify the agreements and ensure the rights of its citizens. Despite the safeguards, the human rights are tilted more towards men. Hence, a woman specific treaty called the Covenant on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women (CEDAW) comes into operation for protection of human rights of the weaker gender. Signatories of the CEDAW are under the obligation to end discrimination of women in all constructs. But "sex workers across the globe," including Bangladesh, "face acute human rights violation that occur in a variety of social, economic, political and legal contexts" (Framework... 6). Though Bangladesh is a rare Islamic country where any girl above the age of eighteen can join prostitution in licensed brothels by signing a declaration, yet the women in the brothels stand deprived of their human rights. Rizia Rahman, the famous Bangladeshi novelist, short story writer, and poet, recounts the human rights violation in the whorehouses of Bangladesh in her work, *Letters of Blood.*

The research paper adopting an interdisciplinary perspective aims to identify and analyse the human rights violation of licensed women in the permitted brothels of Bangladesh by interpreting international statutes and relevant laws of Bangladesh. Rahman's fiction, *Letters of Blood* (LoB), will make up the primary source of the study. For secondary sources of information, the researcher will rely on international covenants and domestic laws of Bangladesh.

*** CSS. CAW DCB. Girls' College, Jorhat, Assam.**

Rahman's interest in the female prostitutes of Bangladesh takes place after she reads an article, *The Prostitutes of Dhaka*, in the weekly magazine *Bichitra*. She undertakes research by collecting data on these women through a journalist friend of hers. Her research findings convince her that brothel-based prostitutes have no human rights at all. She records the violations in her work, *LoB*. She begins her narration by exposing the living conditions of the whores in a brothel called Golapipatti. Article 25.1 of the UDHR (52) and Article 11.1 of the ICESCR (4) make it mandatory on all the member states to provide every human being a decent standard of living that includes adequate food, clothing and housing, and to the continuous improvement of standard of living. Contrary to the laws, the inmates of the brothels of Bangladesh stand deprived of these basic human rights.

Rizia Rahman informs the readers that the women of Golapipatti remain exposed to the worst forms of living conditions. The inhabitants comprising child prostitutes, young girls, mothers without husbands, including the brothel keepers (*mashis*), live in old, unmaintained shelters which may cave in anytime under extreme weather. Four-five girls live in shared rooms rented out by the *mashis*. The rooms are as small as "nine-foot by twelve-foot" (Rahman *LoB* 35) and three or four occupants "share the same room, the same rickety bed, for their business." Only the independent whores, free from the bondage of the *mashis*, have single occupancy. Except for the breathing space, the rooms lack basic amenities, including maintenance from the landlords. Cracks on the roofs and the walls, and the overflowing drains allow rainwater to flood "every room" (53). On those rainy days, they cannot "light their stoves and cook," and have to depend on "restaurant" food. Amid these disruptions, Rahman narrates how three girls die when "a part of the roof of the decrepit old building has collapsed in the torrential rain" (108). Despite the tragic incident, business continues as usual, and "everyone forgets that three young women met unusual deaths in this brothel today" (100).

Access to adequate food for an individual's health and well-being is a human right mandated by the UHRD and ICESCR under Article 25.1 (52) and Article 11.1 (4) respectively. Most nations, including Bangladesh, have food security schemes for its citizens. But prostitutes remain excluded from hunger alleviation schemes because of their socially disapproved occupation and lack of "legal documents" (Framework... 51). Rahman apprises a sex slave of Golapipatti "has a right to a meal of *daal* and rice only if she gets a customer" (8). Underage girls like Piru who struggle for customers receive a morsel of modest meal if her owner, Hiru, is in good humour. Otherwise, she remains in an empty belly for most days. Right to safe drinking water and sanitation are human rights recognised by the General Assembly of the UN (The Human Right to Water...). It urges member states to "provide safe, clean, accessible and affordable drinking water and sanitation for all" (3). Availing these primary human requirements remains outside the brothel whores of Bangladesh. Rahman locates Golapipatti cannot provide its dwellers with safe, purified water and adequate toilets. The place has only one draw-well for drinking, bathing and washing. The other source is a well, but it is unfit for bathing and washing clothes. Girls with insufficient incomes afford to wash their clothes once in a "fortnight" and have to contend themselves with "a mug or two of the putrid water from the well" (7) for a bath. Access to safe, clean drinking water remains a prerogative only for independent whores with steady income. They buy buckets of water from the tap across the road. Answering the call of nature remains another issue for all the girls as they have to stand in a "queue like at the ration store" (4) to use the solitary toilet.

Highest attainable standard of health is a human right recognised by ICESCR (4), and CEDAW (18). The states ratifying the above charters have obligations to ensure women the access to healthcare facilities of the highest order. However, healthcare facilities are unavailable in the whorehouses of Bangladesh. Rahman reports that in Golapipatti no one has "ever gone to a doctor when ill" (*LoB* 126). If the prostitutes are ill, they depend on over-the-counter drugs supplied by Mannan's shop. Headache is the common ailment for most of the girls owing to alcohol abuse,

smoking, and the strenuous nature of their occupation. They equally suffer from insomnia and other psychosomatic disorders. Self-medication as popping "Codopyrin" and "Sonaril" (20) tablets remains the chosen treatment for these minor ailments. Beside these tablets, "everyone here has to buy" from Mannan's shop "birth control pills" because they cannot afford "of bringing the child up" (51).

Want of a healthcare facility has robbed many lives in Golapipatti. Rahman identifies most women in the brothel suffer from an unnamed fatal disease that appears as fat pustules in the arms, and later spreads all over the body in festering "poisonous sores." Those who survive the disease suffer from anxiety and depression because customers refuse to occupy their beds. The novelist reveals, "Many have gone mad. Some have hanged themselves" (118). If the women want to consult a physician, the brothel owners deny permission to leave the premises. Hiru, the owner of Kusum, forbids her from going outside to take an x-ray. Excessive coughing and vomiting of blood cost her life.

Motherhood caused by unprotected sex has wrought havoc against prostitutes of Golapipatti. Most clients maintain a distance from mother-whores, causing untold economic hardships to the latter. Phulomoti, a victim of unprotected sex, has lost her earning opportunities because of attaining motherhood. Her life now depends on loans taken from other girls or soliciting her body at throwaway prices. Hence, the whores of Golapipatti consider it a "crime to be a mother in this brothel" (17).

Contradictions in Bangladeshi laws have compromised the human rights of the entrapped victims. The Constitution of Bangladesh under Article 18 (2), the *Suppression of Immoral Traffic Act, 1933, the Oppression of Women and Children (Special Enactment) Act, 1995, the Dhaka Metropolitan Police Ordinance, 1975*, etc. prohibits prostitution in public. But, there are also laws allowing women above the age of 18 to register as prostitutes by signing an affidavit (Godwin 45). In the year 2000, the High Court of Bangladesh also ruled prostitution as a legalised profession. The ambiguity in the Bangladeshi laws enables the brothel owners to exploit the legal loopholes and use violence for controlling the girls. Rahman informs when under-aged girls like Piru cannot find clients, her owner, Hiru, would thrash her and deprive her of food. Besides the owners, the caged birds encounter violence from misbehaved customers. Tortures include bites, whippings, and insertion of burning cigarettes in their breasts to derive perverted pleasure. Despite the violence, the oppressed girls of Golapipatti never lodge complaints because they know the police never inspect the place to "investigate" (LoB 29). The police are aware of the crimes but overlook them because of the commissions from brothel proprietors. Thus, the ambivalence in the laws and the callousness of the corrupt police deprive the girls of their right to work with human dignity.

Rahman also briefs that the girls bought by brothel owners from human traffickers have to spend most part of their life in 'debt bondage.' Girls in forced prostitution can aspire to work independently or quit the profession, provided they could write off their debt. The practice is a punishable offence under the Constitution of Bangladesh and Section 11 of the *Prevention and Suppression of Human Trafficking Act, 2012* (6801) of Bangladesh. It also contravenes existing international labour laws forbidding slavery in any design. Rahman notes the vicious cycle of intergenerational sex slavery has trapped most girls of Golapipatti. They cannot transit to any other occupation because of the social stigma. Some women have been in this family business for "four generations" (47) with daughters and granddaughters taking over from them. In most cases, older prostitutes graduate to a *mashi* or engage as a domestic help to independent whores. The novelist cites instances of some women abandoning the profession after delivering themselves from the debt servitude. However, in each case, social unacceptability and economic compulsions drive these women back to the world of prostitution.

Social and economic exclusion is another human rights issue taken up by the author. Rahman notes that elderly prostitutes cannot avail the old-age welfare schemes of the Bangladesh government

for lack of legal documents like birth certificates, identity cards, etc. Old Golapjaan, a former prostitute, for example, exhausts all her resources and "Today, she's a lump of flesh outside the doors of Rupa, Anima and Moti's house, lying on the bricks where the cement has worn off" (4). Off and on she has to crawl "the drain to collect the grains of *muri*" (9) for driving away the hunger in her belly. Thus, old-age security is a worry common to all the ladies of Golapipatti.

Right to a decent burial is a human prerogative granted by every civilised society of the world since time immemorial. As this human right gains acceptance in all societies, its mention in statute books is rare. But, in Bangladeshi society, a prostitute's deceased body cannot secure space in the burial grounds of the country. It was only in the year 2020 that Islamic clerics conceded to allow burial of the last remains of prostitutes. Earlier the bodies get confinement in unmarked graves, without formal prayers, or dumped in rivers (Conrad). Death in Golapipatti represents a subject where nobody has the time to mourn or discuss. If any of the girls die, Rahman reveals, "The *dom* [low-caste Dalit] takes the corpse away" (126) to places where no one knows for sure.

Thus, Rizia Sultan's *The Letters of Blood* remains a case study that records the human rights violation against the licensed prostitutes of a brothel in Bangladesh. The novel exposes the diverse forms of human rights violations in the residential flesh markets, and serves as an eye-opener for the government and the civil society to note the transgressions in the liberties of one of the most vulnerable sections in the society. It pleads to the agencies to come forward and promote effective environments for these helpless women so that they could live with dignity and work in environments that ensure human rights protection.

Reference :-

1. Conrad, Duncan. "Sex worker receives landmark Islamic funeral in Bangladesh: 'My mother was treated like a human being.'" *Independent*, 12 Feb. 2020. Accessed on 01 July 2021. www.independent.co.uk/news/world/asia/sex-worker-islamic-funeral-
2. Constitution of Bangladesh. Constitute: constituteproject.org, 2021.
3. Convention on the Elimination on All Forms of Discrimination against Women. United Nations, 2003.
4. Framework on Rights of Sex Workers & CEDAW. International Women's Right Action Watch Asia Pacific, 2017.
5. Godwin, John. *Sex Work and the law in Asia Pacific: Laws, HIV and human rights in the context of sex work*. UNDP, 2012.
6. International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights. United Nations, 1976.
7. Rahman, Rizia. *Letters of Blood*. Seagull Books, 2018.
8. "Resolution adopted by the General Assembly." *General Assembly*, 03 Aug. 2010.\
9. Suppression of Immoral Traffic Act, 1933. Ministry of Law. Accessed on 01 July 2021. msw.portal.gov.bd/ sites/default/files/files/msw.portal.gov.bd/page/31
10. The Dhaka Metropolitan Police Ordinance, 1976. *Laws of Bangladesh*. Government of People's Republic of Bangladesh: Legislative and Parliamentary Affairs Division. Accessed on 01 July 2021. http://bdlaws.minlaw.gov.bd/act-511.html .
11. The Prevention and Suppression of Human Trafficking Act, 2012 (Act No. 3 of 2012).
12. Bangladesh Gazette, 2013.The Human Right to Water and Sanitation. The United Nations Department of Economic and Social Affairs.
13. Universal Declaration of Human Rights. United Nations, 2015.

Potential health risks of Social Media overuse by adolescents and remedy through yoga.

Dr. Parinita Singh*

Abstract :- Social media today has become very popular amongst youth and adolescents as a means of expression and to connect with the larger society. However, surveys indicate that in many cases adolescents have a kind of addiction and are glued to social media for long periods even at the risk of its probable side effects. Apart from the risk of physical stress overuse of social media may lead to mental conditions as well for the adolescents who are in a developmental phase of their personality. The presence of unethical hackers, miscreants on social media platforms increases the risk of young adolescents getting exposed to improper content and being exploited which ultimately impacts their mental conditions. Yoga has been in practice in the Indian subcontinent for centuries and helps attain and manage a sound body and mind. Yoga is being adopted worldwide not only as a preventive technique to keep diseases at bay but also to cure several physical and mental health conditions through guided yogic techniques. As such, the potential health risks due to the overuse of social media can also be mitigated through the regular and guided practice of yogic techniques.

Key Words:- Social Media, Health Conditions, Yogic Techniques.

Introduction:- Social media, over the past decade, has become the most commonly used method of communication and social interactions. Online gaming also has become a very common means of entertainment for adolescents. High-speed internet, smart phones combined with various mobile apps have revolutionized the way kids today interact with each other and entertain themselves. Rapid access to several websites from the portable devices has facilitated constant internet surfing in the digital world. Today, the majority of teenagers have their own social media profiles and they spend a substantial time daily, on social media.

Although social media facilitate people to get information fast and to reach out and connect with others globally, it can also cause worry to some people. Certain issues related to children and adolescents, who navigate the internet and visit different sites on the worldwide web at a younger age, need to be considered. The phase of adolescence is marked by significant physical as well as psychosomatic changes and pre-mature exposure to undesired content with limited self-regulation increases the risk of susceptibility to peer pressure and experimentation.

Though children today have greatly benefited from the digital revolution, some of them are also at risk of excessive exposure to the digital world and the negative side effects of age-inappropriate content like pornography, violence, encountering cyber-bullying, sexting, etc. Though there is not enough research to understand as to whether using social media leads to depression and anxiety symptoms, or if people who are already in a state of depression and anxious spend too much time on social media as compared to their peers. However, some research suggests that social media overuse might, at least to some degree, lead to these symptoms or aggravate it if already there.

In many cases the use of social media and online gaming has become an addiction for the children showing symptoms of over-dependence, restlessness and in-tolerance. Overuse of social

*** Guest Faculty, School of Yoga, Ranchi University, Jharkhand.**

media and online gaming by the young has led to health conditions nowadays, what is being termed as 'Problematic Internet Use' (PIU) and Internet Gaming Disorder (IGD). Adolescents experiencing symptoms of overuse need intervention where yoga can be of great help.

Cyber-bullying in social media:- Cyber bullying means using the internet and digital media to deliberately propagate false, hostile and misinformation about the target audience embarrassing them and, persuading them to take undesired steps. Such bullying can be observed over the internet by many persons and groups with ill motifs. Studies conducted by The National Institute of Health in 2010 indicate that there is evidence of a correlation between cyber-bullying and depression and other mental health problems. Young people taking suicidal attempts as a result of aggressive cyber bullying and exposure to dangerous online games have already come into the media limelight.

Adverse impact on health :- Many surveys on young children and their daily routines have found that adolescents spend a lot of time every day on social media. Although the impact of social media on the mental health of young people is not clear as yet, research suggests that over-use or addiction to social media, online-gaming are related to several adverse health conditions amongst adolescents who are in an early developmental phase of their personality. Problems at this phase may affect their future growth.

Impact on Physical Health:- Social media overuse involves a lot of time and addiction is often associated with reduced physical activity and over-eating and hence over some time it may lead to adverse health conditions such as strained eyes, headache, obesity, diabetes, weakened muscles, hypothyroidism, increased cholesterol levels, and heart problems, etc.

Impact on Mental Health:- On the mental health front the potential impact may be more pronounced and long-lasting if not intervened. It may lead to mental disorders like stress, depression and loneliness, anxiety, sleep deprivation, over-aggressiveness in behavior, attention-deficit/hyperactivity disorder, low-self esteem, and in some extreme cases even suicidal tendencies.

Stress: Overuse of social media may lead to increased stress levels due to peer pressure, pressure to keep oneself updated, pressure to keep up with other necessary life events.

Depression:- Researches in the recent past suggest a link between depression and social media use. Though there is no clear evidence of a cause and effect relationship between social media and depression, it has been observed that social media use can be associated with aggravation of already existing symptoms of depression, loneliness and a decrease in physical social activities.

Anxiety:- Teens often feel emotionally involved with their social media accounts. Not only do they feel pressure to respond quickly, but they also feel pressure to have perfect images of themselves and well-written posts. This may cause anxiety. Some studies reveal that the larger the adolescent's network circle on social media, the more anxiety he or she is likely to have to keep up with the pace of updating posts online. Some of the reasons for getting anxiety as a potential risk due to social media overuse may be:

- **Fear of Missing Out (FOMO):** Teens and young adults often worry about what they call 'fear of missing out' which is anxiety about missing out on experiences. As such, they want to be continuously online.
- **Excessive focus on appearance and Self-Body Surveillance:** Social media sometimes induces in children too much of concern about their appearance and physical attractiveness. As a result, they lack a positive body image and develop abnormal eating

habits. A poor self-image of self may lead to depression. Excess social media use leads to more body surveillance, i.e., monitoring one's own body and becoming judgmental of it. People who do more body surveillance often feel more shame about their bodies. This can cause poor body image of self and may lead to depressive mood.

- **Premature exposure to improper content:** One of the risks associated with social media is pre-mature exposure of teens to adult sexual content may have a negative impact on their psychological development and self-esteem.
- **Feeling of Jealousy and envy:** People tend to post only the positive things that they experience in their life and desist from posting normal or mundane things. Young children viewing it often fail to realize this. It may appear to the reader that other people lead more exciting lives than they do. This may lead to the feeling of jealousy among the adolescents
- **Sleep deprivation:** Studies reveal that addiction to social media may cause sleep deprivation as people tend to remain awake till late at night or even wake up during the night to check their status.

Unwarranted aggressive behavior:- Studies reveal that children spending too much time on social media and violent gaming platforms are prone to the risk of getting over-aggressiveness in their behavior.

Attention Deficiency:- Social Media overuse may lead to a mental condition where a child is not able to pay due attention when desired and is not able to focus on studies.

Remedy through yoga:- Any physical and mental stress leads to strained body conditions and diminishes our enthusiasm and positivity towards life. Sometimes it becomes so strain full that it becomes impossible to aspire for anything else. Thus, it is well-known fact that a sound health and sound mind is the most basic and important thing in life. In the Indian subcontinent, Yoga for centuries has been used to keep the body and mind healthy. Today, it has been established worldwide that adopting a yogic lifestyle is very helpful in maintaining good health and mental balance. Regular practice of Yoga and pranayama can help to keep health-related problems at bay.

Rapid advancement in medical science, the invention of medicine, and surgical skills have helped mankind to be able to cure many diseases which had been troubling for centuries. However, these medicine and techniques are not sufficient or less effective for conditions related to chronic stress and psychosomatic disorders which are on the rise because of the fast pace of life and social-media overuse. Initially, an individual tries to adapt himself to face such a strain or stress in life. But if such a situation continues for a long time the person fails to adapt and starts getting the manifestation of psychological and physiological changes day by day. At first, stress manifests at a psychic level in the form of nervousness, irritability, sleepless nights, etc. and later the body functions get impacted.

According to Patanjali Yoga Sutra 2/3, the state of physical and mental agony is referred to as kleshas, which are in four states. Dormant, Thin (attenuated), Altering and Expanded. In an expanded state the klesha is fully active and operative like the organic phase of psychosomatic diseases targeting organs with full-fledged changes. Several studies on the impact of yoga on the body and mind reveal that yoga starts working from the mind. Maharshi Patanjali, author of the classical text described yoga as a science of mind to control the stress it is through teaching us to control our mind. Desire, lust, emotion, etc.

The fickleness of the mind is human nature. As explained in Ramayana, sage Vashishtha teaches Lord Rama how to control the mind and in The Bhagavad Gita, Srikrishna explains to

Arjuna how to control the mind. So the mental fickleness has always been there. By controlling the mind therefore we can progress towards achieving a sound state of the body and mind. Yoga is a holistic science of life that teaches us to deal with stress, to achieve and maintain physical, emotional, mental, and spiritual health.

We all know that yoga helps in maintaining good health and prevention of diseases but the mechanisms that make yoga effective are not entirely understood. Different research, experiments indicate that yoga asana and meditation induce positive changes in the functioning of the nervous system, endocrinal system, and circulatory system of the body, stimulates the parasympathetic system, and positively influence the activities within the brain which activates relaxation of the body and mind. Controlled breathing lowers the brain's response threat.

Yoga asanas for gaining Physical health: Different forms of yoga, like Astangyoga, Hatha Yoga, Karmayoga, etc work on all systems of the body. These practices not only energizes and strengthens the muscles, internal organs, glands, and spine nerves but also slow down the secretion of stress hormones and helps in the relaxation of the brain, heart system, body organs, and motor activity. Awareness of breath helps to induce body awareness. Various studies show that diabetes, obesity, hypothyroidism, insomnia can be removed through different groups of asanas which can improve the physical condition.

Pranayama and Meditation for gaining Mental health: Different techniques of meditation and pranayama help in increasing concentration, induces relaxation and peace of mind. Meditation can positively affect our mood behavior and helps to relieve symptoms like anxiety, stress, depression, etc. Yoga teaches us how to live in the present moment and focus the mind. Pranayama helps in reducing the level of stress hormones which helps in combating stress and anxiety. Many good hormones are stimulated by the practice of Pranayama, meditation which helps in self-motivation and induces good sleep. Many diseases like high blood pressure, depression, anxiety, aggressive behavior, insomnia, etc. can be reduced.

There are different types of Yogic techniques like Mantra Yoga, Hath Yoga, Gyan Yoga which can help in overcoming stress, anxiety and in achieving sound physical body, mental balance, and spiritual wellbeing.

Conclusion:- There is insufficient research to clearly understand the causes and effect relationship of social media overuse vis-a-vis physical and mental health impacts and particularly regarding the impact of social media on younger children. Although social media has many benefits like quicker access to information and being able to connect easily to larger societies worldwide, its overuse has a potential for side effects and can lead to health conditions and mental agony. However, these health risks can be minimized by adopting a yogic lifestyle. Yoga has been in practice in the Indian subcontinent for centuries and recent researches on its impact on the body and mind have proved beyond doubt that guided practice of yoga is very much helpful not only in prevention but also in the cure of several physical and mental health conditions. Asanas and pranayama have successfully been used in many cases as yogic therapy techniques to get rid of many health conditions. Controlling or prohibiting youths to use social media is unlikely to help because at this age the restrictive nature and controls are not easily accepted. However, if they are trained to do it in a yogic way it may be acceptable for them and help them to prevent and manage the related stress, anxiety. This will indirectly help in maintaining a sound physic and balanced mind.

References :-

1. Allcott, H., Braghieri, L., Eichmeyer, S., & Gentzkow, M. (2020). The welfare effects of social media. *American Economic Review*,110 (3), 629-76.
2. Barry, C.T., Sidoti, C.L., Briggs, S.M., Reiter, S.R., Lindsey, R.A.(2017). Adolescent social media use and mental health from adolescent and parent perspectives. *Journal of Adolescence*, 61, 1.
3. Cataldo, I., Lepri, B., Neoh, MJY., Esposito, G. (2021). Social Media Usage and Development of Psychiatric Disorders in Childhood and Adolescence: A Review. *Front. Psychiatry*, (11:508595), doi: 10.3389/fpsyt.2020.508595
4. Eveline, A.C., Elly A. K. (2018). Media use and brain development during Adolescence, *Nature Communications*, 9:588, DOI: 10.1038/s41467-018-03126-x
5. Hou, Y., Xiong, D., Jiang, T., Song, L., & Wang, Q. (2019). Social media addiction: Its impact, mediation, and intervention. *Cyberpsychology: Journal of Psychosocial Research on Cyberspace*, 13(1), Article 4, https://doi.org/10.5817/CP2019-1-4
6. Keles, B., McCrae, N., Grealish, A. (2020). A systematic review: the influence of social media on depression, anxiety and psychological distress in adolescents. *International Journal of Adolescence and Youth*, 25(1), 79-93.
7. Kelly, Y., Zilanawala, A., Booker, C., Sacker, A. (2018). Social media use and adolescent mental health: Findings from the UK Millennium Cohort Study. *E Clinical Medicine*, (6), 59-68.
8. Maggie, R.G., Rita, M. J. (2018). Social Media and Adolescent Health. *Paediatric Nursing*, 44(4), 196.
9. Michikyan, M., Suárez-Orozco, C. (2016). Adolescent media and social media use: Implications for development. *Journal of Adolescent Research*, 31(4), 411-414.
10. Richards, D., Caldwell, P.H., Go, H. (2015). Impact of social media on the health of children and young people. Journal of paediatrics and child health, 51(12), 1152–1157. doi.org/10.1111/jpc.13023
11. Salomon, I., Brown, C.S., (2019). The selfie generation: examining the relationship between social media use and early adolescent body image. *The Journal of Early Adolescence*, 39(4), 539-60.
12. Shroff, F.M., Asgarpour, M. (2017). Yoga and Mental Health: A Review. *Physiother Rehabil* (2), 132. doi:10.4172/2573-0312.1000132
13. Woodyard, C. (2011). Exploring the therapeutic effects of yoga and its ability to increase quality of life. *International Journal of Yoga*, 4, 49-54.
14. https://bensonhenryinstitute.org/relaxation-response-therapy-may-reduce-blood-pressure-altering-expression-distinct-set-genes/
15. https://onlinedegrees.unr.edu/online-master-of-public-health/impact-of-social-media-on-youth-mental-health/
16. https://www.center4research.org/social-media-affects-mental-health/
17. https://www.center4research.org/social-media-affects-mental-health/
18. https://www.healthychildren.org/English/family-life/Media/Pages/Adverse-Effects-of-Television-Commercials.aspx
19. https://www.pewresearch.org/internet/2018/03/01/social-media-use-in-2018/
20. https://www.psychologytoday.com/intl/blog/get-hardy/201305/take-stand-yoga-today
21. https://www.verywellfamily.com/ways-social-media-affects-teen-mental-health-4144769?print
https://www.verywellmind.com/excessive-social-media-use-4690882?print

Inclusion of Students with Visual Impairment in Higher Education: A Phenomenological Inquiry

Bharati Devi*

Prof. S. K. Swain**

Abstract :- Students with disabilities (SWDs) have the same chances as students without disabilities in primary, secondary, and higher education when they participate in inclusion education. Inclusion is seen as a dynamic approach of responding positively to pupil diversity and seeing individual differences not as problems, but as opportunities for enriching learning. Inclusion in education refers to a model where students with special needs spend most or all of their time with normal students. Inclusion demand meaningful participation in general education, allows students with disabilities to interact with their peer explores the need to restructure teaching and learning process, and provides age and grade-appropriate placement for the students. It involves changes and modification in content, approaches, structure, and strategies, having a vision that the entire student either physically able or disabled has been treated as equal and gets their education within the same classroom. One of the fundamental principles of inclusive education is the diversity within the human community must be valued. Philosophically and pragmatically, inclusive education is primarily about belonging, membership, and acceptance. The same general education curriculum that is taught to non-disabled students is also providing to students with disabilities using supplementary aids and services to assist in their learning process e.g. UDL (universal learning design). Navigation through higher education can be particularly challenging for students with disabilities. This study is focused about the problems faced by visually impaired students in higher education and the different ways of their inclusion.

Keywords: Inclusion, SWDs, higher education, UDL.

Introduction :- Inclusion is the process of recognizing, accepting, and respecting differences among students enrolled in higher education institutions. It is potentially both a process and an outcome for achieving social justice and equity in our society. Inclusion is the acceptance of all people, regardless of their differences reported by UNESCO (2005). Inclusion refers to the education of all children with disabilities or diversities in the general educational structure by adopting a complete education system including infrastructure, methodology, curriculum, etc. Regarding individuals with disabilities and special education, inclusion secures opportunities for persons with disabilities to learn alongside their non-disabled peers in general education classrooms (UNICEF 2010). The process involves the identification and minimization of barriers to learning and maximizing the resources which support the learning process of the students with

***Research Scholar, Faculty of Education Kamachha (k), Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, India.**

****Faculty of Education Kamachha (k) ,Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, India.**

disabilities. This shift has involved a series of changes at the societal and classroom level that has been accompanied by the elaboration of numerous legal instruments at the international level as well as national level. Unfortunately, prejudice and bias based on gender, social and economic standing, and special needs, among other variables, frequently hinders people's ability to profit from the educational system, deepening social cleavage that stifles growth, innovation, and advancement in the United States (RPWD act 2016). Higher education plays a vital role in the employability of students with disabilities (Samuel, O. M., *et. al.,* 2019). It promises an independent existence for the persons in the society. Navigating through higher education can be particularly challenging for students with disabilities (Ganguly R., *et. al.*,2019). Although, there are 21 types of disability are present but the researcher focuses only on those students who are visually disabled. There are two reasons behind choosing the visually impaired students the first is that it is not possible for the single researcher to study the problem face by the students belongs to all types disability and, the second one is that students who have visually impaired face dual problem they were unable to take notes directly from the classroom lecture and also there is no sufficient material is present in Braille. By keeping all this in mind researcher conducted a phenomenological study on the visually impaired student of the University for understanding in-depth experiences of their life.

Methodology of the research :- Phenomenological approach was used in the present study. Phenomenology is a qualitative research technique through which the researcher tries to know the prejudices and assumptions about human experiences, feelings, and responses to a specific situation. This method allows the researcher to investigate the perceptions, perspectives, understandings, and feelings of those people who have experienced or lived the phenomenon or situation (Creswell, J.W. 2003).The study was conducted using the semi-structured interview schedule. The population of the present study included all students with visual impairment studying in the Banaras Hindu University of Varanasi a central University. In the present study, purposive sampling was used by the investigator. Students study in undergraduate, postgraduate, and Ph.D. students belonging to age group 18 to 25 years .Students were enrolled in an academic session of 2017-2018 and completed at least 2 semesters in university for reach experiences. There are o5 students (pseudonyms-participant no.) with visual impairment who participated in the study.

S.No.	Participant pseudonyms	Courses	Age	Onset of disability	Cause of disability	Percentage of disabilities
1.	Participant 01	PhD	25	3 years	Fever	100
2.	Participant 02	UG	18	By birth	Fever	100
3.	Participant 03	UG	23	By birth	Unknown	100
4.	Participant 04	UG	19	Child (5-6)	Accident	Low vision
5.	Participant 05	PG	20	By birth	Due to medicine reaction	100

Participants detail

Results :- In this study the researcher is including of all participants' thoughts of the respondents in their relation with problems, facing in the University campus throughout learning process. Like wise.

Participant 1 :- The respondent said that the infrastructure of the university is disabled friendly and everywhere we found ramps and footpaths in the university. He/she also said that despite the infrastructure the administrative staffs of the campus are also supportable. If we brought any problem to them they tried to solve it at their level.

In the matter of teachers behavior, the respondent said that some teacher are very cooperative and helpful but some are not they looked us as an alien and talked to us very harshly and also discourage us. In the matter of the facilities available in the library, he/she said that the library of the university is not accessible because there is no material available in Braille, the only facility they provide to us that they gave us space for recording. The respondent also said that the examination rules of this university are also not friendly for the visually impaired student because according to UGC guidelines the visually impaired student got twenty-minute extra in an hour as a comparison to the normal student but they give only ten minutes extra.

Participant 2 :- In the matter of the infrastructure of the university, He/she said that the university is not visually impaired friendly. There are no ramps in front of the departments, many potholes are on the road which creates a problem for the passerby, students, and staff parked their vehicles on the roads. In the matter of administrative support respondents said that they are not cooperative, they treated us badly, they shouted and misbehaved with us. The respondent also added that the teaching staffs of the university are also not cooperative except some of the teachers. When we asked them about the notes they said to us that why don't you note down in the class and if we note down the notes in the class it makes some noise then they said that why you are making a noise in the class. They are also not allowed us for recording the lectures which makes us dependent on other students. In the matter of getting information about the scholarship it was found in the university website or the lower staff also informs us about that. The respondent also added that the facilities available in the library are also not supportive of us. There is no material available in Braille and the available recordings are not clear. She also said that the examination rules of this university are also not friendly for the visually impaired student because according to UGC guidelines the visually impaired student got twenty-minute extra in an hour as a comparison to the normal student but they give only ten minutes extra.

Participants 3 :- In the matter of the infrastructure of the university, he/she said that the university is not visually impaired friendly. There are no ramps in front of the departments, many potholes are on the road which creates a problem for the passerby, students, and staff parked their vehicles on the roads. In the matter of administrative support respondents said that they are not cooperative, they treated us badly, they shouted and misbehaved with us.

The respondent also added that the teaching staffs of the university are also not cooperative except some of the teachers. When we asked them about the notes they said to us that why don't you note down in the class and if we note down the notes in the class it makes some noise then they said that why you are making a noise in the class. They are also not allowed recording of the lectures which makes us dependent on other students. In the matter of getting information about the scholarship it was found in the university website or the lower staff also informs us about that. The respondent also added that the facilities available in the library are also not supportive of us. There is no material available in Braille and the available recordings are not clear.

Participant 4 :- The respondent said that the infrastructure of the university is not visually impaired friendly because there are no ramps on the entrance staircase, people parked their vehicles on the footpath, students ride their vehicles at high speed and washrooms are also not friendly for the visually impaired. He/She added that not only the infrastructure but also the attitude of the clerical staff is very rude toward us they tried to ignore our problems whatever we brought to them.

He/She said that the behavior of teaching staff is very cooperative toward us whenever we asked any question to them they answered them very politely. In the matter of information related to a scholarship, she said that they got the information from friends or search directly on the internet. In the matter of extracurricular activities, nothing is provided to us even teachers de-motivated us. In the matter of the facilities available in the library, he said that the library of the university is not accessible because there is no material available in Braille, the only facility they provide to us that they gave us space for recording.

Participant 5 :- The respondent mentions that the infrastructure of the university is not friendly for visually impaired students because there is no railing and ramp on the main gate of the concerned department. He/ She further added that the administrative staff of the department is also not cooperative, they just tried to ignore their problem and talked to them very rudely.

The teaching staff of the department is cooperative except few they said to us that if you are visually impaired so why should you be admitted here go and take admission in the universities and colleges which are made for disabled students. The students of the class are also very choosy in making friends they talk to us but when we need any help from them in the study like the recording of notes, any official work, etc., they make excuses and avoid the things. In the matter of getting information about the scholarship it was found in the university website or the lower staff also informs us about that. The respondent also added that the facilities available in the library are also not supportive of us. There is no material available in Braille and the available recordings are not clear. In the matter of facilities provided in the examination, the respondent mentioned that the university does not provide us any writer us it is our responsibility to arrange the writer for the examination. The UGC gave an extra one hour to the visually impaired student but the university gave us only half an hour extra.

Interpretation of the data :- The in-depth interview of participants' number 2, 3, 4, and 5 mentioned that the infrastructure of the university is unfriendly for visually impaired or low vision students whereas participant numbers 1, said that the infrastructural set up of the university is medium friendly for visually impaired and low vision students. The study also revealed that participants' number 1, 2, 3, 5 are not much satisfied with the behavior of the administrative staff. While participants 1 is happy with Administrative Supports. They said that administrative staffs and clerks are not much more cooperative and misbehaved with us and said to us that it's not our fault that we are visually impaired. Teachers are very cooperative agreed by almost all the participants. Almost every student mentioned that the examination process of the university is not favorable to us because the university did not provide us a writer it is our responsibility to arrange them. The extra timing which they provide to us during examination is not according to UGC rules. The in-depth study also revealed that almost every student is unhappy with the facilities provided in the library because they said that books and materials are not available there and those which are available there are in a bad condition. They also added that the available recordings there are not very clear. The majority of the students also added that there are no opportunities to take part in extra-curricular activities, the administration also has some selected students / who take parts in Paralympics.

Discussion :- Inclusion is a value to be followed, not a test or experiment to be tested. All kinds disabled or not, have the right to an education because they are the country's future citizens. In the prevailing Indian situation resources are insufficient even to provide quality mainstream schools for common children, it is unethical and impractical to put children with special needs to test or to prove anything in a research study to live and learn in the mainstream school and community

(Dash, N. 2006). To ensure that, inclusive education takes place there are many things to be considered. Concerning this, Msuya, M. L. (2005) suggests that necessary facilities like teaching and learning materials, equipment, and some environmental settings that are important for students with visually impaired be considered in an inclusive context. Specifically, students mentioned facilities like Braille materials, audio and visual devices, various teaching aids, mobility equipment like a white cane for the blind, special classroom designs and toilets are necessary for students with visual impairments. In contrast, the findings of this study indicated that there is a shortage or incomplete of Braille, a reference book written in Braille, an audio recorder, and other necessary materials in the library. The finding revealed that the same examination is set for all types of learners who are attending in the same grade level. But this is not accepted by different research studies. For instance, Gearheart*et. al.,* (1992) suggested that testing procedures may have to be modified for the students who are visually impaired. Reading Braille takes considerably longer time than reading standard print and it may be necessary either to extend the amount of time for completion of tests or reduce the number of test items, such students should not be penalized if they cannot finish tests because of the tools they are using.

Conclusion :- Based on the study's findings, it's feasible to conclude that the first university has few opportunities, and that these opportunities haven't paved the road for inclusive education to be implemented. The implementation of inclusive education at the university was tense with difficulties. Lack of educational materials, essential competent and other issues are among the hindrances to implementing inclusive education at this university.

Ethical consideration :- Ethical consideration focus on using safeguard to protect the participant's right by ensuring. That the information should be used for Research work only.

References :-

1. Ahuja, J. (2010). A study of virtuality impact on team performance. *IUP Journal of Management Research*, *9*(5), 27.
2. Creswell, J.W. (2003). Research design: Qualitative, quantitative, and mixed approaches. Thousand Oaks, CA: Sage Publications, Inc.
3. Dash, N. (2006): Inclusive Education Why Does it Matter? Edutracks, Vol.5 No. 11, PP. 5 –10
4. Ganguly, R., &Perera, H. N. (2019). Profiles of psychological resilience in college students with disabilities. Journal of Psychoe ducational Assessment, *37*(5),635-651.
5. Gear heart, B. R., Weishahn, M. W., & Gearheart, C. J. (1988). The exceptional student in the regular classroom. Merrill Publishing Company.
6. Marcia R. (2007). 'Disability Rights in Education' in Florian L.(eds) The Sage Handbook of Special Education.
7. Mastropieri, M.A. & Scruggs, T.E. (2010). The Inclusive Classroom: Strategies for Effective differentiated Instruction. New Jersey: Upper Saddle River.
8. Maurya, M. A., & Ahmed, A. (2020). The New Education Policy 2020: Addressing the Challenges of Education In Modern India.
9. Merleau -Ponty, M., & Bannan, J. F. (1956). What is phenomenology?. *Cross Currents*, *6*(1),59-70.
10. Moustakas, C. (1994).*Phenomenology research methods* Thousand Oaks, California, sage publication.
11. Msuya, M. L. (2005). An assessment of PEDP implementation: A case of Mara region. Unpublished MA (Education) Dissertation, University of Dar-es Salaam.
12. Riddell, S., Tinklin, T., & Wilson, A. (2005). *Disabled students in higher education: Perspectives on widening access and changing policy*. Routledge.
13. Samuel, O. M., Magwagwa, S., & Mazingi, A. (2019). Strategic career development of black engineering graduates in South Africa: the workplace experiential approach. *Higher Education, Skills and Work-Based Learning*.
14. Stachowiak, J. (2008). Pilot study.*Retrieved Sept*, *24*, 2020.
15. Stainback, S., & Stainback, W. (Eds.). (2000). *Inclusion: A guide for educators.* Baltimore: Paul H. Brookes.
16. The Rights of India (Extra-Ordinary) Available from: http://www. disabilityaffairs.gov.in/upload/uploadfiles/files/RPWD/ACT/2016.pdf.of Persons with Disabilities Act, 2016, Gazette.
17. UNESCO, (2005). Guidelines for Inclusion: Ensuring Access to Education for All. UNESCO, Paris
18. UNICEF.(2015).*The investment case for education and equity*. ,Paris.
19. Moustakas, C. (1994). *Phenomenological research methods*. Sage publications

पत्रिका में शोध-लेख/ आलेख प्रकाशन की अनिवार्य शर्तें

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख/ आलेख मौलिक, स्तरीय, प्रकाशन के योग्य एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।

2. अपने शोध–लेख/आलेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के O Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पी.डी.एफ. फाइल बनाकर सी.डी. या डी.वी.डी. में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचना दृष्टि, कार्यालय** के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख/आलेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचना दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।

3. **शोध–लेख/आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**

4. शोध–लेख/आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेखों/आलेखों को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।

5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या आदि– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।

6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से सदस्यता भी अपेक्षित रह सकती है, क्योंकि पत्रिका को कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।

7. हिन्दी एवं संस्कृत के शोध–लेखों/आलेखों के लिए 2000–3000 और अंग्रेजी के शोध–लेखों/आलेखों के लिए 2000–2500 शब्द–सीमा निर्धारित की गई है, अतः शब्द–सीमा का ध्यान रखें।

8. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों/आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

संपादक

आजादी के अमृत-महोत्सव का आगाज

विगत अगस्त माह में आजादी का अमृत–महोत्सव– अहमदाबाद, दिल्ली, प्रयाग, पटना, भोपाल, अमृतसर सहित देश के सभी बड़े शहरों में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया, जिसकी शुरुआत अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से आजादी के 75वें वर्ष के शुरू होने के उपलक्ष्य में की गई। आजादी के इस महोत्सव के आयोजन 15 अगस्त 2021 से लेकर 15 अगस्त 2023 तक चलते रहेंगे। 15 अगस्त 2022 को देश की आजादी के 75 वर्ष भी पूर्ण हो जाएँगे।

अमृत–महोत्सव के आयोजन प्रायः धार्मिक–संगठनों द्वारा अपने सम्प्रदाय के 75 वर्ष पूर्ण होने पर मनाये जाते रहे हैं। इस कड़ी में स्वामीनारायण संप्रदाय के 75 वर्ष पूर्ण होने पर मुंबई में (1995 ई. को) बड़ी धूमधाम से अमृत–महोत्सव मनाया गया, जो लगातार 37 दिनों तक चलता रहा। मुंबई में इस महोत्सव के आयोजन का परिणाम यह निकला कि फिल्मी दुनिया ने भी अपने कई आयोजन इसी तर्ज पर– रजत जयंती, स्वर्ण जयंती, हीरक जयंती आदि नामों से आयोजित किये....। खैर आजादी के इस अमृत–महोत्सव से हम सभी सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। अभी तक जितने भी अमृत–महोत्सव मनाये गये, वे सभी किसी धर्म, सम्प्रदाय या वर्ग विशेष से ही जुड़े रहे हैं, किन्तु आजादी का यह अमृत–महोत्सव सभी धर्मों, वर्गों और समुदायों को आपस में जोड़ने की पहल करता है। इस आयोजन में रोशनी से जगमगाते शहरों को देखता ही बनता था..... एक उत्साह, ऊर्जा, खुशी एवं गतिमानता भरी चहल–पहल– सब जगह दिखलाई पड़ रही थी। यह सब देश के चतुर्दिक विकास के लिए बेहद जरूरी भी है। इसका मुख्य उद्देश्य है– उन सभी भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों, अनुयायियों एवं सिपाहियों की खोज करना और जानना, जिन्होंने स्वदेश की आजादी के लिए हँसते–हँसते अपने प्राण तो उत्सर्ग कर दिये, पर उनकी पहचान न तो राष्ट्रीय स्तर पर बन पायी, न क्षेत्रीय स्तर पर और न ही इन्हें अब कोई जानता है।... इसके साथ ही इस पर्व की उत्सव–धर्मिता में 'उन्नत भारत के लिए सबका साथ, सबका विकास', 'छोटा किसान बने देश की शान', 'सैनिक स्कूल में पढ़ेगी बेटियाँ' और 'कृषि क्षेत्र में बदलाव जरूरी' जैसे तमाम स्लोगन भी शामिल रहे...।

मैं आलोचन–दृष्टि परिवार की ओर से सभी स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों, अनुयायियों एवं इसकी पहल करने वाले सिपाहियों– को याद करते हुए– श्रृद्धांजलि समर्पित करता हूँ और सभी भारतवासियों को आजादी के इस अमृत–महोत्सव की हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ। साथ ही, यह अपील भी करता हूँ कि हम जहाँ भी हैं, जिस रूप में हैं, जैसे भी हैं, हमें अपने सुनहरे भविष्य के लिए– अपनी ईमानदारी, दृढ़ता, पवित्रता, नैतिकता और सद्भाव बनाकर आगे बढ़ना होगा।....

–डॉ0 सुनील कुमार मानस

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर, उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com
दूरभाष : 09451949951 / 7376267327